सचित्र तत्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

PART - 2

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति....

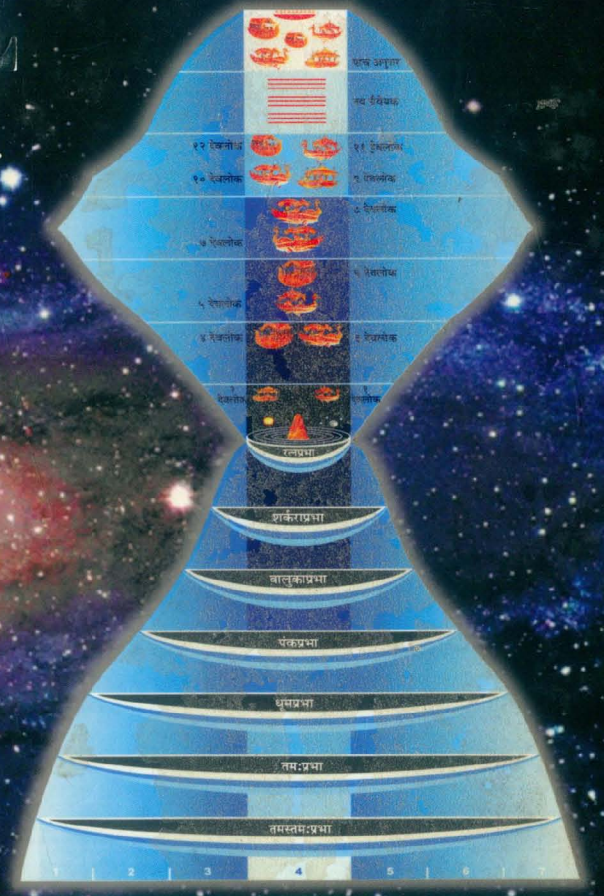

❀ पावन प्रेरणा ❀

प. पू. दीक्षा दानेश्वरी आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

प. पू. प्रवचन प्रभावक आ. श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा.

॥ ऐँ नमः ॥ ॥ नमोऽस्तु तस्मै तव शासनाय ॥

॥ श्री तपागच्छाचार्य श्री प्रेम-भुवनभानु-जयघोष-जितेन्द्र-गुणरत्न-रश्मिरत्न-हीररत्नविजय सद्गुरूभ्यो नमः ॥

ग्रन्थ की विशेषताएँ

- ८५० से अधिक पृष्ठों में विस्तारित.....
- पांच विभागों में विभक्त एवं आठ द्वारों से सुशोभित हिन्दी आवृत्ति....
- जैनधर्म से संबंधित भूगोल-खगोलादि का सचित्र वर्णन....
- २०० लेखों के ज्ञानार्जन में सहायक ४०० से अधिक थ्रीडी बहुरंगी चित्रों का विशाल संग्रह.....
- ३०० से अधिक आगम - प्रकरण ग्रंथों पर आधारित...
- १५० पृष्ठों में विस्तारित 'जानने जैसी भूमिका' रूप ''परिशिष्ट ''....
- १०० से अधिक प्राचीन चित्रों की प्रतिकृतियों का अनोखा संकलन....
- तारातंबोल जैसी प्राप्य-अप्राप्य नगरियों का उल्लेख....
- प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थकारों द्वारा लिखित चौदह राजलोक संबंधित पद्यात्मक भाषा में स्तुति-स्तवन-सज्झाय तथा पूजा की ढालों का अलौकिक ''कृतिसंग्रह''...

PART - 2

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

PART - 2

दिव्याशीर्वाद

सिद्धांतमहोदधि
आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.
युवाशिबिर प्रणेता
आ. श्री भुवनभानुसूरिजी म.
मेवाडदेशोद्धारक
आ. श्री जितेन्द्रसूरिजी म.

Serving JinShasan
162697
gyanmandir@kobatirth.org

शुभाज्ञा-आशिष

सुविशाल गच्छाधिपति
गीतार्थमूर्धन्य
पूज्यपाद आचार्यदेव श्री
जयघोषसूरिजी महाराजा

पावन प्रेरणा

प.पू. दीक्षादानेश्वरी
आ.श्री गुणरत्नसूरिजी म.सा.
प.पू. प्रवचन प्रभावक
आ.श्री रश्मिरत्नसूरिजी म.सा.
प.पू.मु. श्री हीररत्न वि.म.सा.

पदार्थ संशोधक

प.पू. वर्धमान तपोनिधि
आ.श्री भुवनभानुसूरिजी
म.सा. के शिष्यरत्न
प.पू. पं.श्री पद्मसेन वि.म.सा.

पदार्थ संशोधक

प.पू. शासन प्रभावक
आ. श्री रत्नाकरसूरिजी
म.सा. के शिष्यरत्न
प.पू.पं.
श्री रत्नज्योत वि.म.सा.

संकलक
संयोजक -संपादक

मुनि
चारित्ररत्नविजय...

ग्रंथ विषय

जैनधर्म संबंधी
खगोल-भूगोलादि की
विस्तृत सचित्र जानकारी

प्रुफ संशोधक

प.पू.पं.श्री
धर्मशेखरविजयजी म.सा.
प्रो. रमेशभाई बी. शाह (अम.)
कमलेशभाई पुरोहित (सिरोही)
अभिषेकभाई वकील (इंदोर)

ग्रंथ डिझाईनर

ॐकार ग्राफिक्स
पियुषभाई के. शाह
अहमदाबाद- (गुज.)

चित्रों के संकलन के लिए मुख्य आधारस्तंभ

गीतार्थ गंगा
जैन मर्चन्ट - पालडी
अहमदाबाद

प्रकाशक

जिनगुण आराधक ट्रस्ट
राजदा बिल्डींग,
ओ.नं. ९/११, दूसरा माला,
जूनी हनुमान क्रोस लेन,
काल्बादेवी रोड, मुंबई - ३

आधार ग्रंथ-साक्षीपाठों के मुख्य आधारस्तंभ

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आ. श्री कैलाशसागरसूरि
ज्ञानभंडार - कोबा

टाईपिंग एवं मुद्रण

नवरंग प्रिन्टर्स
अपूर्वभाई शाह
अहमदाबाद - (गुज.)

प्रकाशन वर्ष

वी.सं.२५४१
वि.सं. २०७१
ई.सं. २०१५
विमोचन ता. ३१-५-२०१५
विमोचन ति. जेठ सुद १३

आवृत्ति प्रतिकृति

आवृत्ति - प्रथम
प्रतिकृति - २०००

ग्रंथविभाग एवं पृष्ठ

(१) 67+१३३=२००
(२) 25+१६७=१९२
(३) 27+१६७=१९४
(४) 23+१७३=१९६
(५) 14+५२=६६

फोटोग्राफी पिक्चर डिझाईनर

जैनिझम ओनलाईन
श्री हितेशभाई शाह
(नवसारी)

मूल्य

पांच भाग रूप
पूरे सेट का
२५००/—

प्राप्ति स्थान

अहमदाबाद

शाह बाबुलालजी सरेमलजी
"सिद्धाचल" सेन्ट एन्ड स्कूल
के सामने, हीराजैन सोसा.,
साबरमती, अहमदाबाद - ५
(M) 09426585904
(O) 079-22132543
(R) 079-27505720

सुरत

अशोकभाई एम. नागोत्रा
५०१, समवसरण ऐपार्टमेन्ट
लाल बंगला के सामने,
अठवालाईन्स, सुरत
(M) 09825132455
(M) 09428870903
(R) 0261-2669933

पालीताणा

सुघोषा कार्यालय
सोमचंद डी. शाह
तलेटी रोड,
पालीताणा

मुकेशभाई
(M) 09898332245

शंखेश्वर

वंदना बुक स्टोर्स
यात्रिक भवन के पास,
शंखेश्वर तीर्थ,
गुजरात
(M) 09374169618
(M) 09429297740
(M) 09904786962

मुंबई

मांगीलालजी पारेख
NAKODA CREATION
Shop no. 1, Kshirsagar apt,
opp. Maltibai Hospital,
St.John School Road,
THANE (west)
(M)09773329503,
(M)09324286481
(O)022-25309655

पुना

मांगीलालजी सोलंकी
श्री सिद्धाचल सोसायटी,
१८-बी, गुलटेकडी फ्लेट,
एफ-१३, पुणे -411037
(M) 09822271372
(R) 020-24265006

हुबली

AMBAR SAKARIYA
156, Kundan Kunj
Arihant Nagar,
Kushgal Road,
Keshwapur,
HUBLI-580023
(M) 09886217673

चेन्नाई

पारस डी. जैन
c/o, KOLORS KREATIONS
Shringar Plaza, # 359
Mint Street, Sowcarpet,
Opp. Vardhan Complex,
CHENNAI - 600079
(M) 09840208075
(M) 09884553007
(O) 044-23468276

बैंगलोर

एम. चंपालाल
No.531/532, O.T.C.Road,
1st floor,
Near Balpet Circle,
BANGALORE- 560002
(M) 09342727606
(M) 09844760139

दिल्ली

मोतीलाल बनारसीदास
४१, U.A., बंगला रोड,
दिल्ली - ११०००७
Email-mlbd@mlbd.com

रवि जैन
(M) 08800666090
(O) 011-23851985

कायमी संपर्क सूत्र

अरुणभाई - साबरमती
अहमदाबाद
09427522101,
09408252201

मोहितभाई-गीरधरनगर
अहमदाबाद
09426707301

लाभार्थी परिवार

श्री जिनगुण
आराधक ट्रस्ट
मुंबई

स्व. श्री छोटालाल रीखवचंद
दोशी के आत्मश्रेयार्थे
ह. रीखवचंद त्रीभोवनदास
दोशी परिवार

श्रीमती मोहिनीदेवी
एस. देवराजजी जैन
घाणेराव - (राज.)
चैन्नई, बेंगलोर

-: विशेष सूचना :-

यह ग्रंथ ज्ञानद्रव्य में से छपा हुआ होने से गृहस्थो द्वारा मूल्य दिये बिना मालिकी करनी नहीं ।

प्रकाशकीय निवेदनम्

लि.
जिनगुण
आराधक ट्रस्ट

जैनधर्म वो अनादिकाल से चला आ रहा है एवं अनादिकाल तक यह अनंतानंत आत्माओ को मोक्ष मुक्ति में जाने के लिए निमित्त बन रहा है तथा जैनशास्त्रों (जिनागमों) में विश्व संबंधि संपूर्ण विश्व व्यवस्था (ब्रह्मांड का स्वरूप) असंख्य द्वीप-समुद्रो से व्याप्त मध्यलोक, खगोलीय (आकाश संबंधी) सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र एवं तारा इत्यादि, ऊर्ध्वलोक के रूप में रहे हुए १२ देवलोक, ९ ग्रैवेयक, ५ अनुत्तरादि, अधोलोक के रूप में ७ नरको की व्यवस्था, भवनपति-व्यंतर-वाणव्यंतरादि देवो की बाते और प्रकीर्णक रूप में आये हुए जैनशासन के छुटे छुटे पदार्थो की सूक्ष्म एवं स्थूलादि सर्व ठोस हकिकतों को बताने में आई है जो संपूर्ण वैज्ञानिक एवं तर्कबद्ध है।

इस ब्रह्मांड का और उसमें रहे हुए पदार्थो का जो सच्चा स्वरूप बताते है उसे जैनदर्शन में "द्रव्यानुयोग" कहा जाता है। उन द्रव्यों के गुणों से होती हुई गिनती को "गणितानुयोग" कहा जाता है। इन द्रव्यो को परखकर मोक्ष प्राप्त करने का जो भव्य पुरुषार्थ किया जाता है उसे "चरणकरणानुयोग" कहा जाता है एवं जो उस चरणकरणानुयोग को साधकर मोक्ष में चले जाते है उस विशिष्ट आत्मसाधकों की कथा को "धर्मकथानुयोग" कहा जाता है।

प.पू. त्रिशताधिक दीक्षा दानेश्वरी आचार्य श्री विजय गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा. तथा प.पू. प्रवचन प्रभावक आचार्य श्री विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा की पावन प्रेरणा को झिलकर (ग्रहणकर) प.पू. मुनिराज श्री हीरत्नविजयजी म.सा. के शिष्यरत्न मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी म.सा.ने **Jain Cosmology** (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) नामक ग्रंथ का सफल संपादन कर जिनशासन के चरणों में अब उनके द्वारा दुसरे कदम स्वरूप **THE REAL UNIVERSE** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) नाम का ग्रंथ जो तैयार किया गया है वह जैनशासन के चरणों में एक अद्‌भूत ग्रंथ की भेंट होगी... जो वस्तुतः बहुत ही उपयोगी एवं अनुमोदनीय है। ऐसे अनेकानेक लोकभोग्य ग्रंथो का सर्जन मुनिराजश्री के हाथों होते रहे....ऐसी भावभरी विनंती....

THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ की प्रथम आवृत्ति का चतुर्विध श्री संघ के चरणों मे प्रकाशन करते हम आनंद की अनुभूति कर रहे है... तथा आधुनिक विज्ञान कि कल्पित बातों में अंधश्रद्धा धारण करनेवाले सर्वजन इस ग्रंथ को पढ़कर ब्रह्मांड (विश्व) के सच्चे स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर उसका उपयोग स्व - पर की आत्मा के उद्धार के लिए करे...

ऐसी अंतर की भावना के साथ ही....

सिद्धांत दिवाकर, गीतार्थ मूर्धन्य, शास्त्र रहस्यवेत्ता, गुरूकृपापात्र
सुविहित गच्छाधिपति प.पू. आचार्य भगवंत श्रीमद् विजय
जयघोषसूरीश्वरजी महाराजा
के पावन करकमलो में

आदर समर्पणम्

My Dear Gurudeva...!
I am happy that you are my Guru...
I enjoy each lesson you teach, As my role model
you inspire me to dream and to work and to reach
towards "Moksha..." with your kindness you get
my attention; Every day you are planting a
seed of curiosity and motivation to know
and to grow and succeed my Diksha life...
you help me fulfill my potential,
I am thankfull for all that youve done...
I admire you each day and I just
want to say, as a Guru, Youre Amazing...

Devotion

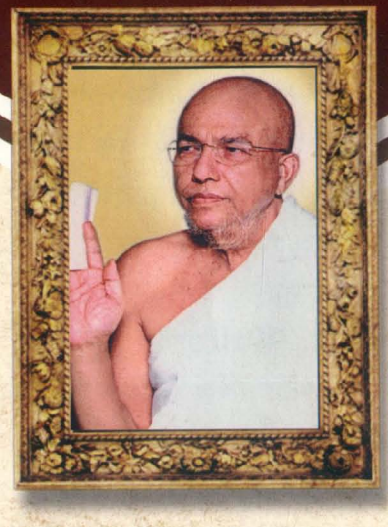

आत्मा और परमात्मा,
दूर रहे बहुकाल;
सुंदर जोग करा दिया,
हमें सद्गुरू मिले दयाल ॥

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

ग्रन्थ आवकार

कोलकत्ता युनिवर्सिटी के प्रोफेसर हरिसत्य भट्टाचार्यजी। फिलोसोफी उनका मनपसंद सब्जेक्ट। जब कभी भी वक्त मिले तब लाइब्रेरी में जाकर दर्शनशास्त्र के ग्रन्थ पढ़ते रहते। एकबार इसी तरह आ.वादिदेवसूरिजी रचित "प्रमाण-नय-तत्त्वलोक" ग्रन्थ का पठन कर रहे थे। तब एक सूत्र को पढ़ते ही प्रो.भट्टाचार्य चौंके।

वह सूत्र था "अकारादि : पौद्गलिको वर्ण: ।" अर्थात् अ-आ-क-ख... इत्यादि वर्ण पुद्गल है... **Matter** है।

प्रो.भट्टाचार्य के चौंकने का खास कारण यह था कि अब तक तो उन्होंने जितने भी दर्शनशास्त्र के ग्रन्थ पढ़े थे उसमें "शब्द गुणकं आकाशम्" इत्यादि सूत्रों के जरिये शब्द को अरूपी ही कहा गया था। शब्द को पुद्गल - **Matter** कहनेवाला-दिखानेवाला यह पहला रेफरेन्स संदर्भ था। इस दौरान रेडियो की खोज हो चूकी थी। शब्द को पुद्गल के रूप में विज्ञानने भी सिद्ध कर दिया था।

प्रोफेसर भट्टाचार्यने इसके बाद जैन ग्रन्थों को श्रद्धा की आंखों से पढ़ना शुरु किया। जगह - जगह पुद्गल के स्वरूप की बात... पुद्गल का लक्षण शब्द-रूप-रस-गन्ध आदि की बात... पुद्गल के अचेतन होने की बात... अब प्रोफेसर भट्टाचार्य को महसूस हुआ कि हजारों साल पहले जब रेडियो या टेपरेकोर्डर आदि नहीं थे तब भगवान् महावीरने शब्द को अचेतन (जड) पुद्गल कहा है तो इसका अर्थ यह निकला कि प्रभु महावीर वाकई में सर्वज्ञ होने चाहिए। इसके बाद वे जैनदर्शन के अनेकांतवाद और अहिंसा से बहुत ही प्रभावित हुए। ये दोनो विषय को लेकर उन्होंने पुस्तकें भी लिखी है।

PHD के लिए जब विषय को चुनने का मौका आया तब उन्होंने "जैनदर्शन में पदार्थ का स्वरूप" इस विषय को चुना-पसंद किया। उनका निबंध जांचने बैठे कमिटी के सभ्य - 'अणु', 'परमाणु', 'वर्गणा', 'महावर्गणा', 'कार्मणवर्गणा' जैसे शब्दों को पढ़कर हैरत से दुविधा में पड गए। यह फिलोसोफी के छात्र का निबंध है या सायंस के विद्यार्थी का ?

भट्टाचार्यजी को जब रुबरु बुलाया गया तब उन्होंने कहा कि, "जैनदर्शन में द्रव्य के स्वरूप के वर्णन करनेवाले ग्रन्थ सागर जितने विशाल है। इस निबंध में तो मैंने सिर्फ चमची जितना ही लिखा है।"

जैनदर्शन में जो परमाणु का स्वरूप बताया गया है वह वर्तमान कालीन विज्ञानने व्यख्यापित किये परमाणु से कई गुना सूक्ष्म है। जिसमें इलेक्ट्रोन-प्रोटोन घूमते हो वह परमाणु नहीं है बल्कि स्कन्ध है। जैनदर्शन निदर्शित परमाणु इतना सूक्ष्मतम पदार्थ है कि जिसके दो भाग करना भी मुमकिन नहीं है... अशक्य है।

सिर्फ द्रव्यानुयोग ही नहीं अपितु गणितानुयोग भी जैनदर्शन का अजब-गजब है। शून्य '०' की उपलब्धि यानि कि गणित भारतने ही दिया है।

देशभक्त फिल्म दिग्दर्शक मनोजकुमार की फिल्म 'पूरब और पश्चिम' में जब पूरब के देश को विकास की दृष्टि से 'जीरो-०' कहा जाता है तब देशभक्त अभिनेता चीख पडता है. 'ओ पश्चिमवालों ! जब 'जीरो-०' दिया मेरे भारतने... दुनिया को तब गिनती आई है... रोमन में जब बड़ी रकम लिखने का अवसर आता था तब बहुत सारी निशानियां लिखनी पड़ती थी। तब अंको का खुद का मूल्य और इसके अलावा स्थान का मूल्य (एकम, दसक, शतक इत्यादि) रूप गिनती-भारतने ही जगत को सिखाई हैं। अर्थात् भारतने ही दुनिया को गणित दिया है और 'बडी रकम, अंक, शून्य'- ये सब जैन कर्मसाहित्य में बताए गए 'भांगा' 'स्थापना' आदि के स्वरूप में प्राचीन ताडपत्र पर लिखे गए एवं हस्तलिखित ग्रन्थों में लिखें हुए और जैन ज्ञानभंडार में सुरक्षित कर्मग्रन्थों की पुस्तकों में प्राप्त हुए है।

काल के विषय में भी विज्ञान जब 'पाय को सेकन्ड' यानि कि सेकन्ड के पांचलाखवें भाग तब पहुँचा है तो उसके सामने जैनदर्शन में सेकन्ड के असंख्यभाग स्वरूप 'समय' से काल के विभागों की शरूआत होती हैं। इतना ही नहीं अतिप्रचीन वैदिक गणित के ग्रन्थों की कुछ गहन समस्याओं का समाधान भी जैन आगमग्रन्थ "ज्योतिष करंडक" में से प्राप्त हुआ है। पानी को एक स्वतन्त्र द्रव्य के रूप में जगत के अन्यदर्शन और विज्ञान मानता था। हेन्द्रिकेवन्डिसने ऐसी खोज की कि पानी वायु के मिश्रण से बनता है और पानी के लिए 'H_2O' का सूत्र प्रसिद्ध हुआ। जैनशास्त्रों में 'वायुयोनिक' पानी और 'अप्योनिक' पानी इस प्रकार दो तरह के पानी की बात प्राचीनकाल से प्रसिद्ध हैं।

वनस्पति में 'जीव' होने की ठोस जैन मान्यता को जगदिशचन्द्र बोझ के साबित करने के बाद विज्ञानने जिस तरह स्वीकारा उसी तरह अनेकानेक जैन सिद्धांतो को धीरे धीरे विज्ञान स्वीकार करने लगा है। कहने का तात्पर्य इतना ही है कि - जैन साहित्य विश्व में अजोड है। बेनमून है।

द्रव्यानुयोग - गणितानुयोग आदि की तरह जैनदर्शन का क्षेत्रानुयोग भी अनन्य है। भूगोल और खगोल के स्वरूप की सूक्ष्म और सविस्तर चर्चा आगमग्रंथों में प्रकरण ग्रन्थों में की गई है।

विद्वद्वर्य मुनिराजश्री चारित्ररत्नविजयजी महाराज साहेबने क्षेत्रानुयोग के समग्र उपलब्ध साहित्यों का गहरा अवगाहन करके एक प्रमाणित 'एन्सायक्लोपिडिया' जैसे **The Real Universe** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रन्थ की विविध भागों में रचना की है। एक ही जगह पर सचित्र विवेचन सहित विविध लोक के अनेक विभाग और उपविभागों की ससंदर्भ जानकारी देने का यहाँ संनिष्ठ प्रयास किया गया है।

अंग्रेजी भाषा की एक जानी-पहचानी कहावत है, '**One Picture is more than thousands words**' एक चित्र हजार शब्दों से भी ज्यादा असरकारक होता है। इस उक्ति का यथार्थत्व यहाँ मालूम पडता है।

द्वीप-समंदर-नरक के आवास-देव के भवन - इन सबका स्वरूप चित्र के बगैर समजाना बहुत ही कठिन है। इसलिए प्राचीनकाल से बृहत्संग्रहणी आदि हस्तलिखित ग्रन्थों में अनेक चित्रों के साथ लेख लिखे गए है। वर्तमान में ये चित्र प्राचीनकला का अद्‌भुत विरासत बन गये है।

विद्वान मुनिराजने अपने इस ग्रन्थ में ऐसे सैकडों साल पुराने चित्र-आलेखनों में से चुनकर उपयोगी चित्र भाग तीसरे में दिये है और आधुनिक थ्री-डी, कोम्प्युटर आदि के जरिये तैयार किये गए सैकडों रंगीन चित्र उन-उन लेख के सामने के पेज पर दिये है। इसमें बहुत चित्र ऐसे है जो इस तरह से तैयार होकर पहली बार ही-(**Very first time**) प्रकाशित हो रहे है।

जैनदर्शन की खगोल-भूगोल की अंदाजन् सारी ही बातें यहाँ सचित्र प्रकाशित हो चूकी है। इतना ही नहीं वैदिक-बौद्ध आदि अन्य दर्शनों की मान्यताएं भी यहाँ ससंदर्भ दी गई है। इसके अलावा वर्तमान में पृथ्वी को सपाट माननेवाले अनेक मत है। उनकी सारी बाबतें और विज्ञान की प्रसिद्ध मान्यता "पृथ्वी गेंद के जैसी गोल है" आदि की विरूद्ध प्रश्नार्थ चिह्न खडा करें ऐसी अनेक रसप्रद-रसपूर्ण बाबतें भी लेखकश्रीने अति श्रम उठाकर संग्रहित की है।

इसके अतिरिक्त जैनदर्शन के बारे में दुनिया के विविध लोगों के अभिप्रायः, उद्‌गार और जैनदर्शन की अनेक मान्यताओं को वर्तमान कालीन विज्ञान भी कब ? क्युं ? किस तरह से मानने लगा है उसको सूचित करती हुई ढेर सारी जानकारी पन्ने पन्ने पर दी गई हैं।

इस प्रकार यह ग्रन्थ एक ओर जैनसिद्धांतानुसार भूगोल और खगोल की सारे ब्रह्मांड की बात थ्री-डी इमेज आदि को दिखलाकर करता है तो दूसरी ओर जैनधर्म के बारे में सामान्य जानकारी मिले जैन दर्शन और जैनधर्म की थोडी-बहुत झलक वाचक के दिल में अंकित हो जाए ऐसी अनगिनत सामग्री भी परोसता है।

लोक और अलोक का दर्शन करवानेवाली "सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड" पुस्तक का दिल से सत्कार।

नौजवान मुनि चारित्ररत्नविजयजी म.सा.की प्रतिभा और परिश्रम का दर्शन पन्ने-पन्ने पर हो रहा हैं। ऐसा अजोड-अनूठा ग्रन्थ करने के लिए लाख-लाख अभिनंदन !!!...

The Jain Science (सर्वज्ञ कथित विज्ञान) इस विषय का एक आकर-ग्रन्थ (**Book of Reference**) भी विद्वद्वर्य मुनिश्री तैयार कर रहे हैं। अति लोकोपयोगी वह ग्रन्थ भी शीघ्र प्रकाशित हो ! ऐसी आशा के साथ मुनिश्री ऐसे कार्य में सफलता के साथ आगे बढते रहे ऐसी दिल की आरजू... आशीर्वाद... आशीर्वाद... आशीर्वाद...।

आ.श्री विजय मुनिचंद्रसूरिजी म.सा.

THE OCEAN OF KNOWLEDGE IN JAINAGAM...

जैनागम ज्ञान का समंदर है... ! The Ocean of Knowledge In Jainagam... इन आगमों में सर्वज्ञ बने ऐसे परम पिता परमात्मा की चार अनुयोगमयवाणी का खजाना भरा हुआ है। इन आगमों का रहस्य पानेवाला विरल ही हो सकता है.... इसलिए ही परम पूज्य अवधूतयोगी श्री आनंदघनजी महाराज अर्थात्, जिनका मूल नाम श्री लाभानंदजी था वे कहते है की...

"गगनमंडल के अधबीच कुंआ, ऊंहा के अमीय का वासा।
सगुरा होय सो भर भर पीवे, नगुरा जाय प्यासा ॥"

समवसरण में बिराजमान चतुर्मुखी श्री सर्वज्ञ परमात्मा के मुख को कुएं की उपमा दी गई है और इस कुए में श्री जिनागमों का अमृत भरा पड़ा है, अब प्रश्न ये खड़ा होता है कि इस अमृत को कौन पा (पी) सकता है तो उत्तर में बताया की.... जिसके सिर पर गुरु है, उसे यह अमृत भर भर के पीने को मिलता है और जिसके सिर पर गुरु नहीं अर्थात् जो नगुरा हो वह प्यासा ही जाएगा।

"गगनमंडल में गौआ बियानी, धरती दुध जमाया।
माखन था सो विरला पाया, छासे जग भरमाया ॥"

प्रभु की वाणी दुध है तो गणधरोंने उस वाणी को सूत्रो में गूंथकर पूरी धरती पर जमा दिया है। इस दही का मक्खन तो कुछ विरलों को ही मिलता है, बाकी पूरा विश्व तो छास से ही संतुष्ट हो जाता है।

परम तारक सर्वज्ञ प्रभु परमात्मा की वाणी पूर्व चार अनुयोगमय थी। हर पद - पंक्ति में से चार अनुयोग निकलते थे। अवसर्पिणी काल के प्रभाव से ज्ञान के क्षयोपक्षम में क्रमशः मंदता आने लगी। तब युगप्रधान आचार्य श्री आर्यरक्षितसूरिजी महाराजाने चारों अनुयोगो को विभक्त किया। इतने आगम द्रव्यानुयोग में तो इतने आगम गणितानुयोग में कितनेक आगम चरणकरणानुयोग में तो कितनेक आगम धर्मकथानुयोग में फिक्स किए....

"आवश्यक निर्युक्ति सूत्र" में भी कहाँ गया है...

"अपुहुत्ते अणुओगो चत्तारि दुवार भासई एगो।
पुहुत्ताणुओग करणे ते अत्थ तओ उ वुच्चित्ता ॥ ७७३॥"

इस संदर्भ में भाष्यकारश्री का भी कथन बताया गया है कि...

"तत्रानुयोग चातुर्विध्यमुपदर्शयन्नाह... मूलभाष्यकार :"
कालियसूयं च इसिभासियाईं, तइओ च सूरपन्नति।
सव्वो व दिट्ठीवाओ, चउत्थो होइ अणुओगो ॥ १२४ ॥

अर्थात् - कालिकश्रुत का समावेश चरणकरणानुयोग में है। ऋषिभाषितादि का समावेश धर्मकथानुयोग में हैं। संपूर्ण दृष्टिवाद का समावेश द्रव्यानुयोग में और सूर्य - चंद्र प्रज्ञप्ति आदि का समावेश गाणितानुयोग में किया गया है।

प्रस्तुत ग्रंथ का मुख्य विषय भी गणितानुयोग हैं। क्युंकि १४ राजलोक संबंधी उन उन क्षेत्रों में रहे हुए पर्वत - नदी - शाश्वत चैत्यादि की लंबाई - चौड़ाई - ऊँचाई - गहराई एवं त्रिलोक पदार्थ व्यवस्था का ही ज्यादातर वर्णन किया गया है।

मेरे अंतेवासी मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी म.सा. ने बड़ी महेनत कर The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ तैयार किया हैं। जो कि इस ग्रंथ की विशेषता कुछ इस प्रकार है....

- ८५० जितने पृष्ठों में विस्तारित...
- संपूर्ण ग्रंथ मल्टिकलर युक्त...
- ५ विभागों में विभक्त हिन्दी आवृत्ति...
- जैनधर्म से संबंधित भूगोल - खगोलादि का सचित्र वर्णन...
- २०० जितने लेखों के ज्ञानार्जन में सहायक ४०० से अधिक 3D/2D वगैरह बहुरंगी चित्रों का विशाल संग्रह....
- ३०० से अधिक आगम - प्रकरण ग्रंथों पर आधारित...
- १५० पृष्ठों में विस्तरित "जानने जैसी भूमिका" रूप "परिशिष्ट"
- १०० से अधिक प्राचीन चित्रों की प्रतिकृतियों का अनुठा संकलन...
- तारातंबोल जैसी प्राप्य - अप्राप्य नगरियों का उल्लेख ....
- प्राचीन - अर्वाचीन ग्रंथकारों द्वारा लिखित १४ राजलोक संबंधि पद्यात्मक भाषा में स्तुति - स्तवन - सज्झाय तथा पूजा की ढालों का अलौकिक संग्रह... इत्यादि...।

ऐसा कहा जाता है कि..."सच्चं खु भयवं" अर्थात् पूरी दुनिया सत्य की उपासिका हैं और उसमें भी वीतराग परमात्मा का सबसे बेहतरीन विशेषण है । "जहट्ठियवत्थुवाइणं" इसलिए ही श्री "पंचसूत्र" में बहुत ही सुंदर क्रम बताया है...

"नमो वीयरागाणं, सव्वन्नुणं, देविंदपूईयाणं, जहट्ठियवत्थुवाईणं, तेलक्कगुरुणं, अरुहंताणं, भगवंताणं..." मतलब के प्रथम प्रभु वीतराग बने, सर्वज्ञ बने, देवेन्द्रो से पूजित बने इसलिए "जहट्ठियवत्थुवाइणं" अर्थात् प्रभुने जो जैसा देखा है वैसा ही प्रतिपादित किया अर्थात् बताया है....

श्री सर्वज्ञ भगवंतोने इस (संपूर्ण) विश्व को अपने त्रिकालज्ञान (केवलज्ञान) से देखा, और जैसा देखा बस वैसा ही बताया । इसलिए सर्वज्ञों द्वारा बताई गई सभी बाते यथार्थ है, सत्य है... जो हम उसे श्रद्धा से स्वीकार करेंगे तो जरूर हमारा बेडा पार है।

चौदह राजलोक आदि का ज्ञान प्राप्त करने से हमें या हमारी आत्मा को क्या फायदा होगा ? जो ऐसे प्रश्न हमारे मन में घर कर गये हो तो उसका जवाब है कि चौदह राजलोक आदि का ज्ञान प्राप्त करने से हमारी आत्मा धर्मध्यान में लीन बनती है, क्योंकि कहा गया है कि धर्मध्यान के ४ प्रकारों में से ४ था प्रकार अर्थात् संस्थानविचय धर्मध्यान । अब यह "संस्थानविचय धर्मध्यान" को जानने से हमें यह ख्याल आता है कि यह अनादिकालीन संसार के स्वरूप को जानकर भी जो हम मोक्ष के लिए पुरुषार्थ नहीं करेंगे तो हमें और अनंतकाल तक इस चार गत्यात्मक संसार में भटकना पड़ेगा ।

संसार के इस चार गति में देव - मानव - तिर्यंच एवं नरक का समावेश होता है और कहा जाता है कि इन चार गति में सबसे भयानक गति नरक है जो ८४ लाख नरकवासो से युक्त है । जिसका विस्तृत स्वरूप मुनिराज श्री चारित्ररत्नविजयजी म.सा. ने इस द्वितीय भाग में वर्णित किया है जहाँ (अधोलोक में) भवनपति देव - व्यंतर देव - वाणव्यंतर देव - परमाधामी देव - १ से ७ नरकों की स्वतंत्र व्यवस्थादि का स्वरूप देखने को मिलेगा ।

"नरक तणी वेदना सांभलता, हैया थर थरे..."

इतिहास गवाह है कि जब रानी पुष्पचूलाने स्वप्न में नरकावास रूप नरक का दर्शन किया तो वह देखते ही कांप उठी । धर्मध्यान के ४ प्रकार में से उन्हे "विपाकविचय धर्मध्यान" स्मरण हो आया गलत (खराब) कर्मो का फल नरक एवं अच्छे सुकृतो का फल स्वर्ग आदि का चिंतन - मनन करते करते वैराग्य जगा और अनुक्रम से सुदृढ बना, परिणामतः दीक्षा लेकर साधना द्वारा समस्त कर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गये ।

बस ! अंत में मेरी भावनानुसार विपाकविचय धर्मध्यान में उपयोगी वह ग्रंथ अक्षरशः अध्ययन कर जैनदर्शन के विराट बोध को हृदयंगत करे... इसी शुभेच्छा के साथ....

आचार्य श्री गुणरत्नसूरिपादपद्मरेणु
विजयरश्मिरत्नसूरि....
साबरमती
जेठ वद-१/ ता.१९-५-२०१५ / बुधवार

ILLUSTRATED

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति....

ग्रंथ विभागीकरण एवं परिचय

यह ग्रंथरत्न एक सामान्य पुस्तक के रूप में ही प्रकाशित नहीं हो रहा है... परंतु एक प्रकरण ग्रंथ - अभ्यासिक ग्रंथ के स्वरूप में प्रकाशित हो रहा है जिसमें सर्वज्ञ तीर्थंकर भगवंतों के द्वारा बताया गया विश्व क्या है ? उसकी व्यवस्था कैसी है ? तथा ऊर्ध्व-अधो-मध्य (तीर्छा) लोक में क्या क्या रहा हुआ है ? और तो और जैनशासन की जनरल फिलोसोफी एवं मान्यताएँ तथा जैनशासन के विशिष्ट पदार्थ क्या है ? इत्यादि बहुत सारी जानकारी से परिपूर्ण यह एक श्रेष्ठ ग्रंथ है.... इसलिये बाह्य दृष्टि से देखने जाये तो जैसा आकर्षण VIP अथवा 3D के ग्रंथादि में होता है वैसा आकर्षण इस ग्रंथ में देखने को शायद नहीं भी मिलेगा वह स्वाभाविक है फिर भी एक प्रयत्न इस तरफ किया है अतः अभ्यंतर दृष्टि से देखने जाये तो यह ग्रंथ वाचकवर्ग (अभ्यासुवर्ग) के लिये यह अनेकानेक प्रकारो से उपयोगी होगा... बस ! इसी अभ्यर्थना के साथ.....

संपादक - मुनि चारित्ररत्नविजय....

THE REAL UNIVERSE (PART - 1)

(द्वार - १) लोक विभाग

(1) श्री २४ तीर्थंकर भगवान (2) श्री पंच परमेष्ठी के१०८ गुण..... (3) क्या ईश्वर जगत का निर्माणकर्ता हो सकता है ?.... (4) जैनधर्म वह विश्वधर्म है..... (5) १४ राजलोक रूप विश्व-व्यवस्था..... (6) १४ राजलोक का यथार्थ स्वरूप..... (7) १४ राजलोक तथा तीन लोक के मध्यस्थान..... (8) ८ रुचक प्रदेश अर्थात् समभूतला..... (9) षड्द्रव्यात्मक लोक (विश्व)..... (10) धर्मास्तिकाय..... (11) अधर्मास्तिकाय..... (12) आकाशास्तिकाय (लोकाकाश)..... (13) आकाशास्तिकाय (अलोकाकाश)..... (14) काल द्रव्य..... (15) पुद्गल द्रव्य..... (16) जीव द्रव्य..... (17) षड्द्रव्यों के २३ द्वार.....★ लोक स्वरूप चिन्तन से मानसिक शान्ति....

(पेज नं. १से ३५)

(द्वार - २) मध्यलोक

(18) जैन गणितानुसार एक योजन के माईल कितने होते है ?..... (19) मध्यलोक का स्वरूप..... (20) मध्यलोक का मध्यद्वीप = जंबूद्वीप..... (21) जंबूद्वीप की जगती = किल्ला..... (22) भरत क्षेत्र..... (23) भरत क्षेत्र के मध्यखंड की विशेष जानकारी..... (24) ऋषभकूट पर्वत की विशेष जानकारी.....(25) भरत क्षेत्र में समुद्र कहाँ से आये...? (26) दीर्घ वैताढ्यपर्वत..... (27) जंबूद्वीप के ७ महाक्षेत्र..... (28) जंबूद्वीप के ६ वर्षधर पर्वत..... जंबूद्वीप के ६ महाद्रह.... (29) जंबूद्वीप अंतर्गत लघुहिमवंत पर्वत का वर्णन..... (30) लघुहिमवंत पर्वत पर पद्मद्रह सरोवर..... (31) जंबूद्वीप अंतर्गत हिमवंत क्षेत्र..... (32) जंबूद्वीप अंतर्गत महाहिमवंत पर्वत..... (33) जंबूद्वीप अंतर्गत हरिवर्ष क्षेत्र..... (34) जंबूद्वीप अंतर्गत निषध पर्वत (पार्ट - २) ..... (35) महाविदेह क्षेत्र..... (36) महाविदेह क्षेत्र..... (37) १ लाख योजन प्रमाण महाविदेह क्षेत्र कैसे होता है ?... (38) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १६ वक्षस्कार पर्वत..... (39) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत १२ अन्तर नदियाँ.....(40) महाविदेह क्षेत्र में आये हुए वनमुख का दृश्य..... (41) महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... (42) महाविदेह क्षेत्र में रहे हुए ४ गजदंत पर्वत..... (43) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत उत्तरकुरु क्षेत्र..... (44) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत यमक-समक पर्वत..... (45) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत ५ लघुद्रह..... (46) उत्तरकुरु क्षेत्र अंतर्गत १०० कंचनगिरि पर्वत..... (47) उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - १) ..... (48) उत्तरकुरु क्षेत्र में आया हुआ जंबूवृक्ष (पार्ट - २) ..... (49) महाविदेह क्षेत्र अंतर्गत देवकुरु क्षेत्र..... (50) जंबूद्वीप में रहा हुआ मेरुपर्वत..... (51) मेरुपर्वत के चारों तरफ रहा हुआ भद्रशालवन..... (52) मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - १)..... (53) मेरुपर्वत पर आया हुआ नंदनवन (पार्ट - २) ..... (54) मेरुपर्वत पर आया हुआ सौमनसवन..... (55) मेरुपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन(पार्ट - १) ..... (56) मेरूपर्वत पर आया हुआ पाण्डकवन(पार्ट - २) ..... (57) मेरुपर्वत पर आई हुई चूलिका..... (58) जंबूद्वीप अंतर्गत नीलवंत पर्वत..... (59) जंबूद्वीप अंतर्गत रम्यक् क्षेत्र और रुक्मि पर्वत.... (60) जंबूद्वीप अंतर्गत हिरण्यवंत क्षेत्र..... (61) जंबूद्वीप अंतर्गत शिखरी पर्वत..... (62) जंबूद्वीप का ऐरावत क्षेत्र..... (63) जंबूद्वीप में रहे हुए वृत्त (गोल) पदार्थों का यंत्र.....★ THE REAL UNIVERSE ग्रंथ के आधार ग्रंथों की सूची (द्वार १ से ५)

(पेज नं. ३६ से १३३)

THE REAL UNIVERSE (PART - 2)

(64) इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्ती (65) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - १) (66) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - २) (67) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ३) (68) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ४) (69) चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ५) (70) चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट -१) (71) चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट -२) (72) वासुदेव के ७ रत्न..... (73) कोटिशिला संबंधी विशेष जानकारी..... (74) ६३ शलाकापुरुष और अन्य महापुरुषो का क्रमादि..... (75) श्री प्रभुवीर के ११ गणधरों का जीवन परिचय..... (76) लवणसमुद्र..... (77) लवणसमुद्र अंतर्गत गौतमद्वीप..... (78) लवणसमुद्र अंतर्गत ५६ अंतर्द्वीप..... (79) लवणसमुद्र के तीन मागधादि तीर्थ..... (80) गोतीर्थ और जलवृद्धि का दो तरफ से दृश्य..... (81) जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण..... (पार्ट - १) (82) जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण..... (पार्ट - २) (83) धातकीखंड..... (84) कालोदधि समुद्र..... (85) पुष्करवरार्ध द्वीप..... (86) मानुषोत्तर पर्वत..... (87) अढाईद्वीप..... (88) अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - १) (89) अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - २) (90) अढाईद्वीप में शाश्वत चैत्य-प्रतिमाओं का वर्णन..... (91) तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र .....(पार्ट -१) (92) तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र .....(पार्ट -२) (93) सात द्वीप-सात समुद्र की बातें क्या सच है ?..... (94) नंदीश्वरद्वीप..... (95) श्री नंदीश्वरद्वीप विषयक किंचित् वर्णन..... (96) नंदीश्वरद्वीप में आया हुआ अंजनगिरि.....

(97) नंदीश्वरद्वीप के दधिमुख पर्वत और रतिकर पर्वत..... (98) कुंडलद्वीप की विशेष जानकारी..... (99) रुचकद्वीप..... (100) तिर्च्छालोकवर्ती क्रमशः द्वीप-समुद्र स्थापना..... (101) समस्त द्वीप-समुद्रों का आकार तथा प्रमाण..... (102) प्रत्येक समुद्रवर्ती जल का स्वाद और मत्स्यादि का प्रमाण..... (103) तिर्च्छालोक में रहे हुए द्वीप-समुद्रों का प्रमाणादि..... (104) तमस्काय का स्वरूप..... (105) ज्योतिष चक्र का स्वरूप..... (106) ज्योतिष चक्र के विमानों का आकारादि..... (107) सूर्य-चंद्रादिक के आभियोगिक विमान-वाहक देव..... (108) सूर्य-चंद्र की तीन पर्षदाएँ..... (109) ज्योतिष चक्र के चन्द्रादि की अग्रमहिषियाँ (पट्टराणियाँ)..... (110) ज्योतिष चक्र का प्रभाव मनुष्यों पर..... (111) सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहणादि का स्वरूप क्या है ?.... (112) मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहे हुए सूर्य-चन्द्रादि..... (113) मनुष्य क्षेत्र में सूर्य-चन्द्र की ६६-६६ पंक्तियाँ..... (114) चर ज्योतिष देवों के द्वारा मनुष्यलोक में काल का विभाग..... (115) जंबूद्वीप के सूर्य तथा चंद्र के मंडलादि का प्रमाण-अंतर इत्यादि..... ★ जीव और पुद्गलों की रंगभूमी....

(द्वार - ३) अधोलोक

(116) रत्नप्रभा पृथ्वी अर्थात् प्रथम नरक..... (117) सातों नरकों में रहें हुए प्रतरों के नामादि..... (118) ८ व्यंतर देव..... (119) ८ व्यंतर देवों की अग्रमहिषी..... 120) व्यंतर देवों की ८७ जाति..... (121) ८ प्रकार के वाणव्यंतर देव..... (122) १० प्रकार के भवनपति देव..... (123) भवनपति निकाय के १० भेद.....(124) चमरेन्द्र महाराजा की चमरचंचा और उत्पातपर्वत..... (125) चमरेन्द्र कौन ? व कहाँ से आया ?..... (126) चमरेन्द्र का सौधर्मेन्द्र तरफ प्रयाण..... (127) बन्धनादि १० प्रकार की क्षेत्रवेदना... (128) नरक में १० प्रकार की क्षेत्रवेदना..... (129) नरक में परस्पर कृत वेदना..... (130) नरक में परमाधामी कृत वेदना..... (131) १५ प्रकार के परमाधामी देव..... (132) परमाधामी देवों की गति ?..... (133) परमाधामी संबंधी कुछ और जानने जैसा..... (134) द्वितीय शर्कराप्रभा नामक पृथ्वी..... (135) तृतीय वालुकाप्रभा नामक पृथ्वी..... (136) चतुर्थ पंकप्रभा नामक पृथ्वी..... (137) पांचवीं धूमप्रभा नामक पृथ्वी..... (138) छठवीं तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....(139) सातवीं तमस्तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....(140) पापीयों को सजा भुगतने का स्थान अर्थात् ७ नरक..... (141) कौन - से जीव नरकायुष्य को बान्धते है.... (142) क्या नारकी जीव कभी सुखी हो सकते है ?.....(143) कौन से जीव कौन-सी नरक तक जा सकते है !.....(144) नरक संबंधी कुछ जानने जैसा....

(पेज नं. १ से १६६)

(द्वार - ४) ऊर्ध्वलोक

(145) ऊर्ध्व वैमानिक देवलोक..... (146) वैमानिक देवलोक की व्यवस्था..... (147) १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - १) (148) १२ वैमानिक देवों के संबंध में कुछ जानने जैसा..... (पार्ट - २) (149) अष्ट कृष्णराजी.....(150) नव (नौ) लोकांतिक देव..... (151) कल्पोपपन्न देवों के १० प्रकार..... (152) देवलोक के प्रतरों की व्यवस्था किस तरह है ?..... (153) ६२ प्रतर के कुल ६२ इन्द्रक विमान तथा नामादि..... (154) देवों का उत्तरवैक्रिय शरीर..... (155) किल्बिषिक देवों के प्रकार और उनके निवासस्थलादि..... (156) देव किन कारणों से मनुष्यलोक में आते है ?..... (157) किन कारणों से देव मनुष्यलोक में नहीं आते है ?..... (158) देवों की तथाविध भवप्रत्ययिक संपत्ति..... (159) वैमानिक देवलोक के विमानों का संख्या-दर्शक यंत्र..... (160) नव ग्रैवेयक के ९ विमान..... (161) नव ग्रैवेयक तक कौन उत्पन्न हो सकता है ?..... (162) ५ अनुत्तरवासी देव.... .(163) देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - १) (164) देवों के अवधिज्ञान का क्षेत्र और आकार..... (पार्ट - २) (165) चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - १) (166) चारों निकाय के देव तीन विभागों में विभक्त है ..... (पार्ट - २) (167) चारों निकायी देवों के १९८ भेद किस प्रकार होते है ?..... ★ उत्पाद - व्यय-ध्रौव्ययुक्तं सत्...

(द्वार - ५) प्रकीर्णक

(168) पृथ्वीकायादि ५ स्थावर जीव.....(169) त्रसकाय-विकलेन्द्रिय तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीव..... (170) संसारी जीवों के ५६३ भेद... (मनुष्य-देव-नारकी)..... (171) संसारी जीवों के ५६३ भेद पर कुछ विचारणा..... (172) निगोद के जीवों का स्वरूप..... (173) औदारिकादि ५ शरीर..... (174) ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - १) (175) ऋजु और वक्रगति का स्वरूप.....(पार्ट - २) (176) सिद्धों का सुख कैसा है ?..... (177) सिद्धशिला एवं सिद्धात्माएँ..... (178) सिद्धात्मा की अवगाहना..... (179) सिद्ध के १५ भेद और अनंतरादि प्रकार..... (180) आहारादि ६ पर्याप्ति..... (181) जीव के छः संस्थान और अजीव के पांच संस्थान..... (182) छः प्रकार के संघयण..... (183) ६ लेश्या का स्वरूप..... (184) आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - १) (185)आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - २) (186) आत्मा का विकासक्रम एवं १४ गुणस्थानक..... (पार्ट - ३) (187) केवली समुद्घात.....

(पार्ट - १) (188) केवली समुद्घात..... (पार्ट - २) (189) तीर्थंकर नामकर्म बंध कारण वीस स्थानक पद..... (190) पुद्गल (अजीव) के ५३० भेद..... (191) आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - १) (192) आठ कर्मों का स्वभाव..... (पार्ट - २) (193) अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप..... (पार्ट - १)(194) अवसर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप.....(पार्ट - २) (195) उत्सर्पिणी काल के ६ आराओं का स्वरूप..... (196) ६ प्रकार के बाह्य तप..... (197) ६ प्रकार के अभ्यंतर तप..... (198) श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - १) (199) श्री अष्टापदजी महातीर्थ..... (पार्ट - २) (200) क्या तुम्हें पता है भूकंप किस कारण से होता है ?.....

★ सुविदितं जगत्स्वभावम्...

(द्वार - ६) प्राचीन चित्रावली

(सैंकड़ों वर्ष प्राचीन हस्तलिखित-ताडपत्रीय ग्रंथो में दिये हुए १४ राजलोक एवं उसके अंतर्गत दुसरे पदार्थों संबंधी १०० से अधिक प्राचीन चित्रों का संग्रह...

(पेज नं. १ से १६७)

THE REAL UNIVERSE (PART - 4)

(द्वार - ७)

(१) जैनधर्म की प्राचीनता के प्रमाण... (२) जैनधर्म की अतिप्राचीनता के प्रमाण... (३) जैन दिगंबर मान्यतानुसार लोक वर्णन... (४) बौद्ध मतानुसार लोक वर्णन.... (५) वैदिक धर्मानुसार लोक वर्णन... (६) भारतवर्ष का नामकरण..... (७) वैज्ञानिकों के मतानुसार आधुनिक विश्व (८) चातुर्द्वीपिक भूगोल परिचय (९) चलिए ! पृथ्वी की जानकारी प्राप्त करते हैं... वैज्ञानिकों के मुख से (१०) अमेरिका की "फ्लेट अर्थ सोसायटी" भी पृथ्वी को सपाट मानती हैं (११) रहस्यमय उत्तरध्रुव... (१२) पृथ्वी गेंद जैसी गोल नही है और वह घूमती भी नही हैं उसके १०१ प्रमाण... (१३) ईसाई धर्म भी पृथ्वी को समतल मानता है ... (१४) ईस्लाम दर्शन (धर्म) में भी पृथ्वी स्थिर हैं .... (१५) पृथ्वी के गोल होने के वैज्ञानिकों के पास कोई प्रमाण नही है... (01) प्लेटो व एरिस्टोटल पृथ्वी को समतल मानते थे... (02) आर्यभट्ट पृथ्वी को गोल मानते थे... (03) ब्रह्मगुप्त पृथ्वी को समतल मानते थे... (04) निकोलस कोपरनिकसने पृथ्वी के घूमते रहने का तुक्का लगाया.... (05) कोपरनिकस में इस पुस्तक को प्रकाशित करने की हिम्मत नही थी.... (06) टायको ब्राह पृथ्वी को समतल मानता था... (07) जोहानिस केप्लर था टायको ब्राह के शिष्य... (08) जोहानिस केप्लर बने टायको ब्राह के वारिस... (09) गैलीलियो गैलिली पृथ्वी को घूमती हुई मानते थे ...(10) ऑइजक न्युटन ने गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत की शोध की थी... (11) अल्बर्ट आइंस्टाइनने न्युटन की परिकल्पना को गलत सिद्ध किया था... (12) गोलाकार सतह पर प्रकाश सरल रेखा में गति नही करता है... (13) आइंस्टाइन की फ्रेम ड्रेगिंग परिकल्पना... (14) ब्लेक होल की अजीबोगरीब परिकल्पना...(15) आइंस्टाइन के सिद्धांत के समक्ष गुजरात के वैज्ञानिक की चुनौती...(१६) पू. आत्मारामजी महाराज के अंतरोद्गार... (१७) जानने जैसी तारातंबोल नगरी... (१८) हिमालय के उस पार... (१९) पल्योपम और सागरोपम का स्वरूप... (२०) पृथ्वी के आकार और स्थिरता संबंधी सुंदर साहित्य वर्णन... (२१) इन विषयों को जानने के लिए ये पढो... (२२) लोक के नामादि ८ निक्षेप.... (२३) **jain cosmology** ग्रंथ के लिए आए हुए अभिप्रायः पत्र... (२४) पूज्यश्री के द्वारा अध्ययन-उपदेशात्मक एवं आगामी साहित्यों की सूची.... (२५) ग्रंथ प्रशस्ति....

(पेज नं. १ से १७३)

THE REAL UNIVERSE (PART - 5)

(द्वार - ८) "कृतिसंग्रह"

● प्राचीन-अर्वाचीन ग्रन्थकारों द्वारा लिखित चौदह राजलोक संबंधित पद्यात्मक भाषा में स्तुति-स्तवन-सज्झाय तथा पूजा की ढालों का अलौकिक "कृतिसंग्रह"...

(पेज नं. १ से ५२)

विशेष सूचना :- THE REAL UNIVERSE (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ में बताये गये खगोल-भूगोल संबंधी १ से २०० तक के लेखों को हिन्दी भाषा में संगृहित कीया गया है। तथा इन लेखों के पदार्थों को जिन जिन शास्त्रसंदर्भ पाठों से युक्त बताना है उन उन स्थानों में छोटे-छोटे अक्षरो में (फोन्ट में) १-२-३-४-५-६-७ इत्यादि करके आंकड़ों में रख दिये गये है और उसके शास्त्रपाठ उसी पेज में नीचे टिप्पन के स्वरूप उन ग्रंथों के नाम एवं श्लोक संख्यादि के साथ बताया गया है।

ऋण मुक्ति नहीं परंतु स्मृति...

ऋण स्मृति...

- जिसने मुझे अव्यवहारराशी निगोद में से बाहर निकालकर व्यवहाराशी में प्रवेश दिलाया एसे सिद्ध भगवंतों को मैं सर्वप्रथम नमस्कार करता हुँ।
- जिन्होने जन्म देकर सुसंस्कारों का सिंचन किया तथा मेरी दीक्षा की भावना को देख अपने मोह को छोड मुझे संयमधर्म के पालन की अनुमति दी, एसे माताश्री पवनबहेन एवं पिताश्री ओटरमलजी का भी मुझ पर महान् उपकार हैं।
- चरम तीर्थपति, आसन्नोपकारी श्री महावीरस्वामीजी, तथा अनंत लब्धिभंडार श्री गुरु गौतमस्वामीजी और पंचम गणधर श्री सुधर्मास्वामीजी महाराज के श्रुतवारसा का मैं वारसदार बना।
- सिद्धांत महोदधि प. पू. आ. श्री प्रेमसूरीश्वरजी म.सा., न्यायविशारद प. पू. आ. श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. तथा मेवाडदेशोद्धारक प. पू. आ. श्री जितेन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. रूप तीनो महापुरूषों की निरंतर कृपा-दृष्टि से मैं पावन बना।
- सिद्धांतदिवाकर, सुविशालगच्छाधिपति प. पू. आ. श्री जयघोषसूरीश्वरजी म.सा. के प्रसंगोपात प्रेरणा के पावन अमृतांजन से मैं और मेरी प्रज्ञाचक्षु (बुद्धि) आज इस ग्रंथ के संपादन को देखने में समर्थ बनी।
- दीक्षा के दिव्यमंदिर में आत्म भगवान की प्रतिष्ठा करने की अमूल्य प्रेरणा करनेवाले प. पू. दीक्षा दानेश्वरी, युवा जागृति प्रेरक आ. श्री गुणरत्नसूरीश्वरजी म.सा. के जिन्होंने मुझ जैसे अज्ञानी को अंगार भरे आलम में से उगारकर, मतलबीयों के मोह से मुक्त कराकर, परमपथ की पगदंडी बताकर मुझे संयम के साम्राज्य के ऊपर बैठने का अवसर प्रदान किया, आज उन्हीं की कृपा से मैं चारित्र रूपी रत्न को धारण कर सका हुँ।
- प्रवचन प्रभावक, षड्दर्शन निष्णात प. पू. आ. श्री रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा. के जिनकी अवसरोचित प्रेरणा, प्रोत्साहन और योग्य योगक्षेम के बल से मुझ जैसे पामर भी संयमधर्म के अनेकानेक योगों को पूर्ण करने में परम बने...।
- दीक्षा के प्रथम दिन से ही जिन्होने मुझे ग्रहण तथा आसेवन शिक्षा देकर संयमपालन के योग्य किया तथा अवसरोचित मुझे उस उस काल (समय) में पढ़ा-लिखाकर समर्थ किया... ऐसे बड़े भाई महाराजश्री (गुरुदेवश्री) प. पू. मुनिराज श्री हीररत्नविजयजी म. सा. को भी आज कैसे भुला जाय...? के जिनकी अपूर्व उदारता के कारण ही मैं आज यह सब कार्य करने को समर्थ बना हुँ।

पू. बहन म.सा. (सा.श्री भव्यज्ञरेखाश्रीजी म.सा.) को भी आज के दिन मैं भूल नहीं सकता। क्योंकी उनकी अवसरोचित टकोर के कारण ही मैं आज इस महाभिनिष्क्रमण रूप संयमरथ में आरूढ हो सका हुँ।

प. पू. वर्धमान तपोनिधि आ.श्री भुवनभानुसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री पद्मसेनविजयजी म.सा. एवं प.पू. शासनप्रभावक आ.श्री रत्नाकरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री रत्नज्योतविजयजी म.सा. के जिन्होने जैनशासन + संघों की बहुत सारी जवाबदारी सिर पर होते हुए भी प्रस्तुत ग्रंथ का निःस्वार्थ भाव से सूक्ष्मता पूर्वक संशोधन किया।

इस ग्रंथ में भाषाकीय शुद्धिकरण करनेवाले प. पू. आ. श्री राजशेखरसूरीश्वरजी म.सा. के शिष्यरत्न प. पू. पं. श्री धर्मशेखरविजयजी म.सा., प्रोफेसर रमेशभाई शाह (साबरमती), कमलेशजी पुरोहित (सिरोहि) एवं अभिषेकभाई वकिल (इंदौर) को भी मैं आज के दिन स्मरण कर रहा हुं, क्योकि उन्होंने शुद्धिकरण करके तो अविस्मरणीय उपकार किया हैं।

आधारग्रंथों के साक्षीपाठों के लिए मुख्य आधारस्तंभ श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, आ. श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानभंडार (कोबा) रहा है एवं अन्य अन्य पुस्तकादि में रहे चित्रों के संकलन के लिए मुख्य आधारस्तंभ रूप ''गीतार्थ गंगा'' संस्था रही हैं, इसलिए इनकी भी उत्कृष्ट श्रुतभक्ति के लिए मैं अनुमोदना करता हुँ।

The Real Universe (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथ में दिए गये **3D/2D** वगैरे सर्व प्रकार के चित्रों **(Pichres)** को तैयार करनेवाले जैनिझम ओनलाइन के सर्वेसर्वा श्रीमान् हितेषभाई (नवसारीवाले) को भी मैं विशेष धन्यवाद देता हुँ, क्योकि इनके कारण ही इस ग्रंथ में चार चांद लगे है एवं ग्रंथ सर्वमान्य-सर्वग्राह्य बना हैं।

ऊँकार ग्राफिक्स के माननीय श्री पियुषभाई को भी इस अवसर पर भूलाया नही जा सकता क्योंकि संपूर्ण ग्रंथ के डिजाइनिंग का कार्य इन्हि महानुभाव के हाथों से सुसंपन्न हुआ है।

सुश्रावक श्री अपूर्वभाई जो नवरंग प्रिन्टर्स के मालिक है, उनके द्वारा भी इस ग्रंथ का कंपोजिंग कार्य एवं मुद्रण कार्य एकदम व्यवस्थित रूप से हुआ है अतः उनका भी इस ग्रंथ में अपूर्व योगदान रहा हैं।

यह **The Real Universe** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथरत्न सर्व गच्छ एवं सर्व समुदाय में मान्य बने तथा ग्रंथ की उपादेयता श्री चतुर्विध संघ में बढ़े तदर्थे अपने अपने अणमोल अभिप्रायः भेजनेवाले ऐसे... प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री जयघोषसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री पद्मसागरसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री हेमप्रभसूरिजी म.सा. (नीतिसूरि समुदाय), प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री कलाप्रभसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री पुण्यपालसूरिजी म.सा., प.पू.गच्छाधिपति आचार्य श्री हेमप्रभसूरिजी म.सा. (गिरिविहारवाले), प.पू.आ.श्री अशोकसागरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री गुणरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री सूर्योदयसूरिजी / राजरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री जितरत्नसागरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री मुनिचंद्रसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रत्नचंद्रसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रत्नसुंदरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री जयसुंदरसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रश्मिरत्नसूरिजी म.सा., प.पू.आ.श्री रविशेखरसूरिजी म.सा., प.पू.पं.श्री रत्नज्योतविजयजी म.सा., प.पू.पं.श्री मोक्षरतिविजयजी म.सा. ...इत्यादि का मैं बहुत ही ऋणी हुं।

परम पूज्य शास्त्र संशोधक आचार्य श्री विजय मुनिचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. एवं प.पू.षड्दर्शन निष्णात आ.श्री विजय रश्मिरत्नसूरीश्वरजी म.सा. एवं प.पू.प्रवचन प्रभावक, शासन उन्नतिकारक आ.श्री विजय मुक्तिवल्लभसूरीश्वरजी म.सा. तथा **Prof. Dr.** सुधीरभाई वी. शाह (अम.) और माननीय श्री पंडितजी जितेन्द्र बी. शाह **(L.D. Institute of Indology)** के उपकारों को भी मैं कभी भी अदा नहीं कर सकता... क्योंकि इन्होंने तो प्रस्तुत ग्रंथोद्यान को प्रस्तावना के द्वारा पल्लवित किया हैं।

विशेष में एक बात आपको बतानी हैं कि... प्रकरण एवं आगम ग्रंथों का अभ्यास करते समय तथा इस ग्रंथ के लेखन करते समय कितनेक विषय मुझे बहुत ही सुंदर एवं सरल शैली में प्रस्तुत किये हुए लगे अतः इस ग्रन्थ में कितनेक विषयों को उन उन ग्रंथो में से सीधे युं ही प्रस्तुत किया गया हैं।

इस ग्रंथरत्न का लेखन करते समय जो कोई भी जैनागम-प्रकरण ग्रंथ- अन्य शास्त्र अथवा पुस्तकों तथा इतर ऐसे वेद-पुराणादि ग्रंथों की सहाय ली हैं उन सभी का नामोल्लखन उन उन विषयों की शरुआत में रहे हुए आधार ग्रंथों की सूची में किया गया है, फिर भी जो छद्मस्थता के वश से बाकी रह गया हो तो मैं हृदय से क्षमा प्रार्थता हुँ।

इस **The Real Universe** (सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड) ग्रंथरत्न लेखन-संपादन में नामी / अनामी सर्व व्यक्ति के जो भी प्रत्यक्ष के परोक्ष रूप से इस कार्य में सहाय-मदद रूप बने हों... उनका भी में हृदय से सदा ऋणी हुं एवं सदा ऋणी रहुँगा।

गुरुगुणरश्मिहीरपादपद्मरेणु

मुनि चारित्ररत्नविजय

॥ ॐ ह्रीँ वद वद वाग्वादिनी ! भगवति ! सरस्वती ! श्रुतदेवी !
मम जाड्यं... हर हर श्री भगवत्यैक ठः ठः ठः स्वाहा ॥

॥ ऐँ नम ॥

कविजनों के मनोवांछितों को पूर्ण
करने के लिए कल्पलता के समान
हे श्रुताधिष्ठायिका ! सरस्वती माते !

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE
सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY (सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

विषयक ग्रंथ का सुंदर आलेखन हो इसलिए सान्निध्य करने की प्रार्थना के साथ आपका प्रणिधान कर रहा हुं ..... अतः हे माँ शारदे ! आप प्रसन्नता पूर्वक सानिध्य करना... बस ! इतना मंगल करने के बाद इस ग्रंथ का प्रारंभ कर रहा हुं ।

सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE REAL UNIVERSE

सर्वज्ञ कथित ब्रह्मांड

JAIN COSMOLOGY(सर्वज्ञ कथित विश्व व्यवस्था) गुजराती ग्रन्थ की हिन्दी संवर्धित आवृत्ति.....

(PART - 2)

INDEX

64

इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्ती ... २

65

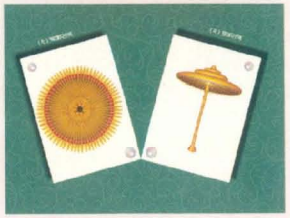

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - १) ४

66

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - २) ६

67

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ३) ८

68

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ४) १०

INDEX

69
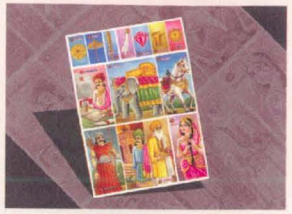
चक्रवर्ती के १४ रत्न...
(७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ५)
१२

70

चक्रवर्ती के नवनिधान =
नवनिधि..... (पार्ट -१)
१४

71

चक्रवर्ती के नवनिधान =
नवनिधि..... (पार्ट -२)
१६

72
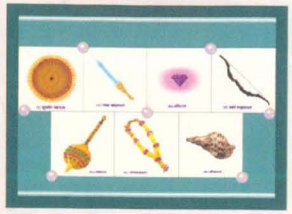
वासुदेव के ७ रत्न.....
१८

73
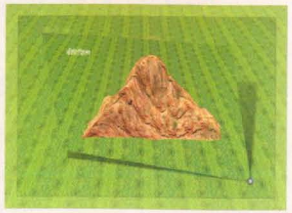
कोटिशिला संबंधी
विशेष जानकारी.....
२०

74

६३ शलाकापुरुष और अन्य
महापुरुषो का क्रमादि.....
२२

75
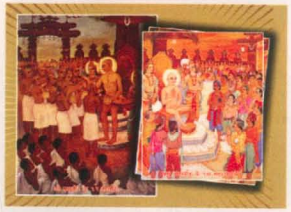
श्री प्रभुवीर के ११ गणधरों
का जीवन परिचय.....
२४

76
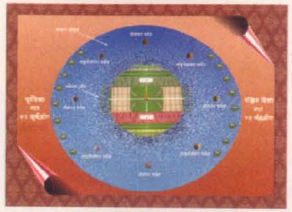
लवणसमुद्र.....
२६

77

लवणसमुद्र अंतर्गत गौतमद्वीप.....
२८

78
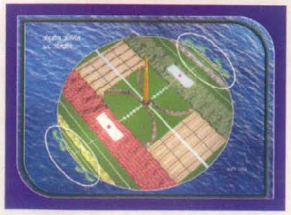
लवणसमुद्र अंतर्गत ५६ अंतर्द्वीप.....
३०

79
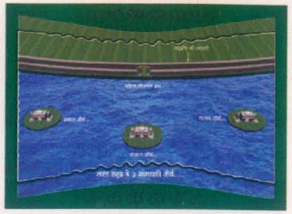
लवणसमुद्र के तीन
मागधादि तीर्थ.....
३२

80
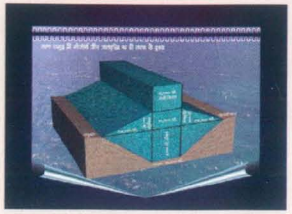
गोतीर्थ और जलवृद्धि
का दो तरफ से दृश्य.....
३४

81

जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा
का कारण..... (पार्ट - १)
३६

82

जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा
का कारण..... (पार्ट - २)
३८

INDEX

83

धातकीखंड..... ४०

84

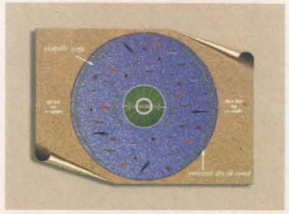

कालोदधि समुद्र..... ४२

85

पुष्करवरार्ध द्वीप..... ४४

86

मानुषोत्तर पर्वत..... ४६

87

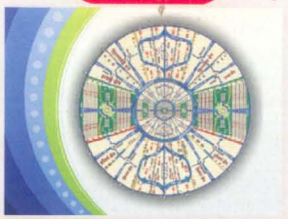

अढाईद्वीप..... ४८

88

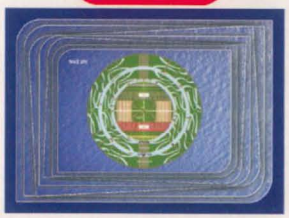

अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - १) ५०

89

अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - २) ५२

90

अढाईद्वीप में शाश्वत चैत्य-प्रतिमाओं का वर्णन..... ५४

91

तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र (पार्ट -१) ५६

92

तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र (पार्ट -२) ५८

93

सात द्वीप-सात समुद्र की बातें क्या सच है ?..... ६०

94

नंदीश्वरद्वीप..... ६२

95

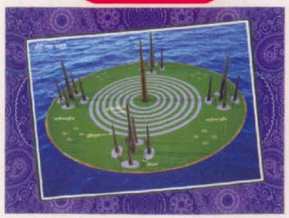

श्री नंदीश्वरद्वीप विषयक किंचित् वर्णन..... ६४

96

नंदीश्वरद्वीप में आया हुआ अंजनगिरि..... ६६

INDEX

97

नंदीश्वरद्वीप के दधिमुख पर्वत और रतिकर पर्वत..... ६८

98

कुंडलद्वीप की विशेष जानकारी..... ७०

99

रुचकद्वीप..... ७२

100

तिर्च्छालोकवर्ती क्रमशः द्वीप-समुद्र स्थापना..... ७४

101
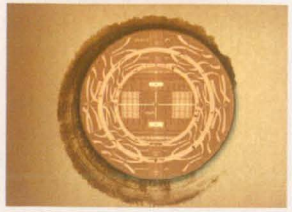
समस्त द्वीप-समुद्रों का आकार तथा प्रमाण..... ७६

102

प्रत्येक समुद्रवर्ती जल का स्वाद और मत्स्यादि का प्रमाण..... ७८

103

तिर्च्छालोक में रहे हुए द्वीप-समुद्रों का प्रमाणादि..... ८०

104

तमस्काय का स्वरूप..... ८२

105

ज्योतिष चक्र का स्वरूप..... ८४

106

ज्योतिष चक्र के विमानों का आकारादि..... ८६

107

सूर्य-चंद्रादिक के आभियोगिक विमान-वाहक देव..... ८८

108

सूर्य-चंद्र की तीन पर्षदाएँ..... ९०

109

ज्योतिष चक्र के चन्द्रादि की अग्रमहिषियाँ (पट्टराणियाँ)..... ९२

110

ज्योतिष चक्र का प्रभाव मनुष्यों पर..... ९४

INDEX

111

सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहणादि
का स्वरूप क्या है ?.....
१६

112

मनुष्य क्षेत्र के बाहर
रहे हुए सूर्य-चन्द्रादि.....
१८

113

मनुष्य क्षेत्र में सूर्य-चन्द्र
की ६६-६६ पंक्तियाँ.....
१००

114

चर ज्योतिष देवों के द्वारा
मनुष्यलोक में काल का विभाग.....
१०२

115

जंबूद्वीप के सूर्य तथा चंद्र के
मंडलादि का प्रमाण-अंतर इत्यादि.....
१०४

द्वार-३

अधोलोक
१०६

116
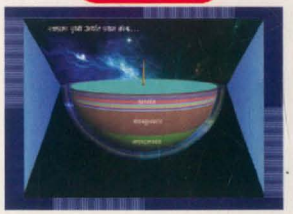
रत्नप्रभा पृथ्वी
अर्थात् प्रथम नरक.....
११०

117

सातों नरकों में रहें हुए
प्रतरों के नामादि.....
११२

118

८ व्यंतर देव.....
११४

119

८ व्यंतर देवों की अग्रमहिषी.....
११६

120
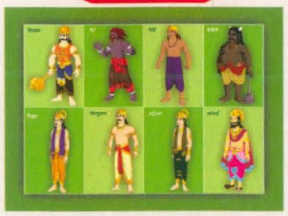
व्यंतर देवों की ८७ जाति.....
११८

121

८ प्रकार के वाणव्यंतर देव.....
१२०

122

१० प्रकार के भवनपति देव.....
१२२

123

भवनपति निकाय के १० भेद.....
१२४

INDEX

124
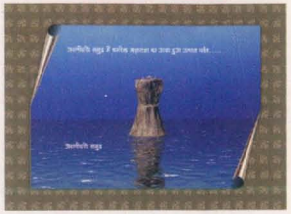
चमरेन्द्र महाराजा की
चमरचंचा और उत्पातपर्वत.....
१२६

125

चमरेन्द्र कौन ?
व कहाँ से आया ?.....
१२८

126
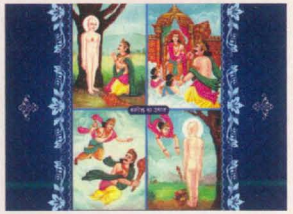
चमरेन्द्र का
सोधर्मेन्द्र तरफ प्रयाण.....
१३०

127

बन्धनादि १० प्रकार
की क्षेत्रवेदना...
१३२

128
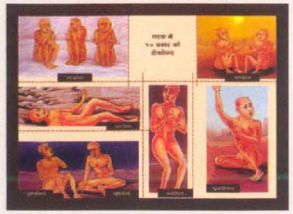
नरक में १० प्रकार
की क्षेत्रवेदना.....
१३४

129

नरक में परस्पर कृत वेदना.....
१३६

130

नरक में परमाधामी
कृत वेदना.....
१३८

131

१५ प्रकार के परमाधामी देव.....
१४०

132

परमाधामी देवों की गति ?.....
१४२

133

परमाधामी संबंधी कुछ
और जानने जैसा.....
१४४

134

द्वितीय शर्कराप्रभा
नामक पृथ्वी.....
१४६

135

तृतीय वालुकाप्रभा
नामक पृथ्वी.....
१४८

136

चतुर्थ पंकप्रभा
नामक पृथ्वी.....
१५०

137

पांचवीं धूमप्रभा
नामक पृथ्वी.....
१५२

INDEX

138

छठवीं तमःप्रभा
नामक पृथ्वी.....

१५४

139

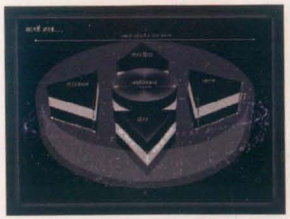

सातवीं तमस्तमःप्रभा
नामक पृथ्वी.....

१५६

140

पापीयों को सजा भुगतने का
स्थान अर्थात् ७ नरक.....

१५८

141

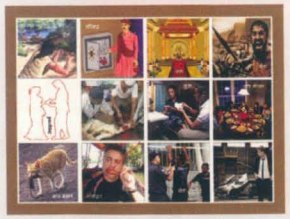

कौन-से जीव नरकायुष्य
को बाँधते है ?.....

१६०

142

क्या नारकी जीव कभी
सुखी हो सकते है ?.....

१६२

143

कौन से जीव कौन-सी नरक
तक जा सकते है !.....

१६४

144

नरक संबंधी कुछ जानने जैसा.....

१६६

चक्रवर्ती

वासुदेव

बलदेव

इस अवसर्पिणी काल के १२ चक्रवर्ती

१२ चक्रवर्ती के नाम (१) भरत (२) सगर (३) मघवा (४) सनत्कुमार (५) शांतिनाथ (६) कुंथुनाथ (७) अरनाथ (८) सुभुम (९) महापद्म (१०) हरिषेण (११) जय (१२) बह्मदत्त। ये चक्रवर्ती चारो निकाय की देवगति में से अथवा प्रथम नरक में से ही आ सकते है। अन्य कोई भी गति में से आया हुआ चक्रवर्ती का जीव उत्पन्न नहीं हो सकता है। चक्रवर्ती भी तीर्थंकर के जैसे उच्च कुल - जाती एवं काश्यप गोत्रीय तथा सुवर्ण की कांतिवाले होते है। तीर्थंकरों की माता के जैसे चक्रवर्ती की माता भी जन्म के पूर्व १४ महास्वप्न को देखती है, परंतु थोड़े अस्पष्ट रूप से देखती है एवं चक्रवर्ती की माता भी जो चक्रवर्ती का जीव देवलोक से आया हो तो १२ वें स्वप्न में विमान को देखती है और नरक में से आया हुआ हो तो भवन को देखती है।

सर्व चक्रवर्ती प्रथम संघयणी, प्रथम संस्थानी एवं १००८ लक्षणों से युक्त होते है। यौवन अवस्था प्राप्त करते ही राजाओ के प्रशस्त ऐसे ३६ गुणों के धारक बनते है। चक्रवर्ती ७ ऐकेन्द्रिय रत्न और ७ पंचेन्द्रिय रत्न से संयुक्त होते है। यह सर्व रत्न १,०००-१,००० देवों से (यक्षों से) अधिष्ठित होते है तथा चक्रवर्ती की सेवा में भी स्वयं २,००० यक्ष सदा काल हाजराहजुर होते है। अर्थात् १४,०००+२,००० = १६,००० यक्ष चक्रवर्ती के सेवक देव होते है। चक्रवर्ती को दिग्विजय करते १३ स्थानों में अट्ठम तप करने पड़ते है एवं ४ स्थानों पर बाण छोड़ने पडते है, परंतु जो तीर्थंकर सहित चक्रवर्ती होते है, जैसे की शांतिनाथ, कुंथुनाथ, अरनाथ उनको अट्ठम तप एवं बाण छोड़ने की प्रक्रीया करनी नहीं पड़ती है परमात्मा के पुण्य प्रभाव से देवगण सामने से ही आ जाते है। इन चक्रवर्ती का साम्राज्य संपूर्ण भरतक्षेत्र के ६ खंडो पर होता है। अन्त समय में जो संयम की साधना कर ले तो स्वर्ग अथवा मोक्ष को प्राप्त करते है। अन्यथा निश्चित रूप से नरकगामी ही बनते है।

इस अवसर्पिणी काल के ९ वासुदेव - प्रतिवासुदेव - बलदेवादि.....

९ वासुदेवों कें नाम (१) त्रिपृष्ठ (२) द्विपृष्ठ (३) स्वयंभू (४) पुरुषोत्तम (५) पुरुषसिंह (६) पुरुषपुंडरीक (७) दत्त (८) लक्ष्मण (९) कृष्ण। इन ९ वासुदेवों का स्वरूप आपको आगे के प्रकरण में बताया जायेगा।

९ प्रतिवासुदेवों कें नाम (१) अश्वग्रीव (२) तारक (३) मेरक (४) मधुकैटभ (५) निशुंभ (६) बलि (७) प्रह्लाद (८) रावण (९) जरासंघ। ये प्रतिवासुदेवों का मरण नियमा वासुदेवों के हाथों से ही चक्ररत्न द्वारा होता है। इनकी मालिकी के आधिन तीन खंडों का संपूर्ण साम्राज्य प्रतिवासुदेवों के मरण के बाद में वासुदेवों के आधिन होता है। (आज की भाषा में कहे तो वासुदेव अर्थात् हीरो एवं प्रतिवासुदेव अर्थात् विलन)। ये ९ वासुदेवों के पहले उत्पन्न हुए ऐसे उनके ही बड़े भाई बलदेव भी ९ होते है।

९ बलदेवों के नाम (१) अचल (२) विजय (३) भद्र (४) सुप्रभ (५) सुदर्शन (६) आनंद (७) नंदन (८) पद्म (रामचंद्रजी) और (९) बलभद्र। इन बलदेवों एवं वासुदेवों के पिता तो एक ही होते है। परंतु माताए अलग अलग होती है और उनमें परस्पर अत्यंत प्रेम होता है। ये बलदेवों का जन्म चारों निकाय के देवलोक में से हो सकता है। ये ९ बलदेव जीवन के अंतिम चरण में संयम जीवन ग्रहण कर स्वर्ग अथवा मोक्ष (मुक्ति) को प्राप्त करते है। जब की वासुदेव और प्रतिवासुदेव का आगामी भव नियमा नरकगती में ही बताया गया है।

(१) (A) समवायांग सूत्र, गाथा-१२२/१२३, (B) तित्थोगाली पयन्ना-५७०/५७१ (C) प्रवचन सारोद्धार-१२०९ (D) रत्नसंचय-५२ (E) विचारसार-५४१ (F) सप्ततिशतकस्थानप्रकरणम्-३४८, (G) शतपञ्चाशितिका संग्रहणी-१०२ (H) विचारसार-६६१ (I) रत्नसंचय-५७, (J) गाथासहस्री-३९७ (K) तित्थोगालीपयन्ना-५७४ (L) गाथासहस्री-३९४ से ३९६, (M) तित्थोगाली पयन्ना-५७२ से ५७४ (N) विशेषावश्यक भाष्य-४२ (O) समवायांग सूत्र, गाथा-१२९, (P) तित्थोगालीपयन्ना-५७८ (Q) शतपञ्चाशितिकासंग्रहणी-११६ (R) प्रवचन सारोद्धार-१२९९

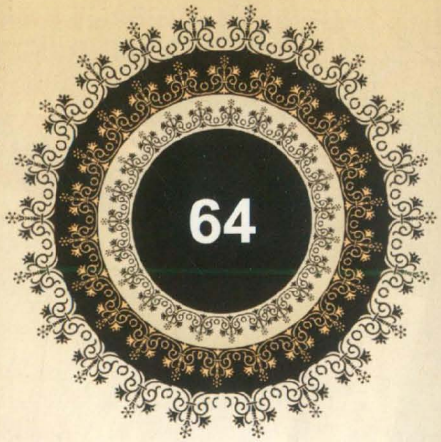

मथुरा के कंकाली टीले की खुदाई करते समय उसमें से बहुत सारी जैनधर्म की वस्तुएँ मीली थी। जिसमें परमात्मा सर्वज्ञ महावीरस्वामी भगवान के गर्भापहार का शिलापट था। इस पट में रत्नजडित पलंग में त्रिशलामाता सोये हुए है और उनकी दोनो तरफ सखीया पंखे से हवा दे रही है हरण जैसे मुह वाले हरिणैगमेषी देव वहां पर आते है। अवस्वपिनी निद्रा देकर हरिणैगमेषी देव प्रभु महावीर स्वामीजी को वहां से लेकर जाते है। (निष्णातों के कथनानुसार यह पट वगेरे सभी चीजे २,०००वर्षो से अधिक प्राचीन है।)

(१) चक्ररत्न

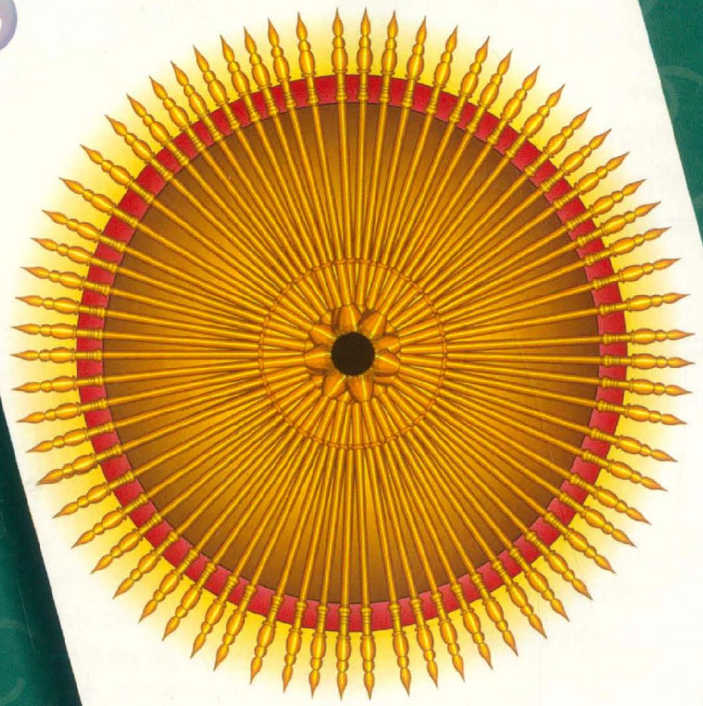

(२) छत्ररत्न

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - १)

(१) चक्ररत्न[१] = चक्रवर्ती का जन्म उत्तम जाति और गोत्र में, उत्तम राज-भोग कुल में ही होता है। वो सर्वांग सामुद्रिक शास्त्रों में कहे गए उत्तमोत्तम १०८ लक्षण-युक्त होते हैं। महान् देदिप्यमान पुण्य के पुंज रूप होते हैं। चक्रवर्ती योग्य अवस्था पाने पर राजगद्दी पर बेठते हैं। बेठने के बाद यथायोग्य काल पर अपना महान् उदयारंभ होने का योग्य समय होने पर प्रथम चक्राकार में वर्तित, जगमगाता, देदिप्यमान, विविध प्रकार की मणि-मोतियों की माला, घंटी तथा पुष्पमालाओं से युक्त-अलंकृत, चक्री को सदा आधीन, सूर्य जैसे दिव्य तेज से दिशाओं को प्रकाशमय करनेवाले १,००० देव-यक्षों से अधिष्ठित ऐसा सुदर्शन चक्ररत्न शस्त्ररूप होने से अपने पूर्वजों की आयुधशाला में उत्पन्न होता है। सर्वरत्नों में और आयुधों में श्रेष्ठ होने से तथा चक्रवर्ती को प्राथमिक दिग्विजय करानेवाला होने से सबसे प्रथम यह उत्पन्न होता है। सर्वायुधों में सर्वोत्तम प्रभाववाला और दुर्जय, महारिपुओं पर विजय पाने में सदा ही अमोघ शक्तिवाला यह रत्न चक्री से शत्रुओं पर छोड़ने के बाद सैंकड़ों वर्ष पर भी उसे (चक्री के स्वगौत्रीय को वर्ज्य) मारकर ही चक्री के पास आनेवाला होता है। यह रत्न प्रायः* आयुधशाला में जब उत्पन्न होता है तब हर्षित ऐसा शाला-रक्षक स्वयं ही प्रथम चक्ररत्न का वंदनादिक से सत्कार करके स्वनृपति (जो अभी भावी चक्री रूप में है उन्हें) को हर्षानंद से हृष्ट-पुष्ट वह सेवक राजसभा में खबर देता है। भावी चक्री और वर्तमान के महानृपति (महाराजा) उस बात को सुनते ही महानन्द पाकर ७-८ कदम चक्ररत्न के सम्मुख चलकर स्तुति-वंदनादिक करके, खबर देनेवाले शालारक्षक को प्रीतिदान में, मुगुट को वर्ज्य पहने हुए सर्वाभूषण अर्पण करके तथा आजीविका का प्रबंध करवाकर रवाना करते हैं। फिर नगर की अठारह आलम को खबर देकर नगरशुद्धि कराके धूमधाम से प्रजा सहित नृपति पुष्प-चंदन, सुगंधी द्रव्यों की विपुल सामग्री पूर्वक शाला में जाकर सुदर्शन चक्ररत्न की यथार्थ विनयपूर्वक पूजादिक विधियाँ करते हैं। फिर चक्ररत्न की महिमा फैलाने अष्टाह्निका* महामहोत्सव करके, प्रजा को दान देकर, ऋणमुक्त करके आनंदानंद बरताते है। देवाधिष्ठित ये रत्न, छःखण्डों को जीतने को जाते चक्री को प्रथम से ही स्वयं मार्गदर्शक और विजेता के रूप से चक्री के आगे-आगे चलते हैं और चक्री उनके पीछे-पीछे चलता हैं और जब चले तब प्रमाणांगुल से एक योजन चलकर खड़ा रहता हैं।

(२) छत्ररत्न = यह भी आयुधशाला में ही उत्पन्न होता हैं। यह रत्न छाते की तरह गोलाकार मस्तक पर धारण करने योग्य अति मनोहर होता है, अतः शरदऋतु के पूर्णचन्द्र जैसा मनोहर, चित्र-विचित्र और ऊपर ९९,००० (छाते में होते हैं इस तरह) सुवर्ण की सलाइयों से अंदर के भाग में देखने पर पंजराकार जैसा शोभता, अन्तभाग में चारों तरफ मोती-मणिरत्न की मालाओं से मंडित और छत्र के बाहर के उपरितन भाग में

(क्रमशः)

★ प्रायः शब्द इसलिए है की भावी चक्री सुभूम को मारने के लिए दानशाला के अस्थि प्रसंग में जब परशुरामने परशु रक्खा कि तुरंत ही वह परशु महापुण्यशाली सुभूम को कुछ भी न कर सका। उस समय रुष्ट बने सुभूम के हाथ में रहा अस्थि = थाली उसी समय सुभूम के विजय के लिए ही स्वयं चक्ररूप बन गई और उस चक्र से उसने परशुराम को मरण के शरण किया।

★ तीर्थंकर के जन्म की खुशहाली में उसके पिता जिस प्रकार करते हैं उस तरह...।

(१) (A) ठाणांग सूत्र, अध्य.-७, सूत्र-५५८ (B) समवायांग सूत्र-१४

स्वयं की अवैज्ञानिक व अतार्किक कल्पना के आधार पर कोपरनिकस ने एक कल्पना-चित्र भी बनाया, जिसमें मध्य में सूर्य को रखा और आसपास भ्रमण कर रहे ग्रहों को बताया। इन ग्रहों में पृथ्वी को भी एक ग्रह के रूप में दर्शाया गया था। तब कोपरनिकस ने कल्पना की थी कि पृथ्वी एक ही दिन में सूर्य के चारों ओर एक प्रदक्षिणा करती है। कोपरनिकस ने जब विचार किया कि पृथ्वी सूर्य की प्रदक्षिणा करती है तब एक समस्या उभर कर सामने आई। पृथ्वी यदि आकाश में परिभ्रमण करती है, तो जब वह कुछ तारों के नजदीक आ जाती होगी, तब वे तारे एकदम प्रकाशित होकर दिखने चाहिए और जब वे दूर जाएँ तब वे धुंधले हो जाना चाहिए लेकिन वास्तव में ऐसा होता नहीं है और इसलिए पृथ्वी के परिभ्रमण का तर्क गलत सिद्ध हुआ था। अपनी भूल स्वीकार करने के स्थान पर कोपरनिकस ने दूसरी भूल की और यह बताया कि तारे पृथ्वी से इतने अधिक दूर है कि पृथ्वी के घूमने के कारण उनके प्रकाश में कोई अन्तर मालूम नहीं होता है।

(३) दंडरत्न

(४) चर्मरत्न

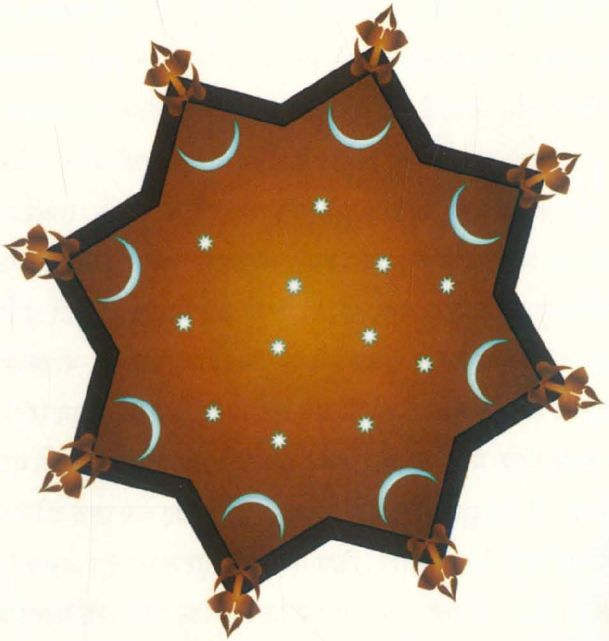

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - २)

चोटि पर अर्जुन सुवर्ण के शरच्चन्द्र जैसा स्वच्छ और उज्ज्वल शिखरवाला होता है। देवाधिष्ठित यह रत्न वामप्रमाण होने पर भी चक्री के हस्तप्रभाव मात्र से ही (चर्मरत्न को ढंकने के लिए) साधिक १२ योजन विस्तीर्ण बनकर मेघादिक के उपद्रव से रक्षण करने को समर्थ होता है। जिस तरह भरतचक्री छः खण्डों को जीतने को जाते वक्त उत्तर भरतार्ध में युद्ध करते मलेच्छ लोगों के आराधित मेघकुमार देवने चक्री सैन्य को कष्ट देने के लिए जब सात दिन तक वृष्टि की, तब चक्री ने छत्र और चर्मरत्न का अद्‌भुत संपुट बनाकर समग्र सैन्य का रक्षण किया था। यह रत्न वृष्टि-ताप-पवन-शीतादि दोषों को हरनेवाला शीतकाल में गरमी और उष्णकाल में शीतलता देनेवाला और पृथ्वीकायमय होता है।

(३) दंडरत्न = आयुधशाला में उत्पन्न होनेवाला यह रत्न, चक्री के कंधे पर रहता है। चक्री के आदेश होने पर मार्ग में आती अनेक ऊँची-नीची विषमभूमि आदि सर्व को दूर करके समतल-सरल मार्ग कर देनेवाला, शत्रु के उपद्रवों को हरनेवाला, इच्छित मनोरथों का पूरक, दिव्य और अप्रतिहत होता हैं। तथा जरूरत पड़ने पर यत्नपूर्वक प्रयोग करने पर (सगरचक्री के पुत्रों के जैसे) १,००० योजन गहरी अधोभूमि में अद्‌भुत वेग से प्रवेश करके, जमीन खोदकर मार्ग कर देनेवाला, गुफाओं के द्वार खोलनेवाला, वज्र का बना हुआ, तथा बीच में तेजस्वी रत्नों की पांच रेखा-पट्टीओ से सुशोभित हैं।

(४) चर्मरत्न = चमड़े का बना हुआ यह रत्न, चक्री के लक्ष्मी भंडार में उत्पन्न होता हैं। यह रत्न श्रीवत्सादि के आकारवाला, अनेक प्रकार के चित्रों से चित्रित, शत्रु से दुर्भेद्य, चक्रवर्ती की संपूर्ण सेना बैठ जाए तो भी झूके नहीं ऐसा होता हैं। इस रत्न का उपयोग यह हैं की जब चक्रवर्ती छः खण्डों को जीतने के लिए जाते हैं तब सेनापतिरत्न को गंगा-सिंधु के निकुष्टों (प्रदेश) को साधने भेजता हैं तब सेनापति समग्र चक्रीसैन्य को उसके उपर (चर्मरत्न पर) बिठाकर गंगा-सिंधु जैसी महान् नदियों को जहाज की तरह शीघ्र तैर जाता हैं, फिर भी लेश मात्र झुकता नहीं हैं। साथ ही समुद्रादिक तैरने में भी उपयोगी होता हैं। इसलिए वाम प्रमाण होने पर भी चक्री के स्पर्श मात्र से साधिक १२ योजन विस्तीर्ण होता हैं। जरूरत पड़ने पर गृहपतिरत्न (मनुष्यरत्न) उस चर्मरत्न पर बोये धान्य (शाकादिक) को शाम को ही काट लेने योग्य करनेवाला और वैताढ्यपर्वत की उत्तर दिशा में बसे मलेच्छ राजाओं के साथ युद्ध होने पर, चक्री को परास्त करने को मलेच्छ अपने आराधित किए मेघकुमार देवों के पास मेघवृष्टि करवाते है, उस प्रसंग पर उस वृष्टि से बचने को ऊपर के ढक्कन सम छत्ररत्न और नीचे चर्मरत्न विस्तृत* करके उस चर्मरत्न पर चक्री की महासेना को स्थापित करके, चारों बाजु से संपूट बना दिया जाता हैं, फिर प्रस्तुत छत्ररत्न के साथ बीच में मणिरत्न बांधा जाए, जिससे १२ योजन के संपूट में सर्वत्र सूर्य के जैसा प्रकाश पड़ता है, जिससे संपूट के गमनागमन सुखरूप से हो सकता हैं। इस तरह एक विराट तंबू जैसा दृश्य खड़ा हो जाता है।

★ यह रत्न पृथ्वीकायमय हैं, तो भी वह चर्म-चमडे के जैसा मजबूत तलवेवाला और देखनेवाले को मानो चमडा ही बिछाया हो वैसा आभास उत्पन्न करनेवाला होने से उसका नाम "चर्म" शब्द से व्यपदेश किया जाता हैं। अन्यथा सचमुच चमडा नहीं हैं। चमडा तो पंचेन्द्रिय जीव का ही संभवित होता हैं, जबकी ये रत्न तो एकेन्द्रिय है, इसी तरह दण्डरत्न के लिए समझना। यह सातों रत्न पार्थिव स्वरूप में हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों का दावा है कि उन्होंने ज्ञात विश्व के समस्त प्रदेशों के बारे में जानकारी प्राप्त कर ली है। यह दावा सत्य से परे है। आज भी पृथ्वी के ऐसे कई प्रदेश है, जिनका पूर्ण विवरण वैज्ञानिक अभी तक प्राप्त नहीं कर पाये है। उत्तर ध्रुव - दक्षिण ध्रुव एवं बरमुडा ट्रायंगल के प्रदेश इनके ज्वलन्त उदाहरण है।

जैनधर्म का साहित्य मात्र जैनियों को ही नहीं अपितु अन्य पाश्चात्य संशोधन के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए तथा विशेषतः जिन्हे पौर्वात्य धर्मो के तुलनात्मक अभ्यास में रुचि है उनके लिए तद्रुप बनाकर हर्ष मग्न बनानेवाला विषय है।

- C. B. राजवाढे
(प्रो. ओफ पाली, बरोडा)

(६) काकिणीरत्न

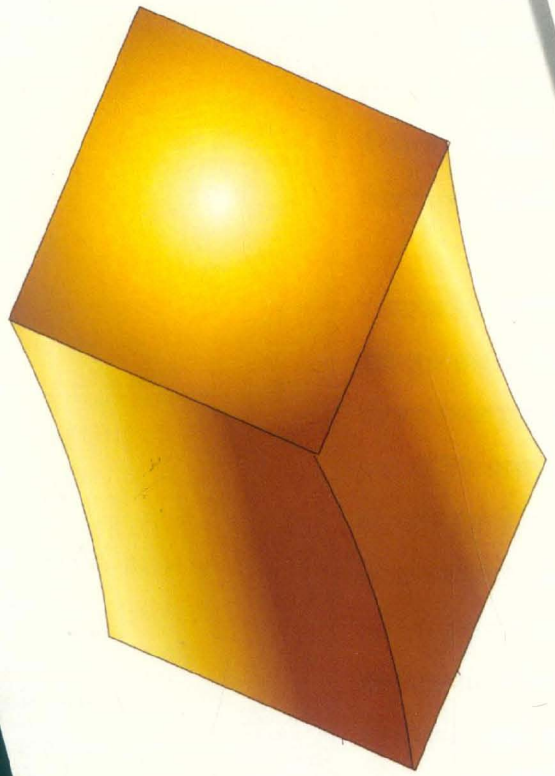

(५) खड्गरत्न

(७) मणिरत्न

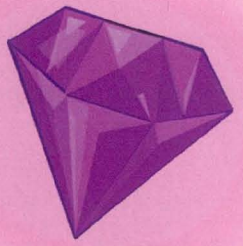

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ एकेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ३)

(५) खड्गरत्न = तलवार जैसा यह रत्न श्री आयुधशाला में उत्पन्न होता हैं। युद्ध में अप्रतिहत शक्तिवाला हैं। तीक्ष्ण धारवाला, श्यामवर्ण का, पर्वत-वज्रादिक जैसी दुर्भेद्य वस्तु को चर या स्थिर प्रकार में पदार्थ को भेदनेवाला, अद्‌भुत वैडूर्यादि रत्नलता से शोभित, सुगंधमय, तेजस्वी होता है।

(६) काकिणीरत्न = यह रत्न पहाड़ों को भी छेद शके ऐसा चक्री के कोशागार-लक्ष्मीभंडार में उत्पन्न होता है। यह विषहर, अष्टजाति सुवर्णो का बना है, छः दिशाओं में छः तलोवाला अतः पासों की तरह समचतुष्कोणाकार, १२ हाशिया और ८ कर्णीकावाला, ८-७-६ इत्यादि अनियमित तोले के जितने सुवर्णप्रमाण का सुनार की एरण (लोहे का औजार) जैसा होता हैं। चक्री दिग्विजय करने जाये तब उत्तर भरत में आने-जाने के लिए बीच में आये हुए वैताढ्यपर्वत की गुफाओं में सूर्य-चन्द्र के प्रकाश से प्रवेशहीन, घोर अंधकारमय गुफा के मार्ग को सदाकाल प्रकाशमय करने महागुफाओं की पूर्व-पश्चिम दोनों बाजु की दीवारों पर वृत्त एवं गोमुत्राकार में इस काकिणीरत्न की अनी से ४९ मंडलो का आलेखन करने में इस रत्न का उपयोग होता हैं। इस रत्न से आलिखित (उत्किर्ण) मंडल दिव्य प्रभाव से प्रकाशित होने के कारण से चक्रवर्ती के अस्तित्व पर्यन्त अवस्थित प्रकाश देनेवाले बनते हैं जिससे लोगों का गमनागमन का मार्ग सुख रूप बनता हैं। साथ ही स्कन्धावार-छावनी में रहने के कारण, उसके हस्तस्पर्श से १२ योजन तक प्रकाश देकर रात्रि को भी दिन बना देता है। तदुपरांत सब बटरवरों (मापने के धाट) के ऊपर का आलेख भी काकिणी से किया जाता हैं, तब ही वह प्रमाणभूत गिना जाता हैं।

(७) मणिरत्न = यह भी कोशागार रूप लक्ष्मी भंडार में उत्पन्न होनेवाला, निरुपम कान्तियुक्त, विश्व में अद्‌भुत, वैडुर्यमणि के प्रकार में सर्वोत्तम, सर्वप्रिय, मध्य में वृत्त और उन्नत, छः कोणेवाला, दूर तक प्रकाश देनेवाला शोभित होता है। इसका उपयोग जब सैन्य रक्षण के लिए चर्मरत्न और छत्ररत्न का संपुट बनाना हो तब संपुट में उद्योत करने के लिए छत्ररत्न के तुम्ब के साथ बांधा जाता हैं। अथवा तमिस्त्रागुफादि में प्रवेश करते समय हस्ति पर बैठा चक्री, हस्ति के दक्षिण कुंभस्थल में देवदुर्लभ ऐसे मणिरत्न को रखकर प्रकाश को १२ योजन तक फैलाता, अपने आगे और दोनों बाजु की तीनों* दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ गुफा लांघ सकता है और उत्तर भरत की विजय यात्रा में सफलता पाता है। साथ ही वह रत्न मस्तक अथवा हाथ पर बांधा हो तो, सर्वोपद्रवनाशक, सुख-संपत्तिदायक, सुरासुर-मनुष्य-तिर्यंचादिक के तथा सर्व शत्रुओं के उपद्रवों को हरनेवाला होता है। मस्तकादि अंग पर बांधकर संग्राम में प्रवेश करनेवाला पुरुष, शत्रु के शस्त्र से अवध्य और भयमुक्त बनता है। मतांतर-हाथ पर बांधने से सदा तरुणावस्था रहती है और उसके नख-केश की वृद्धि भी नहीं होतीं। पूर्व के प्रकरण में हमने ७ एकेन्द्रिय रत्नों की (जिसके माप नीचे बताए गये है) व्याख्या की, अब आगे के प्रकरण में हम ७ पंचेन्द्रिय रत्नों के बारे में बता रहे हैं।

जानने जैसा... ● चक्ररत्न, छत्ररत्न और दंडरत्न यह वाम (१ हाथ) प्रमाण जानना। ● चर्मरत्न दो (२) हाथ प्रमाण जानना। ● काकिणीरत्न चार (४) अंगुल प्रमाण जानना। ● खड्गरत्न ३२ अंगुल प्रमाण जानना। ●मणिरत्न ४ अंगुल लंबा और २ अंगुल चौड़ा जानना।[१]

★ तीन दिशाओं में इसलिए की पीछे आते सैन्य के लिए तो मंडल प्रकाश सहाय है। (१) संग्रहणीरत्नम्-बृहत्संग्रहणी, गाथा-२६५/२६६

67

पहेले मूर्गी या अण्डा ?

यह सवाल कभी भी बासी नहीं होता। बस ! उसी तरह ब्रह्मांड के केस में भी यह सवाल हंमेशा एवरग्रीन है। "कौस्मिक एग" रूप कहलाता अंडे में से ब्रह्मांड का जन्म हुआ ऐसे खगोल निष्णांत वैज्ञानिक बताते है, तब दुसरी तरफ इस बात का खुलासा उनके पास नहीं है कि बिग बैंग के धडाके से "कौस्मिक एग" का कवच तुटा तो वह अंडा पहले किसमें था ? अथवा कौन सी मूर्गी उस अंडे को कब और किसलिए रख कर गई ?

(८) पुरोहितरत्न

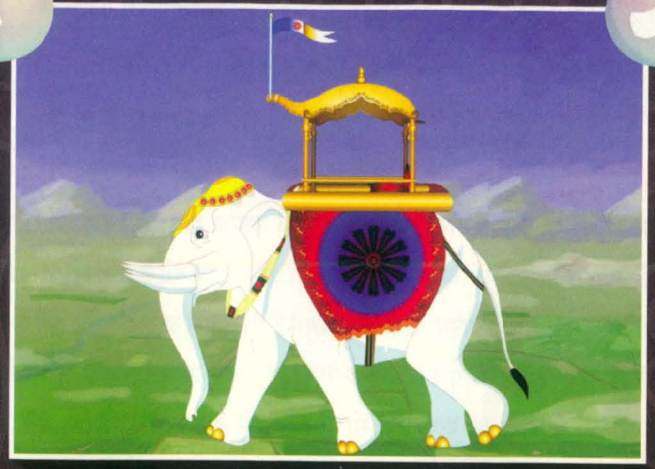

(९) गजरत्न

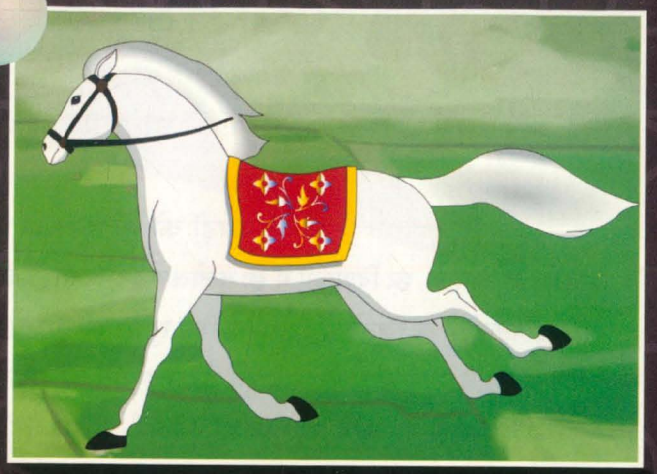

(१०) अश्वरत्न

(११) सेनापतिरत्न

(१२) वार्धकीरत्न

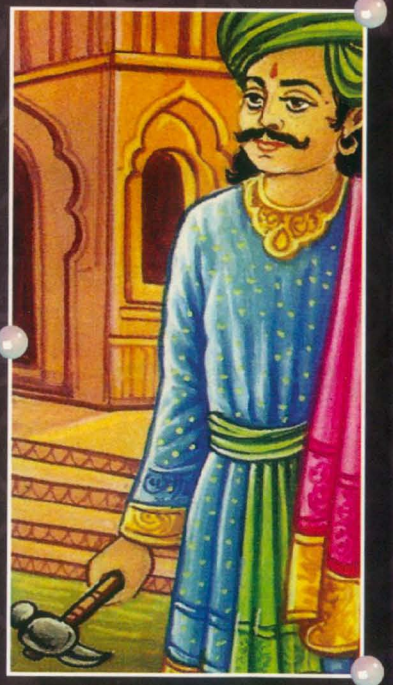

(१३) गृहपतिरत्न

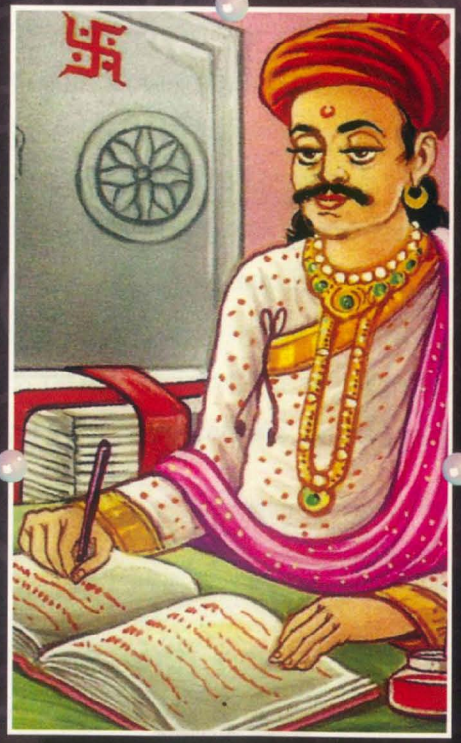

(१४) स्त्रीरत्न

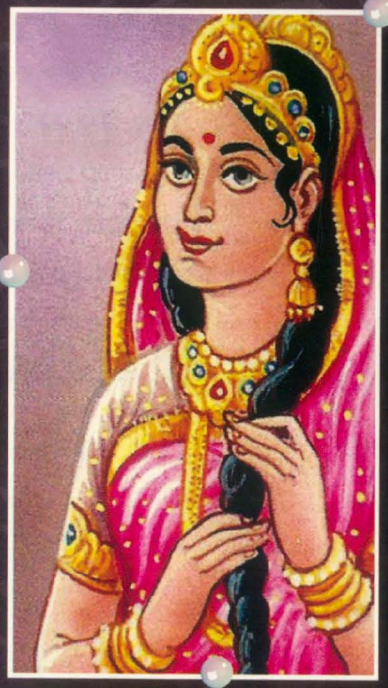

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ४)

(८) पुरोहितरत्न = जरूरत पड़ने पर चक्रवर्ती को शान्तिक-पौष्टिक आदि विविध कर्मानुष्ठान करवाकर सफलता देनेवाले, महापवित्र, गुणोपेत, १४ विद्या में पारंगत, प्रवेश-निर्गम में मंगल कार्य करानेवाले, कवि-कुशल, पुरोहित का भी कार्य करनेवाले... इत्यादि गुण युक्त होता हैं।

(९) गजरत्न = यह गज महान वेगवाला, ७ अंगो से प्रतिष्ठित, ऐरावत हाथी जैसा पवित्र, सुलक्षणवंत, महापराक्रमी, अजेय ऐसे किल्लादिक को भी तोड़ डालनेवाला होता है। चक्रवर्ती इस हस्ति पर बैठकर ही सदा विजययात्रा पाता है। यह रत्न भी देवाधिष्ठित होता हैं।

(१०) अश्वरत्न = चक्रवर्ती का यह घोडा महान् वेगवाला, स्वभाव से ही सुंदर, आवर्तादि लक्षणवाला, सदा यौवनवाला, स्तब्धकर्णवाला, लंबाई में १०८ अंगुल लंबा और ८० अंगुल ऊँचा, कुचेष्टा रहित, अल्पक्रोधी, शास्त्रोक्त सर्व लक्षणवंत, किसी भी जलाशय, अग्नि या पहाड़ों को बिना परिश्रम उल्लंघन करनेवाला, महान् वेगवाला, अजेय होता है।(९-१० यह दोनों तिर्यंचरत्न वैताढ्यपर्वत की तलहटी में उत्पन्न होते हैं और छः खण्डों की विजय यात्रा में पराजित हुआ व्यक्ति उस समय चक्री को भेंट स्वरूप देते हैं।)

(११) सेनापतिरत्न = यह पुरुषरत्न हस्त्यादि सर्वसेना का प्रमुख (अग्रेसर), चक्रवर्ती का युद्धमंत्री, यवनादिक अनेक भाषा-शास्त्र, तथा विचित्र शिक्षा-लिपि-नीति, युद्ध-युक्ति, चक्रव्युहादि विषयों का जानकार, समयज्ञ, विजय करने के क्षेत्र के जमीनादिक मार्ग का ज्ञाता, वफादार, परमस्वामिभक्त, तेजस्वी, प्रजाप्रिय, चारित्रवान्, पवित्रगुणों से सुलक्षणवंत होता हैं। तथा दिग्विजय में चक्रवर्ती के साथ में ही होता है। चक्रवर्ती की आज्ञा होते ही चक्री के सहाय बिना ही चर्मरत्न से गंगा-सिंधु के अपर तट पर जाकर, महाक्लीष्ट मलेच्छ राजाओं के साथ, भीषण-खुंखार-भयंकर युद्ध करके सर्वत्र विजय पाकर चक्रवर्ती का शासन स्थापित करता हैं।

(१२) वार्धकीरत्न = अर्थात् महान् स्थपति, शिल्पकार, समग्र सुथारों में श्रेष्ठ, चक्री के महलों, प्रासादों, गृहों तथा सैन्य के लिए निवासस्थानों, गाँव, नगरों को तैयार कर देनेवाले तथा पौषधशाला* को एक ही मुहूर्त में वास्तुशास्त्र के नियमानुसार यथार्थ रूप में व्यवस्थित बनानेवाला होता हैं। बांधकाम विभाग का अधिष्ठाता यह पुरुष होता है। साथ ही जब चक्रवर्ती तमिस्र-खंड प्रपाता गुफा में जब जाता है तब समग्र सैन्य को सुखरूप उतरने के लिए उन्मग्ना तथा निमग्ना नाम की महानदियों के ऊपर महान् सेतु-पुलों को भी ये वार्धकी रत्न (पुरुषरत्न) ही बांधता हैं।

(१३) गृह(गाथा) पतिरत्न = अन्नादिक के कोष्ठागार का अधिपति, चक्रवर्ती के महल-गृह के चैत्य तथा सैन्य के भोजन, वस्त्र, फल-फूल-जलादिक आवश्यक तमाम वस्तुओं की चिंता करनेवाला-पूरा करनेवाला, सुलक्षण, रूपवंत, दानशूर, स्वामिभक्त, पवित्रतादि गुणवाला होता है। साथ ही दिग्विजय प्रसंग पर जरूरत होने पर अनेक प्रकार के धान्य तथा शाक को चर्मरत्न पर सुबह बोकर शाम को उगानेवाला होता हैं (चर्मरत्न इस धान्योत्पत्ति के योग्य क्षेत्र तुल्य काम देनेवाला और गृहपतिरत्न का कृषिकार (किसान) की तरह समझना) जिससे सैन्य का सुखपूर्वक निर्वाह होता है।

(१४) स्त्रीरत्न = वह (यह) महान् विद्याधरों तथा अन्य नृपतियों के उत्तम गृह में उत्पन्न होती है। उसमें छः खण्डों की नारियों के एकत्रित

(क्रमशः)

★ पोषं धत्ते इति पौषध : जो धर्म की पृष्टि करे वैसी क्रिया। पौषध ४ प्रकार का होता है (१) तप (उपवासादिक) करना (२) शरीर सत्कार त्याग (३) ब्रह्मचर्यपालन और (४) पापमय आचरण का त्याग, संक्षिप्त में जिसमें साधु जीवन का स्वाद हो...। जैनियों पर्व के दिनों में धर्मगुरु के पास जाकर इसकी (पोषध की) आराधना करते हैं।

हम सबको यह बताया गया है कि सन् १९६९ में अमेरिका के दो अंतरिक्षयात्री चन्द्रमा पर उतरे थे। इस घटना का वर्णन विज्ञान की एक बड़ी उपलब्धि के रूप में किया गया। अपोलो यान की दो मुख्य युनिट बनानेवाली कंपनी राकेटडाईन के वैज्ञानिक बिल केसिंग ने "We never went to the moon" नामक एक पुस्तक लिखी और उसके द्वारा अमेरीका की नासा (NASA) संस्था के उस दावे का कि उन्होने चन्द्रमा पर इन्सान को उतारा था, का खण्डन किया हैं। बिल केसिंग की इस पुस्तक के कारण अमेरीका में हडकम्प मच गया।

1 चक्ररत्न
2 छत्ररत्न
3 दण्डरत्न
4 खड्गरत्न
5 मणिरत्न
6 काकिणीरत्न
7 चर्मरत्न
8 गाथापतिरत्न
9 गजरत्न
10 अश्वरत्न
11 सेनापतिरत्न
12 वर्धकिरत्न
13 पुरोहितरत्न
14 स्त्रीरत्न

चक्रवर्ती के १४ रत्न... (७ पंचेन्द्रिय रत्न).....(पार्ट - ५)

तेजपूंज जितना तेज, दिव्य रूपादिक होता है । सामुद्रिकशास्त्र में कहे संपूर्ण स्त्री लक्षण युक्त, मानोन्मान-प्रमाण युक्त, महादेदिप्यमान और सर्वांग-सुंदर होती है। सदा अवस्थित यौवनवाली, रोम-नख न बढ़े ऐसी, भोक्ता के बल की वृद्धि करनेवाली, साक्षात् देवांगना जैसी, स्पर्श करने पर सर्व रोगों को हरनेवाली, कामसुख के धाम समी होती हैं। इस स्त्रीरत्न को चक्रवर्ती मूल शरीर से भोगे तो भी कदापि गर्भोत्पत्ति नहीं होती। गर्भाशय की गरमी के कारण इस स्त्रीरत्न को गर्भ ही नहीं रह सकता। गरमी के उदाहरण में - कुरुमती नाम की स्त्रीरत्न का स्पर्श होते ही लोहे का पुतला भी द्रवीभूत हो गया था यह उदाहरण अति प्रसिद्ध है।

।। इति पंचेन्द्रिय रत्नानि...।।

इस तरह ८-११-१२-१३-१४ की संख्यावाले सेनापति वगैरह पांच मनुष्यरत्न अपने-अपने नगर में उत्पन्न होते हैं और वे स्वकालिन उचित देह प्रमाणवाले होते हैं। इस तरह ये सजीव १४ रत्न (७ एकेन्द्रिय + ७ पंचेन्द्रिय रत्न) सदा शाश्वत (महाविदेह क्षेत्र की अपेक्षा से), हर एक चक्रवर्ती को प्राप्त होनेवाले, प्रत्येक रत्न १,०००-१,००० यक्षों (देवों) से अधिष्ठित होते हैं। अत: उसके कार्य की सहाय में उतने सहायक होते हैं। इसलिए ये रत्न सर्वत्र विजय दिलानेवाले, सर्वत्र महासुख देते हैं परंतु पापयोग से जब ये रत्न चक्रवर्ती से दूर खिसक जाए तो देव प्रभा रहित ऐसे ये रत्न (सुभुम को जिस तरह देव से पकड़ा हुआ चर्मरत्न छोड़ देने से नाश हुआ था वैसे) हानिकारक भी बनता है। चक्रवर्ती इन रत्नों को बहुमान पूर्वक संभालते हैं - रक्षा करते हैं - सेवन करते हैं और काम पड़ने पर यथेष्ठ उपयोग में लेते है।

जघन्य से जंबूद्वीप में एक साथ ४ चक्रवर्ती हो सकते हैं तो इस दृष्टि से उस समय ४ X १४ = ५६ रत्न होते है और उत्कृष्ट से महाविदेह के २८ विजयों में २८ तथा भरत-ऐरावत के १-१ चक्री गिनते कुल मिलाकर ३० होते हैं तो ३० X १४ = ४२० रत्न हो सकते हैं।

★ बौद्ध ग्रंथ-"मज्झिम निकाय-III २९/२/१४, पृ. २४२-२४६ (नालंदा संस्करण)" में चक्रवर्ती के ७ रत्नों का उल्लेख हैं। जो इस प्रकार से जाने (१) चक्ररत्न (२) हस्तिरत्न (३) अश्वरत्न (४) मणिरत्न (५) स्त्रीरत्न (६) गृहपतिरत्न एवं (७) परिनायकरत्न।

० वैदिक साहित्य में भी चक्रवर्ती सम्राट के १४ रत्न बताए हैं... वे इस प्रकार हैं... (१) हाथी (२) घोडा (३) रथ (४) स्त्री (५) बाण (६) भण्डार (७) माला (८) वस्त्र (९) वृक्ष (१०) शक्ति (११) पाश (१२) मणि (१३) छत्र और (१४) विमान।

चक्रवर्ती की ऋद्धि

१४ रत्न (७ एकेन्द्रिय - ७ पंचेन्द्रिय), ९ निधि, ९९,००,००० मानव अंगरक्षक, १६००० आत्मरक्षक (बोडीगार्ड) देव, १,९२,००० राणियाँ (स्त्री परिवार), ३६३ सूपकार (रसोईये), १८ श्रेणि-प्रश्रेणि, ८४,००,००० हाथी, ८४,००,००० घोडे, ८४,००,००० रथ, ९६,००,००,००० सैन्य, ९६,००,००,००० गाँव, ३२,००० देश, ७२,००० बड़े नगर, ९९,००० द्रोणमुख, ४८,००० किल्लो से युक्त शहर, २४,००० कर्बट, २४,००० मडंब, २०,००० खान, १६,००० खेड (खेडा), १४,००० संबाध, ५६ - अंतर्द्वीप (बेट), ४९ कुराज्य.....वगेरे

(त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र-तृतीयपर्व-७१३ से ७२८)

69

मि. वीरचंद राघवजी गांधी (बी.ए.) के पास एक अमेरिकन विद्वान का बनाया हुआ - **"Earth not a Globe"** "अर्थ नोट ए ग्लोब" नाम की पुस्तक हमने देखी, जिसमें पृथ्वी गोल नहीं, किन्तु चपटी है और पृथ्वी फिरती नहीं है, सूर्य फिरता है। ऐसा सिद्ध किया है तथा आकाश में ऐसे तारें है, उनको देख हम ऐसा अनुमान कर सकते है कि पृथ्वी स्थिर है और सूर्य चलता है।

- प.पू.आत्माराजजी महाराज
"तत्त्वनिर्णय प्रासाद स्तंभ" ग्रंथ

चक्रवर्ती की नवनिधि में से एक निधि की पेटी.....

चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट -१)

चक्रवर्ती को जिस प्रकार चौदह रत्न होते हैं उसी प्रकार नवनिधान भी प्राप्त होते हैं[१]। जिस अवसर पर चक्रवर्ती भरत क्षेत्र का विजय पाते पाते गंगा नदी के मुख के पास अर्थात् समुद्र में जहाँ गंगा का संगम होता हैं, उस स्थान पर आता है तब उस वक्त चक्रवर्ती के प्रबल पुण्य से आकर्षित देवाधिष्ठित देव संचालित नवों निधान पाताल-मार्ग से होकर चक्रवर्ती की राजधानी में आते हैं।

ये नव-निधान बड़ी मंजूषा-पेटी के रूप में होते हैं। वह हरेक मंजूषा आठ (८) योजन ऊंची, नव (नौ) (९) योजन चौड़ी, तथा बारह (१२) योजन लंबी होती है। प्रत्येक मंजूषा के नीचे रथ के पहिये की तरह आठ-आठ (८-८) चक्र (पहिये) होते हैं और उनके मुख वैडुर्यमणि से आच्छादित होते हैं। तथा वे सुवर्णमय, रत्नों से भरपूर और चक्र, चंद्र तथा सूर्य के लांछन से युक्त होते हैं।[२]

चक्रवर्ती जब छः खण्डों को साध्य करके गंगा के पास विजय पाकर आता है तब गंगा के पास रहे इन निधानों को चक्रवर्ती अट्ठम तप के द्वारा साधता है। उन निधियों के देव शरण में आने के बाद, चक्रवर्ती की सेवा में सदा हाजिर रहने के वचन देते हैं।[३] फिर चक्रवर्ती जब उनका सत्कार करके अपनी राजधानी की और मुडता है तब वे निधियाँ पातालमार्ग से परंतु चक्रवर्ती के पीछे पीछे आती हैं और राजधानी के समीप में आने के बाद वे निधियाँ राजधानी के बाहर ही रहती हैं, क्योंकि प्रत्येक निधि चक्रवर्ती के राजधानी समान बड़ी होने से बाहर ही रहती है। इसी तरह चक्रवर्ती की गज-अश्व-रथ-पदाती आदि सेना भी नगर के बाहर ही रहती है। यह नवनिधान के जो जो नैसर्पादि नाम है उस उस नामवाले मुख्य नागकुमार निकाय के देव उस उस निधान के अधिष्ठायक देव है। जो पल्योपम के आयुष्यवाले होते हैं।[४]

यहाँ कितने ही शास्त्रकार महर्षिओं का कथन है कि - इन नवनिधानों में उस उस वस्तु की प्राप्ति को बतानेवाले शाश्वत-दिव्य ऐसे ''कल्पग्रंथ'' हैं, जिनमें संपूर्ण विश्व की समस्त विधियाँ लिखी होती हैं। जबकि कितने शास्त्रकार भगवंतो का ऐसा कथन है कि ''उन कल्पग्रंथों में बताए सर्व पदार्थ ही दिव्य प्रभाव से उस प्रत्येक निधान में से (अथवा निधिनायक द्वारा) साक्षात् प्राप्त होते हैं।★''

अब चलो मित्रो ! हम आपको इन नवनिधियों में से किस निधि में क्या क्या वस्तुएँ (अथवा जो विधियाँ बताई हों) होती हैं, इसका संक्षिप्त में नाम के साथ वर्णन अब हम आगे के प्रकरण में बताएगे... पढ़िए आगे का प्रकरण...

''चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि'' (पार्ट-२)

★ चक्रवर्ती की ऋद्धि-समृद्धि की बाते सामान्य मानवी को अकल्पनीय और आश्चर्य में डालती हैं, जल्दी बुद्धि में नही बैठती। लेकिन शास्त्रकारों को असत्य लिखने का कोई कारण नही हैं। बहुत बार शास्त्रों की बातें नापने के लिए हमारी बुद्धि का मीटर (गज) छोटा पड़ता हैं।

(१) (A) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र-१/४ (B) स्थानांग सूत्र-९/१९ (C) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष. ३, (D) हरिवंशपुराण-सर्ग-११ (E) माघनंदि विरचित-शास्त्रसार समुच्चय-सूत्र-१८, पृष्ठ-५४, (२) (A) ठाणांग सूत्र, अध्य.-८, सूत्र-६०२ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-३१, सूत्र-५३८/३९ (३) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र, सर्ग-४, श्लोक-५८३ (४) त्रिषष्टिशलाकापुरुष चरित्र-१/४/५७४-५८७

TRU

प्रख्यात कथाकार श्री एच.जी. वेल्सने अपनी पुस्तक "दि वार ऑफ दि वर्ल्डस्" में यह बताया है कि - "पृथ्वी से परे दुसरे ग्रहों-उपग्रहों पर जीवन है। वहाँ विकसित सभ्यता विद्यमान है।" विज्ञान की अन्तरिक्ष जगत् की विस्मयकारी खोजों ने आधुनिक तर्कवादी मनुष्य को यह मानने के लिए विवश कर दिया है कि -

सृष्टि अति विशाल एवं विराट है तथा सुदुर ब्रह्मांड में जीवन जीनेवाले अनेकानेक ग्रह-उपग्रह है जिनमें विकसित सभ्यताएँ है।

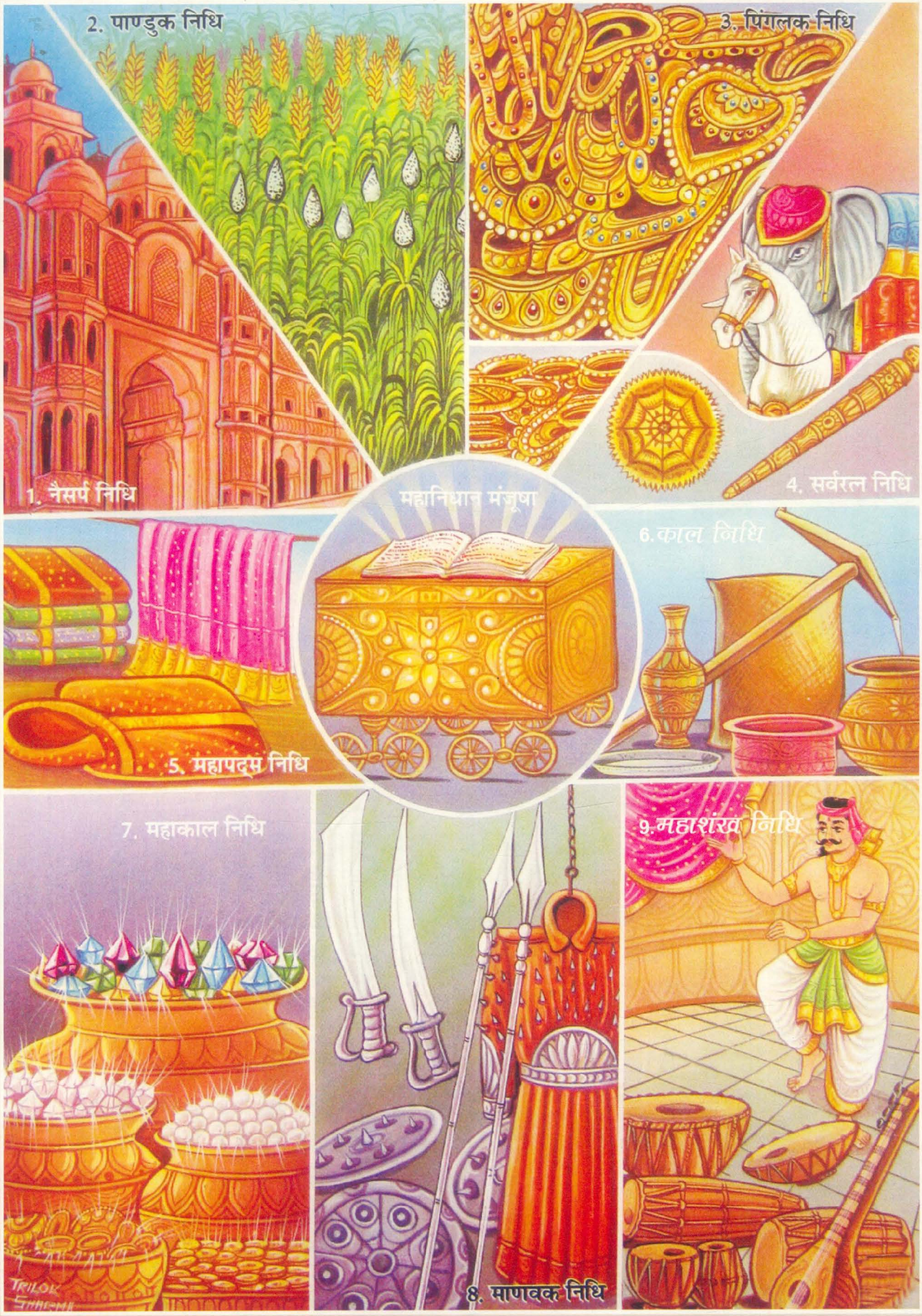
2. पाण्डुक निधि
3. पिंगलक निधि
1. नैसर्प निधि
4. सर्वरत्न निधि
महानिधान मंजूषा
6. काल निधि
5. महापद्म निधि
7. महाकाल निधि
9. महाशंख निधि
8. माणवक निधि

चक्रवर्ती के नवनिधान = नवनिधि..... (पार्ट - २)

(१) **नैसर्पनिधि**[१] = इस निधि के कल्पों में खाण-ग्राम-नगर-पत्तन-निवेशन-छावनी-मडंबक-द्रोणमुख-हाट (दुकान)-गृह (घर) आदि स्थापना का समग्र विधिविषय जो अब वर्तमान में प्राय: वास्तुशास्त्र में भी देखने को मिलता हैं। उस विषयक विषयों (पुस्तक वा साक्षात् वस्तु) इस प्रथम निधि से प्राप्त होता हैं अथवा उन उन स्थानों का निर्माण होता हैं।

(२) **पांडुकनिधि** = इस निधि के कल्पों में सुवर्णमुद्राएँ आदि की गिनती, धन-धान्य आदि का प्रमाण उसे उत्पन्न करने की पद्धति, रुई, गुड, चीनी आदि सर्व का मान, उन्मान करने की सर्व व्यवस्था होती हैं। धन-धान्य की उत्पत्ति, बीजोत्पत्ति तथा हरेक प्रकार का गणित भी इस निधि से ही प्राप्त होता हैं।

(३) **पिंगलनिधि** = इस निधि के कल्पो में पुरुषों तथा स्त्रियों के, हाथी तथा घोडे आदि के गहनें-आभूषण इत्यादि आभरण बनाने की विधि विषयक संपूर्ण व्यवस्था इस तृतीय निधान के आधिन हैं।

(४) **सर्वरत्ननिधि** = चक्रवर्ती के ७ एकेन्द्रिय रत्न तथा ७ पंचेन्द्रिय रत्न ये सर्व इस निधि के प्रभाव से उत्पन्न होते है। इस निधान के प्रभाव से १४ रत्न बहुत कान्तिमय होते हैं, एसी लोक मान्यता शास्त्रों में बताई गई हैं।

(५) **महापद्मनिधि** = सर्व प्रकार के वस्त्रादि की उत्पत्ति, रंगने की - धोने की संपूर्ण व्यवस्था का ज्ञान इस निधि के द्वारा होता हैं।

(६) **कालनिधि** = अतीत, अनागत और वर्तमान विषयक सकल ज्योतिष शास्त्र विषयक काल ज्ञान, कृषि-खनिजादि कर्म तथा कुंभकार, लोहार, चित्रकार, बुनकर, नापित इत्यादि मूल भेद २० और उत्तर भेद वाले १०० प्रकार के शिल्प, साथ ही जगत के तीर्थंकर - चक्री - बलदेव - वासुदेव के वंशो का शुभाशुभपन इस काल संज्ञक निधि द्वारा होता हैं।

(७) **महाकालनिधि** = लोहा और सोना-चांदी आदि धातुएँ और उनकी खाने तथा मणि-मोती-प्रवाल-हीरे-माणेक-चन्द्रकान्तमणि आदि रत्न ये सर्व वस्तुएँ इस निधि द्वारा प्राप्त होती है। अथवा उनकी उत्पत्ति इस निधि में कहीं गई हैं।

(८) **माणवकनिधि** = योद्धा, उनके पहनने के बख्तर, हाथ में धारण करने के शस्त्र, युद्ध की कला, व्युहरचना, ७ प्रकार की दंडनीति आदि सर्व विधि इस निधान द्वारा जान सकते हैं।

(९) **महाशंखनिधि** = नाटक, विविध काव्य, छंद, गद्य-पद्यात्मक चंपू, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश और संकीर्ण इस तरह चारों प्रकार के काव्य-भाषाए इस निधि से जान सकते हैं।

इस तरह चक्रवर्ती को अपने परम पुण्योदय से मनुष्य जाति तथा मानवस्वभाव को उपयोगी तमाम साधन सामग्री इन निधियो द्वारा प्राप्त होती हैं।[२]

हैमकोष ग्रंथ में तथा हिन्दु शास्त्रों में भी लौकिक (लोक प्रचलित) नवनिधि इस प्रकार दर्शाई गई है। (१) महापद्म (२) पद्म (३) शंख (४) मकर (५) कच्छप (६) मुकुन्द (७) कुन्द (८) नील और (९) चर्च।

हरिवंशपुराण के अनुसार ये ९ निधियाँ कामवृष्टि नामक गृहपतिरत्न के आधीन होती है, और चक्रवर्ती के सभी मनोरथों को पूर्ण करती हैं। (हरिवंशपुराण-जिनसेन, ११/१२३)

(१) (A) प्रवचन सारोद्धार-१२१८, (B) तित्थोगाली पयन्ना-३०३/३१, (C) गाथासहस्री-७४६ (D) बृहत्संग्रहणी-२६८ (E) विचारसार-५५२ (F) रत्नसंचय-६५ (२) काललोकप्रकाश, सर्ग-३१ गाथा-५४०

"By his teachings Lord Mahavira sent a wave of peace and love throughout the country at a time when violence was reigning supreme in India. Likewise the world can get rid of war and bloodshed today by following Ahimsa."

- Dr. P. C. Ray

"The world to day is in search of a new way of life based upon non-violence, love and equality - it is tired of violence. The suffering humains must, therefore learn the message of Ahimsa and brother hood preached by Mahavira."

- Dr. Syed Hussain

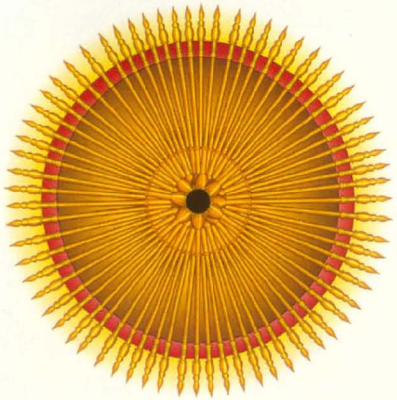

(१) सुदर्शन चक्ररत्न

(२) नंदक खड्गरत्न

(३) मणिरत्न

(४) शार्ंग धनुष्यरत्न

(५) गदारत्न

(६) वणमालारत्न

(७) शंखरत्न

वासुदेव के ७ रत्न.....

वासुदेव का जन्म भी उत्तम महर्द्धिक कुल में होता हैं। वासुदेव निश्चय से वैमानिक देवलोक से (मतांतर से मनुष्यगति से भी) आकर माता की कुक्षी में उत्पन्न होते हैं। उस समय माता चौदह महास्वप्नों में से सात महास्वप्न देखती हैं। ये वासुदेव गत तीसरें भव में कोई संयमी महातपस्वी मुनि होते हैं। दूसरों का ऋद्धिबल देखकर अथवा अहंकारादिक के कारण खुद उसी समय अहंकार से नियाणा (निश्चय) करते हैं कि "यदि मेरे संयम तपादिक का प्रभाव हो तो इस संयम के फलरूप आनेवाले भव में महाबलवान (वासुदेव) बनूं" इस तरह का नियाणा करने के तपोबल से निश्चित ही वैमानिक में उत्पन्न होकर आयु का क्षय होने पर अनन्तर भव में अवश्य वासुदेव होते हैं। वासुदेव होने के बाद अति आसक्तिपूर्वक उत्तमोत्तम भोग भोगते हुए मरकर निश्चय रूप से नरक में जाते हैं। इससे संयम-चारित्र के लाभ को वे प्राप्त नहीं करते। ये कर्मपुरुष वासुदेव श्याम कान्तिवाले, पीतवर्ण के रेशमी वस्त्रों के पहननेवाले, कौस्तुभमणियुक्त वक्षःस्थलवाले, गरुड चिह्न युक्त ध्वजावाले होते हैं। ये वासुदेव भरत क्षेत्र के छः खण्ड में से दक्षिणार्ध भरत के तीन खण्डों के स्वामी, अनेक सुलक्षणों से युक्त और चक्री से आधी आधी ऋद्धि-सिद्धिवाले होने से बत्तीस हजार, मतांतर से सोलह हजार, देवांगनाओं जैसी तेजस्वी स्त्रियों के साथ भोग भोगते हुए विहरते हैं। ये वासुदेव चक्रवर्ती के विरहकाल में ही होते हैं।

अब युद्ध में शूरवीर ऐसे वासुदेवों को कितने रत्न होते है ? इसके बारे में हम यहाँ आपको बतायेंगे (१) सुदर्शन चक्ररत्न (२) नंदक नाम का खड्गरत्न तथा (३) मणिरत्न इन तीन रत्नों का वर्णन हमने पूर्व के प्रकरणों में "चक्रवर्ती के १४ रत्न (७ एकेन्द्रिय रत्न)" में जान लिया है अब आगे के जो ४ रत्न का वर्णन बाकी है... वह इस प्रकार से जाने...

(४) शार्ंग धनुष्यरत्न = यह धनुष्यरत्न शार्ंग के नाम से जाना जाता एक प्रकार का शस्त्र हैं। दूसरे किसी से उठाया न जा सके वैसा यह धनुष्य बड़ा भारी, अद्‌भुत शक्तिवाला, जिसके टंकार मात्र से शत्रु सैन्य त्रस्त होकर पलायमान हो जाए ऐसा होता हैं।

(५) गदारत्न = यह गदारत्न चक्रवर्ती के दंडरत्न जैसी महाप्रभावशाली, दूसरे किसी से भी न उठाई जा सके ऐसी, अभिमानी शत्रुओं की भुजा के मद को तोड़ डालनेवाली और बलिष्ठ होती हैं।

(६) वणमालारत्न = इस नाम की माला वासुदेव की छाती पर निरंतर लटकती होती ही हैं। वह माला कभी भी कुम्हलाती (करमाती) नहीं है। वह सर्व ऋतु के पुष्पों से सुंदर तथा अत्यंत सुगंधित होती है, तथा यह माला देवाधिष्ठित होती है।

(७) शंखरत्न = पांचजन्य शंखरत्न को वासुदेव के सिवा (तीर्थंकर वर्ज्य) दूसरा कोई भी बजा नहीं सकता। उसकी आवाज होते ही शत्रु सेना भयभीत होकर भाग जाती है। इस शंख की आवाज १२ योजन तक सुनी जाती है। इस तरह सदा देवाधिष्ठित यह ७ रत्न वासुदेव के होते है[१] और बलदेव के (१) धनुष्यरत्न (२) हलरत्न (३) मूशलरत्न रूप तीन रत्न होते हैं।

(१) (A) बृहत्संग्रहणी सूत्र, गाथा-२७० (B) विचारसार-५७६

72

The Diameter of the earth

There is a big dispute about the diameter of the earth among the scientists who believe the earth is round. Mr. Hind, the British astronomer talks about two such scientists whose estimate the diameter of the earth which differs by 55 yards. George Herschel an astronomer in his book, estimates the diameter of the earth 480 miles less. How can we rely upon such scientists?

कोटिशिला

कोटिशिला संबंधी विशेष जानकारी.....

आज के जमाने में विश्व में ऐसे बलवान इंसान मिलते है कि जिसमें कोई पूरा प्लेन खींच लेता है, तो कोइ रेलगाडी का डीब्बा खींच लेता है। लेकिन अनंतलब्धिवाले तीर्थंकरों द्वारा देखे गए इस विश्व में इससे ज्यादा भी लाखों-करोड़ों गुणा बलशाली व्यक्ति है। हम जिस क्षेत्र में रहते है वह है भरत क्षेत्र।(भारत नहि, भारत से कई लाखो गुणा यह भरत क्षेत्र बड़ा हैं।)

इस भरत क्षेत्र में एक शिला है, जिसका नाम है कोटिशिला। यह कोटिशिला १ योजन लंबी (१ योजन लगभग ४ गाऊ लगभग १२ कि.मी.) १ योजन चौड़ी और १ योजन ऊँची हैं।(अब आप ही स्वयं विचार ले ! की इस शिला का वजन कितना होगा, प्राय: इसकी कल्पना भी नही की जा सकती.....)

इस केटिशिला को वासुदेव उठाते हैं। (भरत क्षेत्र के ६ खंड होते हैं उसमें से तीन खंड के मालिक वासुदेव होते हैं।) इस कोटिशिला को प्रथम वासुदेव सिर से एक हाथ ज्यादा ऊँचे तक उठाते हैं। दुसरे वासुदेव सिर तक उठाते हैं। तीसरें वासुदेव कंठ तक, चौथे वासुदेव वक्ष:स्थल (छाती) तक, पांचवें वासुदेव जठर तक, छट्ठें वासुदेव कटिभाग तक, सातवें वासुदेव साथल तक, आठवें वासुदेव जांघ से थोड़ा नीचे (घुंटन) तक उठाते हैं।

यह कोटिशिला मेघ (बादल) के जैसे अतिशय श्याम और स्निग्धवर्णवाली तथा शाश्वती एवं हजारो लाखों देवों से अधिष्ठित दक्षिणार्ध भरत के सिंधु देश के दशार्ण पर्वत के बाजु में आई हुई हैं।

इस कोटिशिला का दुसरा नाम "सिद्धशिला" भी है, कारण कि इस कोटिशिला के उपर से सोलहवे तीर्थंकर श्री शांतिनाथ प्रभु के चक्रायुद्ध नाम के गणधर अनेकानेक मुनिवरों के साथ सिद्धपद को प्राप्त हुए है और तो और उनकी ३२ पाट परंपरा तक संख्याता क्रोड़ों मुनियों को भी यहीं से मुक्ति प्राप्त हुई थी।

उसके बाद श्री कुंथुनाथ भगवान के मुख्य गणधर और उनकी २८ पाट परंपरा सहित संख्याता क्रोड़ों मुनिवरों को मुक्ति प्राप्त हुई थी।

तत्पश्चात् श्री अरनाथ भगवान के मुख्य गणधर एवं उनकी २४ पाट परंपरा तक १२ क्रोड़ मुनि भगवंतों को इसी भूमि पर से सिद्धि प्राप्त हुई थी।

उसके बाद श्री मल्लिनाथ भगवान के मुख्य गणधर और उनकी २० पाट परंपरा तक ६ क्रोड़ मुनिवरों की मुक्ति भी यहाँ से हुई थी।

तत्पश्चात् श्री मुनिसुव्रतस्वामी के तीर्थ में ३ क्रोड़ मुनिवरों एवं श्री नेमिनाथ भगवंत के शासनकाल (तीर्थ) में १ क्रोड़ मुनि भगवंतों का सिद्धिगमन भी इसी पवित्र भूमि से हुआ था। इसलिए इस कोटिशिला का दुसरा नाम "सिद्धशिला" भी कहा जाता हैं।[१]

(१) काललोकप्रकाश, सर्ग-३१

"प्रीमीटी वल्कलचर" ग्रंथ में टाइलर कहते है कि.... अटलांटिक महासागर की जगह पूर्वकाल में बहुत विशाल खंड स्वरूप पृथ्वी थी। और सहारा का रण एवं कच्छ का रण एक समय बहुत बड़ा महासागर था। (अर्थात् जल स्थल में और स्थल जल में परिवर्तित होता है।)

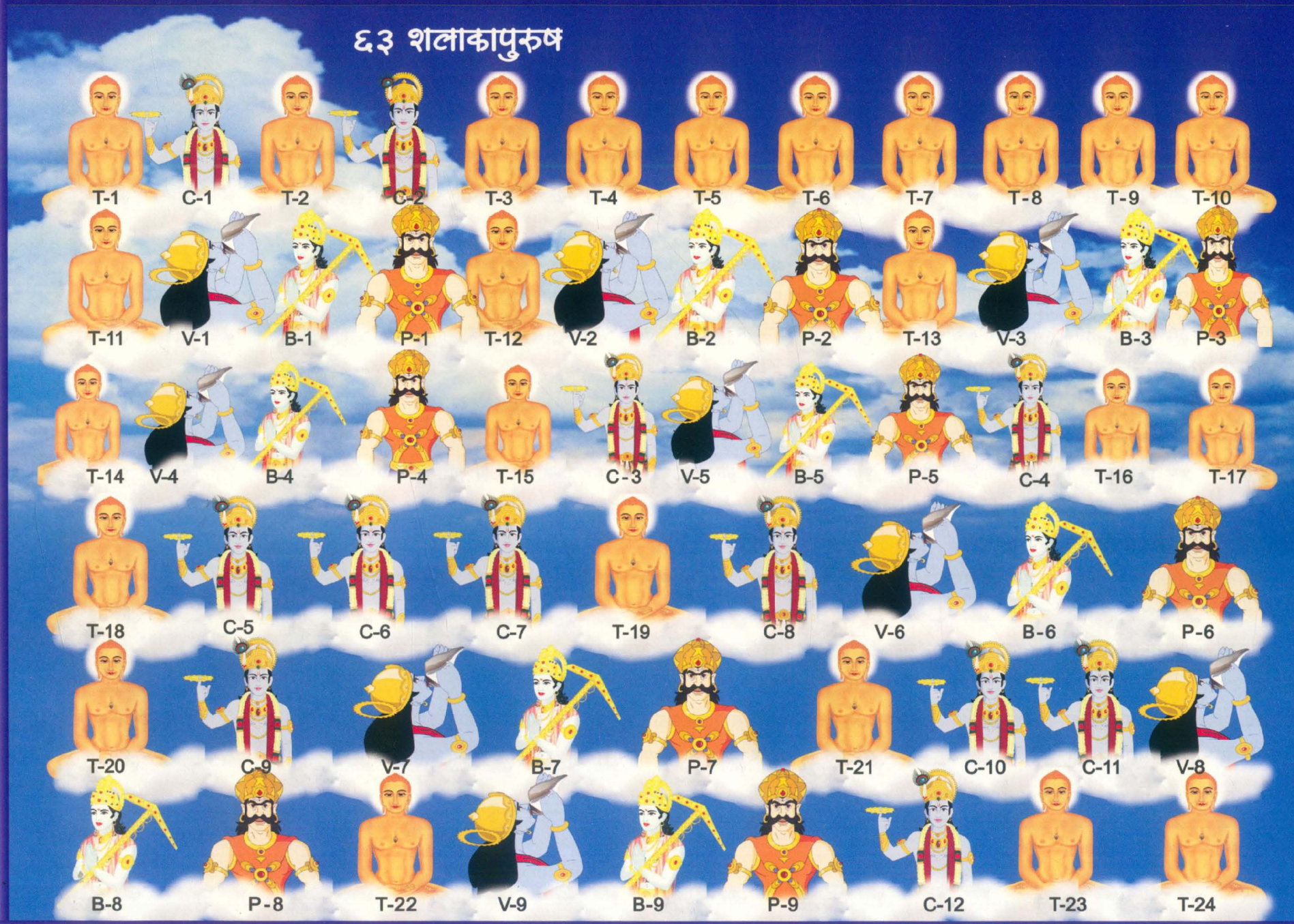

T - तीर्थंकर, C - चक्रवर्ती, V - वासुदेव, B - बलदेव, P - प्रतिवासुदेव

६३ शलाकापुरुष और अन्य महापुरुषो का क्रमादि....

इस अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकरों, १२ चक्रवर्ती, ९ वासुदेव, ९ प्रतिवासुदेव और ९ बलदेवादि मिलकर ६३ शलाकापुरुष नीचे बताए गये क्रम से हुए हैं...

सर्व प्रथम "आदिनाथ" तीर्थंकर, उसके बाद प्रथम "भरत" चक्रवर्ती, उसके बाद "अजितनाथ" तीर्थंकर, उसके बाद "सगर" चक्रवर्ती, उसके बाद ३ से ११ तक के "संभवनाथ-अभिनंदनस्वामी-सुमतिनाथ-पद्मप्रभ-सुपार्श्वनाथ-चंद्रप्रभ-सुविधिनाथ-शीतलनाथ" और "श्रेयांसनाथ" तीर्थंकर हुए। उसके बाद प्रथम "त्रिपृष्ठ" वासुदेव* हुए। उसी समकालीन "अचल" नाम के बलदेव तथा "अश्वग्रीव" नाम के प्रतिवासुदेव हुए। उसके बाद बारहवें श्री "वासुपूज्यस्वामी" तीर्थंकर, उसके बाद दूसरे वासुदेव "द्विपृष्ठ" और साथ में ही "विजय" बलदेव और "तारक" नाम के प्रतिवासुदेव हुए। उसके बाद तेरहवें "विमलनाथ" तीर्थंकर, बाद में "स्वयंभू" नाम के तीसरे वासुदेव और "भद्र" नाम के बलदेव तथा "मेरक" नाम के प्रतिवासुदेव हुए। उसके बाद चौदहवें "अनंतनाथ" तीर्थंकर के बाद, चौथे "पुरुषोत्तम" वासुदेव और "सुप्रभ" बलदेव और "मधुकैटभ" नाम के प्रतिवासुदेव हुए। बाद में पंद्रहवें "धर्मनाथ" तीर्थंकर के बाद, तीसरे "मघवा" चक्रवर्ती उसके बाद पांचवें "पुरुषसिंह" वासुदेव और "सुदर्शन" बलदेव तथा "निशुंभ" प्रतिवासुदेव हुए। बाद में चौथे "सनत्कुमार" चक्रवर्ती और बाद में सोलवें-सत्तरवें तथा अठारवें "शांतिनाथ-कुंथुनाथ" और "अरनाथ" तीर्थंकर रूप में हुए साथ ही ५-६-७ चक्रवर्ती के रूप में भी हुए। उसके बाद १९वें "मल्लिनाथ" तीर्थंकर हुए। बाद में आठमें "सुभुम" चक्रवर्ती हुए। बाद में "पुरुषपुंडरीक" नाम के ६ट्ठे वासुदेव साथ में ही "आनंद" बलदेव और "बलि" प्रतिवासुदेव हुए। बाद में २०वें "मुनिसुव्रत" तीर्थंकर के बाद में नवमें चक्रवर्ती "महापद्म" नाम के हुए। बाद में सातवें "दत्त" नामके वासुदेव और "नंदन" नाम के बलदेव तथा "प्रहलाद" प्रतिवासुदेव हुए। उसके बाद २१ में "नमिनाथ" तीर्थंकर हुए, बाद में १०वे "हरिषेण" नाम के चक्रवर्ती हुए, बाद में ११ वें "जय" नामक चक्रवर्ती हुए, बाद में आठमें "लक्ष्मण" वासुदेव "रामचंद्रजी" बलदेव और "रावण" प्रतिवासुदेव रूप में हुए। बाद में २२वें "नेमिनाथ" तीर्थंकर हुए, बाद में अंतिम नवमें "कृष्ण" वासुदेव, "बलभद्र" बलदेव तथा "जरासंघ" प्रतिवासुदेव हुए। बाद में अंतिम बारहवें चक्रवर्ती "ब्रह्मदत्त" हुए, उसके बाद २३में तीर्थंकर "पार्श्वनाथ" और उसके बाद २४ वे तीर्थंकर "महावीरस्वामी" हुए[1]। इस तरह ६३ शलाकापुरुष क्रम जानना।[2]

यह उपरोक्त ६३ शलाकापुरुषों के साथ जब ९ नारद मिलाने में आते हैं तब ७२ होते हैं, तथा ११ रुद्र सहित ८३ होते हैं• इस प्रकार उत्तम महापुरुषों में ४-५-६-७ प्रकार होते हैं। वो तीर्थंकर-चक्रवर्ती-बलदेव-वासुदेव सहित ४ प्रकार से, प्रतिवासुदेव सहित ५ प्रकार से, नारद से युक्त ६ प्रकार से, तथा रुद्र से युक्त ७ प्रकार से समझना।

★ *वासुदेव के साथ ही (समकालीन ही) बलदेव और प्रतिवासुदेव जानना।*

• *हरेक वासुदेव के काल में क्लेश करने-करवाने में कुशल, तथा कुतूहली परंतु ब्रह्मचर्य के सर्वोत्तमगुणवाले एकेक नारद के नाम से प्रसिद्ध गृहस्थ योगी जैसे ९ नारद उत्पन्न होते हैं। वह नारद वासुदेवादि राजाओं के अंतपुर में (राणीवास में) निशंक रीती से गमनाममन करनेवाले तथा गगनगामिनी लब्धिवाले होते हैं, तथा सर्वत्र राजसभा में राजादि जब पूछे तब क्षेत्रों की कौतुकी बाते सुनाते है और एक-दूसरे को क्लेश भी उत्पन्न कराते हैं। तथा जो ११ रुद्र कहे थे वह ११ महादेव के नाम से भी प्रसिद्ध हैं, वह सम्यक्त्वी होते हुए भी उस प्रकार के कर्मोदय से अनेक लोकविरुद्ध आचरण को आचरनेवाले होते हैं इसलिए वह व्यभिचारी भी कहलाते हैं। इसके नाम इस प्रकार से जाने (१) भीमवल (२) जितशत्रु (३) वल (४) वैश्वानर (५) सुप्रतिष्ठ (६) अचल (७) पुंडरीक (८) अजितधर (९) अजितबल (१०) पेढाल (११) सत्यकी।*

(१) सप्ततिशतकस्थानप्रकरणम्-३५४ (२) (A) तिलोयपण्णति-५१०/५११ (B) त्रिलोकसार-८०३, (C) जंबूद्दीवपण्णति संगहणी-२/१७९-१८४ (D) गोम्मटसार-जीवकाण्ड जीवतत्त्व प्रदीपिका-३६१/३६२, ७७३/३

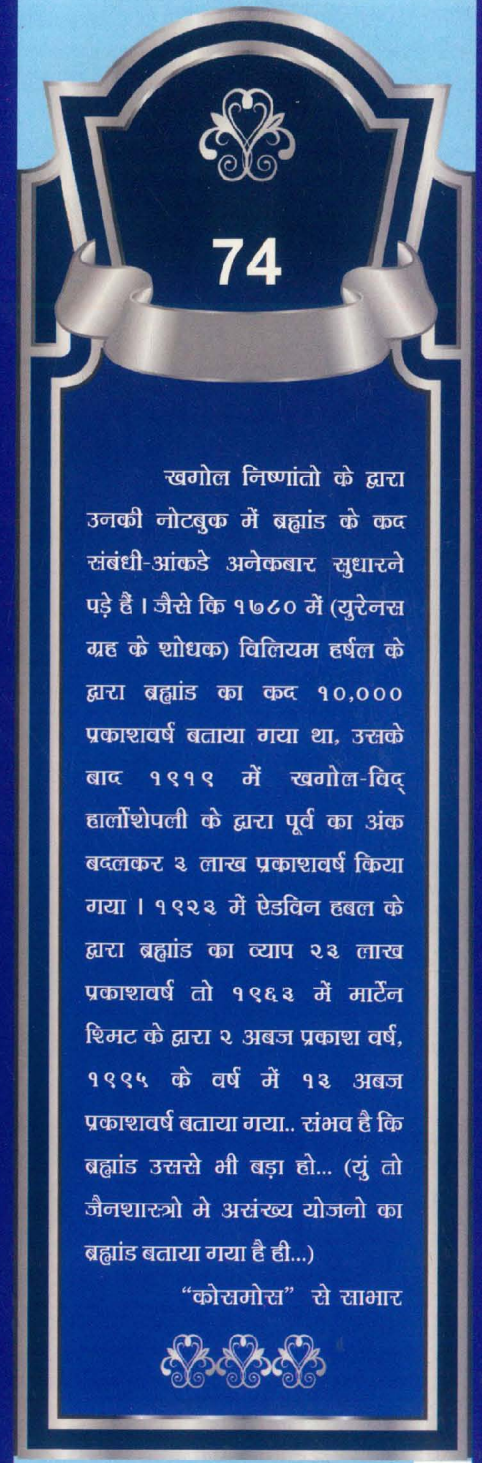

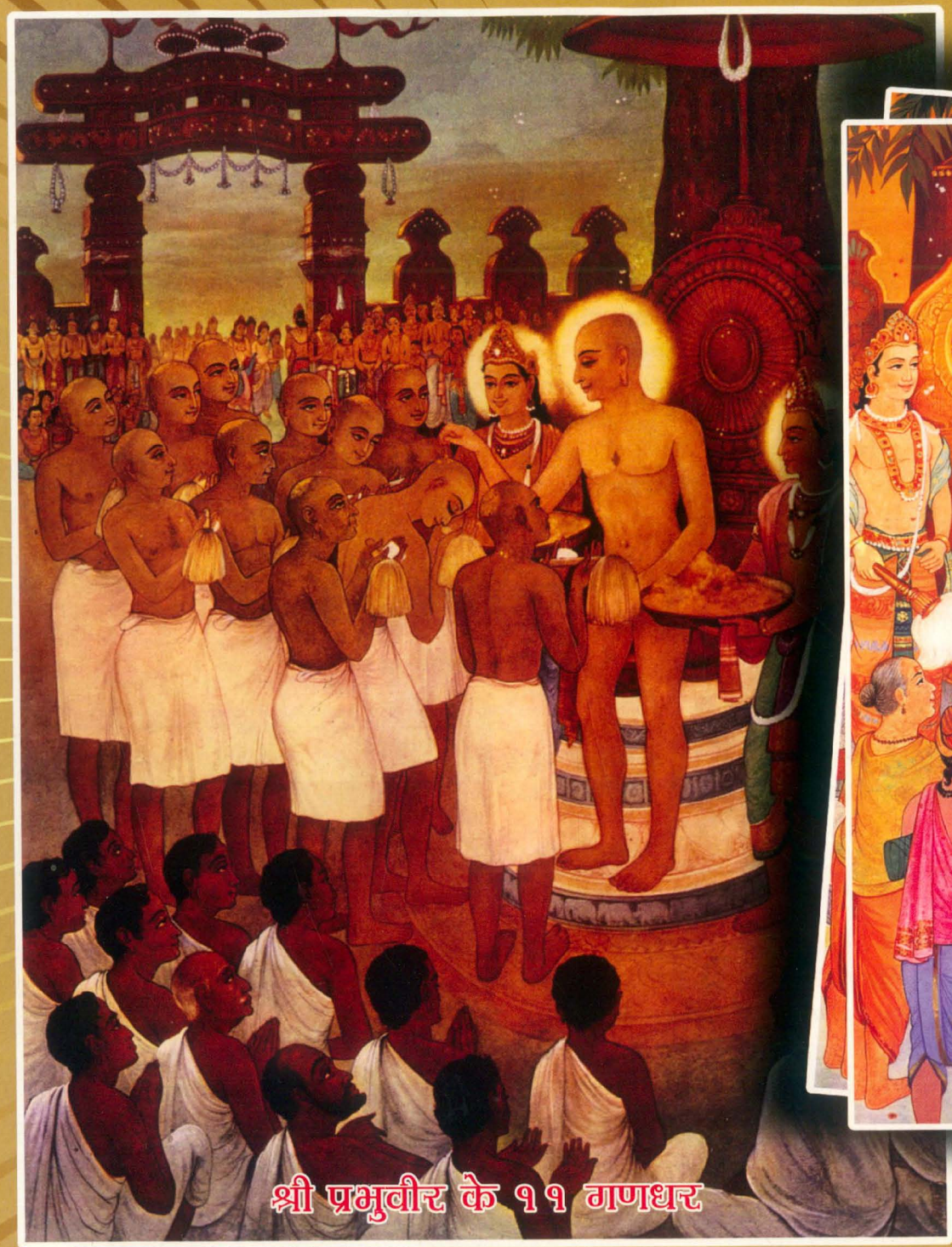

श्री प्रभुवीर के ११ गणधर

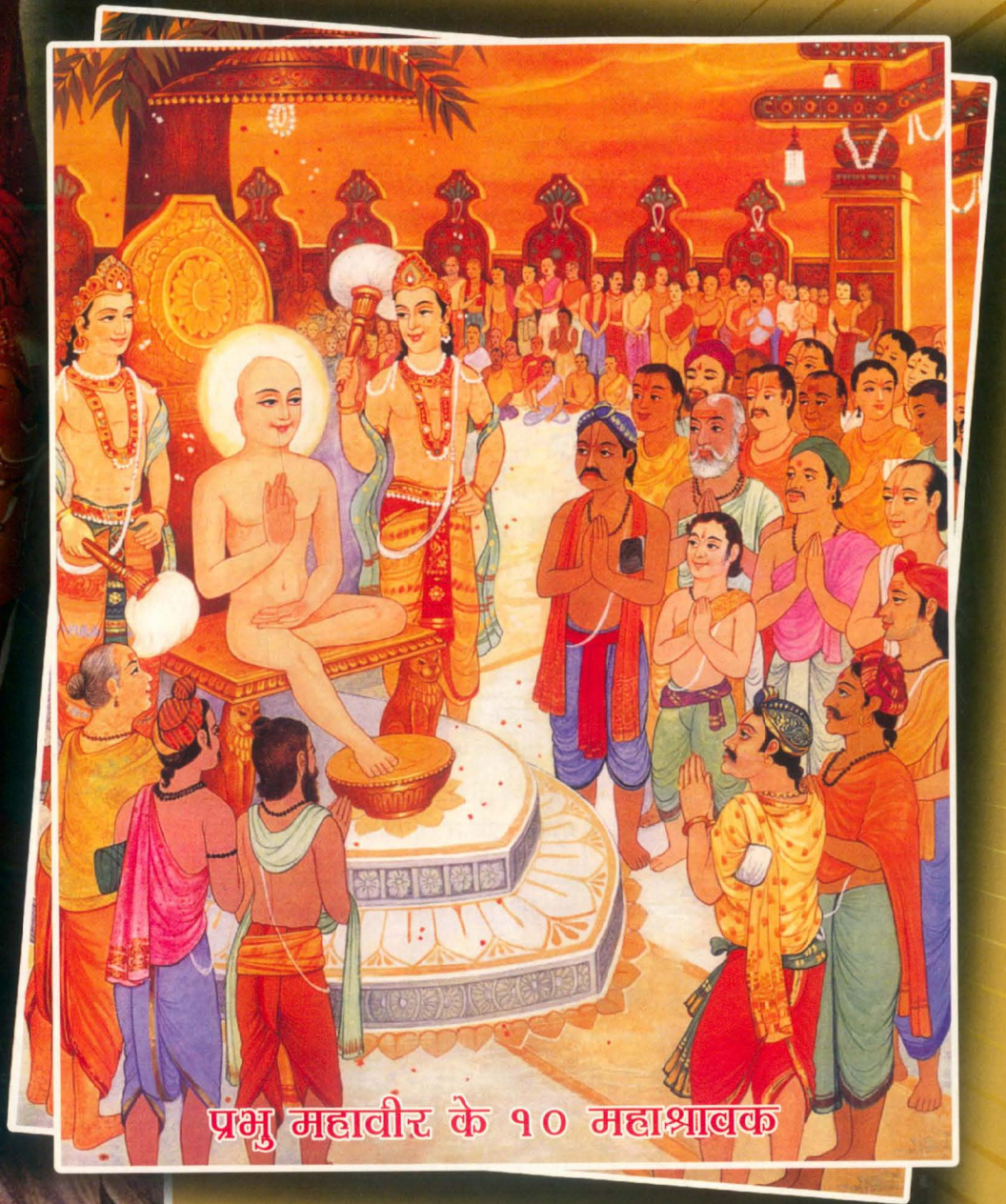

प्रभु महावीर के १० महाश्रावक

श्री प्रभुवीर के ११ गणधरों का जीवन परिचय[1] .....

क्रम	गणधर	नगर नाम	पिताश्री	माताश्री	जन्मनक्षत्र	गृहस्थ पर्याय	छद्मस्थ पर्याय	केवली पर्याय	सर्वायु	शिष्यादि परिवार	गौत्र
१	इन्द्रभूति	गोबर	वसुभूति	पृथ्वी	जयेष्ठा	५०	३०	१२	९२	५००	गौतम
२	अग्निभूति	गोबर	वसुभूति	पृथ्वी	कृत्तिका	५६	१२	१६	८४	५००	गौतम
३	वायुभूति	गोबर	वसुभूति	पृथ्वी	स्वाति	४२	१०	१८	७०	५००	गौतम
४	व्यक्त	कोल्लाक संनिवेश	धनमित्र	वारुणि	श्रवण	५०	१२	१८	८०	५००	भारद्वाज
५	सुधर्मा	कोल्लाक संनिवेश	धम्मिल	भद्दीला	उत्तरा फाल्गुनी	५०	४२	८	१००	५००	अग्निवैश्य
६	मंडितपुत्र	मोर्य संनिवेश	धनदेव	विजया	मघा	५३	१४	१६	८३	३५०	वाशिष्ट
७	मौर्यपुत्र	मोर्य संनिवेश	मोर्य	विजया	रोहिणी	६५	१४	१६	९५	३५०	काश्यप
८	अकंपित	मिथिला	देव	जयंति	उत्तराषाढा	४८	९	२१	७८	३००	गौतम
९	अचलभ्राता	कोशला	वसु	नंदा	मृगशीर्ष	४६	१२	१४	७२	३००	हरियातन
१०	मेतार्य	तुंगिक संनिवेश	दत्त	वरुणदेवी	अश्विनी	३६	१०	१६	६२	३००	कौडिन
११	प्रभास	राजगृही	बल	अतिभद्रा	पुष्य	१६	८	१६	४०	३००	कौडिन

प्रभु महावीर के १० महाश्रावक और उनकी सामान्य जानकारी[2]

क्रम	श्रावक के नाम	नगर नाम	श्राविका के नाम	गायों की संख्या	धन की संख्या	उपसर्ग	किसमें गये ? (विमानोत्पत्ति)
१	आनंद	वाणिज्यग्राम	शिवानंदा	४०,०००	१२ क्रोड सोनैया	अवधिज्ञान का	अरुण
२	कामदेव	चंपानगरी	भद्रा	६०,०००	१८ क्रोड सोनैया	पिशाचादि-३ का	अरुणनाभ
३	चुलणी पिता	वाराणसी	शामा	६०,०००	२४ क्रोड सोनैया	भद्रामाता का	अरुणप्रभ
४	सुरदेव	वाराणसी	धन्ना	६०,०००	१८ क्रोड सोनैया	१६ रोगों का	अरुणकांत
५	चुलणी शतक	आलंभिका	बहुला	६०,०००	१८ क्रोड सोनैया	स्त्री का	अरुणारिष्ट
६	कुंडकोलीक	कंपिलपुर	पुंसा	६०,०००	१८ क्रोड सोनैया	धर्मचर्या का	अरुणज
७	सद्दालपुत्र	पोलासपुर	अग्निमित्रा	१०,०००	३ क्रोड सोनैया	स्त्रीघात का	अरुणभुत
८	महाशतक	राजगृही	रेवति वगेरे-१३	८०,०००	२४ क्रोड सोनैया	रेवति स्त्री का	अरुणावंतसक
९	नंदीणी पिता	श्रावस्ति	अश्वनी	४०,०००	१२ क्रोड सोनैया	उपसर्ग नहीं	अरुणगर्व
१०	सालिही पिता	श्रावस्ति	फाल्गुनी	४०,०००	१२ क्रोड सोनैया	उपसर्ग नहीं	अरुणाकिल

◆ भावश्रावक के १७ लक्षण : (१) स्त्रीत्याग के परिणामवाला (२) इन्द्रियनिरोधक (३) अर्थ को असार माननेवाला (४) संसार को विडंबना जाननेवाला (५) विषयों को किंपाकफल के जैसे माननेवाला (६) तीव्रारंभ करे नहीं (७) गृहस्थाश्रम को कारागृह माने (८) सुगुरु की भक्ति से दर्शनशुद्धि करें (९) गाडरिया प्रवाह में चले नहीं (१०) शास्त्रानुसारी प्रवृत्ति करें (११) यथाशक्ति दानादि धर्म सेवे (१२) धर्म करने में शर्म न रखे (१३) राग-द्वेष खड़े न करें (१४) मध्यस्थ (१५) सर्व पदार्थों में क्षणिकता विचारे (१६) विरक्त होकर विषयों को भोगे (१७) वेश्या के जैसे गृहवास का पालन करें ।

(१) (A) शतपञ्चाशितिकासंग्रहणी, गाथा-८४ से १०१ (B) विचारसार-४८३ (C) गुरुगुणषट्त्रिंशत्षट्त्रिंशिका टीका (२) (A) उपासकदशांग सूत्र (B) विचारसार-४८० (C) प्रवचन सारोद्धार

कुछ विद्वानों की गवेषणा तथा खोज के परिणाम स्वरूप पृथ्वी का नवीन ही आकार माना गया है जो न पूर्णतया गोल है और न अण्डाकार । इस आकार को पृथ्व्याकार कहे तो ठीक है, क्योंकि उसका अपना निराला ही आकार है । इस आकार की कल्पना इस कारण से ही गई है कि पृथ्वी का कोई भी अक्षांश - यहाँ तक कि विषुवृत्त रेखा भी पूर्णवृत्ताकार नहीं है ।

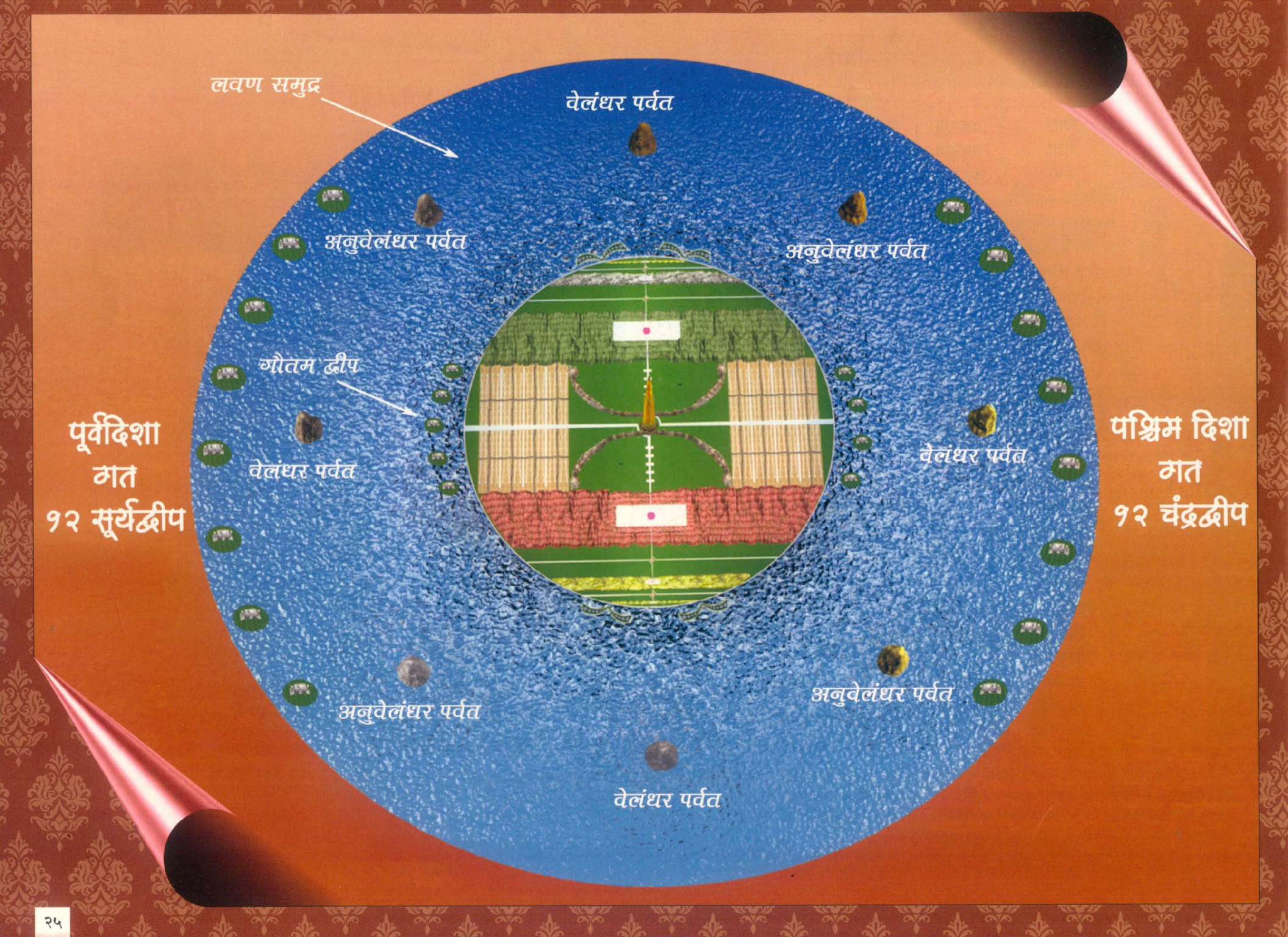
लवण समुद्र
वेलंधर पर्वत
अनुवेलंधर पर्वत
अनुवेलंधर पर्वत
गौतम द्वीप
पूर्वदिशा
गत
१२ सूर्यद्वीप
वेलंधर पर्वत
वेलंधर पर्वत
पश्चिम दिशा
गत
१२ चंद्रद्वीप
अनुवेलंधर पर्वत
अनुवेलंधर पर्वत
वेलंधर पर्वत

लवणसमुद्र.....

- जंबूद्वीप का संपूर्ण वर्णन यत्किञ्चित् स्वरूप से करने के बाद अब हम लवणसमुद्र का वर्णन देखेंगे।
- वृत्त एवं वलयाकार संस्थान से संस्थित यह लवणसमुद्र जंबूद्वीप को चारों और से घिरकर रहा हुआ है।
- यह लवणसमुद्र गोतीर्थ संस्थान, नावा संस्थान, शुक्तासंपुट संस्थान, अश्वस्कंधसंस्थान, वलभीगृह संस्थान, वृत्तसंस्थान एवं वलयाकार संस्थान से स्थित कहा गया हैं।
- यह लवणसमुद्र समचक्राकार संस्थान से स्थित है, परंतु विषमचक्राकार संस्थान से स्थित नहीं है।
- इस लवणसमुद्र की चक्राकार चौड़ाई २,००,००० योजन की कही गई है और १५,८१,१३९ में कुछ न्यून योजन बाह्य परिधि धातकीखंड के पास है और जंबूद्वीप के पास ३,१६,२२७ में कुछ अधिक योजन परिधि हैं।
- इस लवणसमुद्र में ५६ अंतर्द्वीप, १ गौतमद्वीप, १२ चन्द्रद्वीप, १२ सूर्यद्वीप, ४ बड़े महापाताल कलश, ७,८८४ लघु पातालकलश, ४ अनुवेलंधर पर्वत, ४ वेलंधर पर्वत, ६ मागधादि तीर्थद्वीप, १ उदकमाला (शिखा), १,७४,००० वेलंधरदेव, २ गोतीर्थ, ४ चन्द्र, ४ सूर्य, ११२ नक्षत्र, ३५२ ग्रह और २,६७,९०० कोडाकोडी तारा इत्यादि हैं।
- यह लवणसमुद्र १ पद्मवरवेदिका और १ वनखंड से चारों तरफ से घिरा हुआ हैं।
- यह पद्मवरवेदिका आधा योजन ऊपर की और ऊँची है, और ४०० धनुष्य चौड़ी हैं।
- तथा यह वनखण्ड कुछ कम दो योजन चक्रवाल चौड़ा है यावत् यहाँ देवादिगण विचरण करते हैं।
- इस लवणसमुद्र की गहराई १,००० योजन की कही गई है।
- इस लवणसमुद्र की ऊँचाई १६,००० योजन की कही गई है। और... इस लवणसमुद्र का सर्वाग्र १७,००० योजन का कहा गया हैं।
- इस लवणसमुद्र का जल मलिन है, किचडवाला है, लवण सदृश है, गोबर सदृश है, खारा है, कडवा है। अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृपों के पीने के योग्य नहीं है, केवल यह लवणसमुद्र में उत्पन्न हुए प्राणियों के पीने योग्य ही है।
- इस लवणसमुद्र का अधिपति अर्थात् गौतमद्वीप का स्वामी "सुस्थित" नामक एक पल्योपम का आयुवाला देव हैं।
- जिस तरह लवणसमुद्र में बहुत से उदार मेघ बनने लगते हैं, बनतें हैं और वर्षा बरसाते हैं उसी प्रकार बाहर के अर्थात् अढाईद्वीप के बाहर समुद्रों में ऐसा कुछ भी नहीं होता।
- इस लवणसमुद्र में उत्कृष्ट से ५०० योजन (उत्सेधांगुल) प्रमाण के मत्स्यादि जलचर जीव होते हैं, तथा वे जगती के विवरों में से होकर जंबूद्वीप में प्रवेशित पानी में उसी विवरों में से होकर मत्स्यादि भी ज्यादा में ज्यादा ९ योजन दीर्घ कायावाले ही प्रवेश कर सकते हैं।[१]

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-४ से १६ (४०२ से ४१४) (B) जीवाजीवाभिगम, पडि.-३, उद्देशा-२ (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२१

जैनधर्म का मैने अभ्यास किया है। "अहिंसा" और "अनेकांतवाद" जैनधर्म के द्वारा विश्व को दी गई अनमोल भेट है।

A. P. J. अब्दुल कलाम (भू. पू. राष्ट्रपति)

भारत उपनिवेश में महर्षि (सर्वज्ञ) ऋषभदेव हो गये है, जो भद्र स्वभावी सज्जन तथा जैनों के प्रथम तीर्थंकर थे।

डॉ. तुकाराम कृष्णाजी शर्मा,-लड्डु
(B.A.P.H.D.M.R.A.S.)

जैनधर्म एक ऐसा प्राचीन धर्म है, जिसकी उत्पत्ति तथा इतिहास का पता लगाना एक बहुत ही दुर्लभ बात है।

मि. कनुलाल जोधपुरी

लवण समुद्र अंतर्गत गौतमद्वीप
भौमेयविहार
गौतम द्वीप
देवशय्या
मणिपीठिका
पद्मवर वेदिका एवं वनखंड
लवण समुद्र

लवणसमुद्र अंतर्गत गौतमद्वीप.....

चलिए मित्रो ! अब हम देखते हैं लवणसमुद्र में आए हुए गौतमद्वीप को..., किस कारण से गौतमद्वीप गौतमद्वीप कहलाता है...? और इस पर कौन निवास करता है...? इत्यादि...।

कहा जाता है कि लवणसमुद्र का अधिपति (अधिष्ठायक देव) यह "सुस्थित" नामक देव है, जो महर्धिक ऋद्धि आदिवाला और पल्योपम की स्थितिवाला देव हैं।

इस जम्बूद्वीप नामक द्वीप के मेरुपर्वत से पश्चिम में लवणसमुद्र में बारह हजार (१२,०००) योजन जाने पर लवणाधिपति सुस्थित देव का "गौतमद्वीप" नाम का द्वीप आता हैं।

यह गौतमद्वीप १२,००० योजन लम्बा-चौड़ा कहा गया है, एवं ३७,९४८ योजन से कुछ कम की परिधि वाला होता हैं तथा जंबूद्वीप की ओर से ८८-११ $^{५०}/_{१५}$ योजन वह जल से ऊँचा हैं। तथा लवणसमुद्र की ओर से वह जल से २ कोस ऊँचा है।[१]

यह गौतमद्वीप १ पद्मवरवेदिका तथा १ वनखंड से चारों तरफ से घिरा हुआ है।

इस गौतमद्वीप नामक द्वीप के अन्दर का भूभाग अत्यधिक सम एवं रमणीय है। जिस प्रकार मृदंग वाद्य पर मढा हुआ चर्म हो ठीक उसी प्रकार वहा देवतादि बैठते है।

उस सम एवं रमणीय भूभाग के ठीक मध्यभाग में लवणाधिपति सुस्थित देव का एक महान् अतिक्रीड़ावास भौमेयविहार नाम का कहा गया है। वह ६२ $^{१}/_{२}$ योजन ऊपर की और ऊँचा है और ३१ $^{१}/_{४}$ योजन चौड़ा है तथा अनेक सैंकड़ों स्तम्भों पर यह टिका हुआ है।

उस अतिक्रीडावास नामक भौमेय विहार के अन्दर का भूभाग बहुत सम एवं रमणीय कहा गया है, यावत् मणियों के प्रकाश से युक्त है। उस रमणीय भूभाग के ठीक मध्यभाग में एक मणिपीठिका कही गई है। जो दो योजन लम्बी-चौड़ी है, १ योजन ऊँची है, स्वच्छ तथा मनोहर है। उस मणिपीठिका के उपर एक देवशय्या कही गई हैं जिस पर सुस्थित देव रहा करता हैं।

इस गौतमद्वीप को गौतमद्वीप कहने का कारण यह है कि - यहाँ स्थान-स्थान पर गौतम जैसी प्रभावाले अनेक उत्पल (कमल) है इसी कारण से यह गौतमद्वीप कहा जाता है। अथवा यह नाम शाश्वत - अनादिकालिन है यह समझना...।

इस लवणाधिपति ऐसे सुस्थित देव की राजधानी जो सुस्थिता नाम की है वह गौतमद्वीप के पश्चिम में तिरछे असंख्य द्वीप समुद्रों के बाद यावत् दुसरे लवणसमुद्र में १२,००० योजन जाने के बाद आती है जहाँ सुस्थित देव विहार (विचरण) आदि करता है।[२]

(१) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२ सूत्र-३५/४९/५०/४३३/४४७/४४८ (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-११ श्लोक-११५ से २२२

77

"In these days of hared and disgust which seen to encompass humanity in a fearful fashion darkening the whole field of human endevom and activity, the salvation of human race lies in the doctrines preached by Lord Mahaira."

- Dr. K. N. Katju

"Bribery, contribution and violence would surely be wiped out if we follow the beautiful and inspiring teachings of Lord Mahavira. Instead of finding fault with others we would look to our own weaknesses and draw backs. This would at once set right the whole world."

- Lal Bahadur Shastri

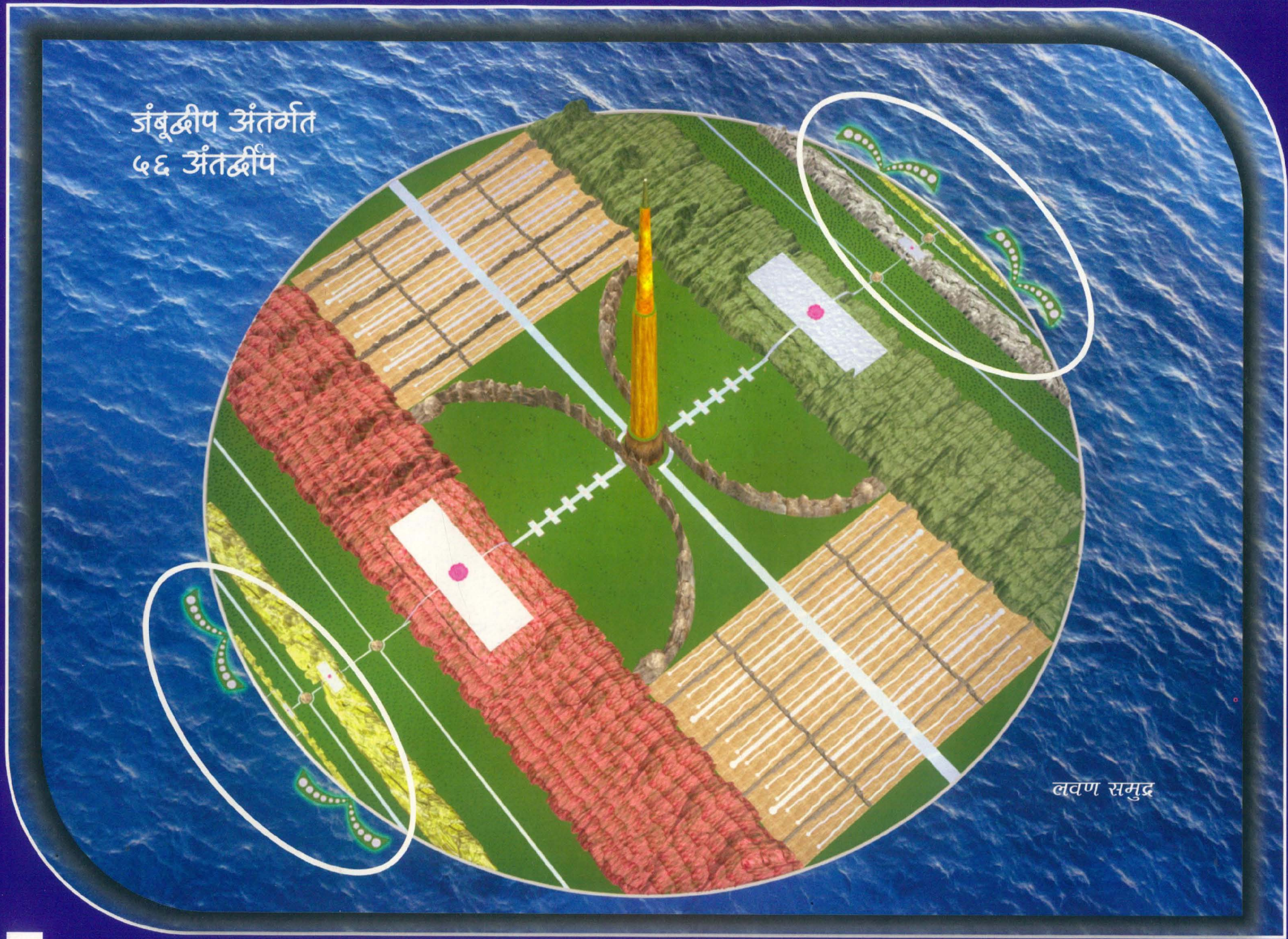
जंबूद्वीप अंतर्गत
५६ अंतर्द्वीप
लवण समुद्र

लवणसमुद्र अंतर्गत ५६ अंतर्द्वीप.....

जंबूद्वीप में आए हुए हिमवंत पर्वत तथा शिखरी पर्वत के पूर्व-पश्चिम अंत से लवणसमुद्र में ४-४ गजदंता आकार में दाढाएँ निकलती हैं, इन दाढाओं पर ७-७ एसे कुल मिलाकर ५६ अंतर्द्वीप[1] आए हुए हैं। विशेष हकीकत नीचे दी गई हैं।

क्रम	द्वीप के नाम	जगति से कितने दुर	द्वीप की लंबाई	द्वीप की चौड़ाई	द्वीप का घेरावा	जंबूद्वीप तरफ जल से कितने ऊपर	लवणसमुद्र तरफ जल से कितने ऊपर
१	एकोरुक	३०० यो.	३०० यो.	३०० यो.	९४५ यो.न्यून	२ १/२ यो. २०/९५	२ गाउ
२	हयकर्ण	४०० यो.	४०० यो.	४०० यो.	१,२६५ यो.न्यून	२ १/२ यो. १०/९५	२ गाउ
३	आदर्शमुख	५०० यो.	५०० यो.	५०० यो.	१,५८१ यो.न्यून	३ १/२ यो. ६५/९५	२ गाउ
४	अश्वमुख	६०० यो.	६०० यो.	६०० यो.	१,८९७ यो.न्यून	४ १/२ यो. ४०/९५	२ गाउ
५	अश्वकर्ण	७०० यो.	७०० यो.	७०० यो.	२,२१३ यो.न्यून	५ १/२ यो. १५/९५	२ गाउ
६	उल्कामुख	८०० यो.	८०० यो.	८०० यो.	२,५२९ यो.न्यून	५ १/२ यो. ८५/९५	२ गाउ
७	धनदंत	९०० यो.★	९०० यो.	९०० यो.	२,८४५ यो.न्यून	६ १/२ यो. ६०/९५	२ गाउ

विशेष : ऊपर बताए हुए कोष्टक में हिमवंत पर्वत के ईशानकोण में रहे हुए ७ द्वीपों के नामादि बताए है। उसी प्रकार उतनी ही लंबाई-चौड़ाई-परस्पर अंतर-जगती से दूरी वाले अग्निकोण, नैऋत्यकोण और वायव्यकोण में रही हुई दाढाओं के उपर द्वीपों के नाम अनुक्रम से इस प्रकार जानना...।

अग्निकोण में (१) आभासिक (२) गजकर्ण (३) मेंढमुख (४) हस्तिमुख (५) हरिकर्ण (६) मेघमुख और (७) लष्टदंत।

नैऋत्यकोण में (१) वैषाणिक (२) गोकर्ण (३) अयोमुख (४) सिंहमुख (५) अकर्ण (६) विद्युन्मुख और (७) गुढदंत।

वायव्यकोण में (१) नांगोलिक (२) शष्कुलीकर्ण (३) गोमुख (४) व्याघ्रमुख (५) कर्णप्रावरण (६) विद्युत्दंत और (७) शुद्धदंत।

जिस तरह उपरोक्त २८ द्वीप वह दक्षिण दिशा के बताएं ठीक उसी प्रकार उत्तर दिशा के भी समझना।

इन प्रत्येक ५६ अंतर्द्वीपों के आसपास पद्मवरवेदिका और बगीचें आए हुए हैं।

इन सर्व द्वीपों में ८०० धनुष्य प्रमाण कायावाले अर्थात् ३२०० हाथ की उँचाईवाले, पल्योपम के असंख्यातवें भाग के आयुष्यवालें, ६४ पसलियों से शोभित सुंदर आकृतिवाले, १-१ दिन के अंतर में कल्पवृक्षों के फलों का आहार करनेवाले, राग-द्वेष-रोग-शोकादि के अभाववाले, छः महिने की शेष आयु जब रहती है तब वे पुत्र-पुत्री रूप युगल (कप्पल) को जन्म देनेवाले, तथा जन्म के बाद ७९ दिन उनका लालन-पालन कर समाधि पूर्वक मृत्यु प्राप्त कर देवलोक में ही जानेवाले होते हैं।[2]

★ इस प्रकार ३०० + ३०० + ४०० + ४०० + ५०० + ५०० + ६०० + ६०० + ७०० + ७०० + ८०० + ८०० + ९०० + ९०० = ८,४०० अर्थात् ७वाँ द्वीप समाप्त होते होते ८४०० योजन पूर्ण होते हैं; अत: हरेक दाढा ८४०० योजन वक्रदीर्घ जाननी।
१ २ ३ ४ ५ ६ ७

(१) ठाणांग सूत्र, उद्देशा-२, सूत्र-३०१ (२) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-५५ से ७४ (४५३ से ४७२) (B) जीवाजीवाभिगम सूत्र, पडि. ३. (C) प्रज्ञापना सूत्र, प्रथम पद, (D) आवश्यक, मलयगिरि द्वितीयखंड (E) क्षेत्रलोकप्रकाश सर्ग-१६, श्लोक-२८१ से ३२५

पादरी फादर जोन्सन ने इस दक्षिण अक्षांश की साहसिक यात्रा की रिपोर्ट में लिखा है कि - "यहाँ उषाकाल और संध्याकाल केवल ५-६ मिनिट सूर्य क्षितिज पर पहुँचता है तभी हम रात्री का प्रबन्ध कर लेते है, क्योंकि यहाँ सूर्यास्त के साथ ही तत्काल अन्धकार पूर्ण रात्री हो जाती है।"

यह कैसे हो सकता है ? उत्तर दक्षिण के अक्षांशों पर प्रभात (उषाकाल) और संध्याकाल तो समान ही होना चाहिए।

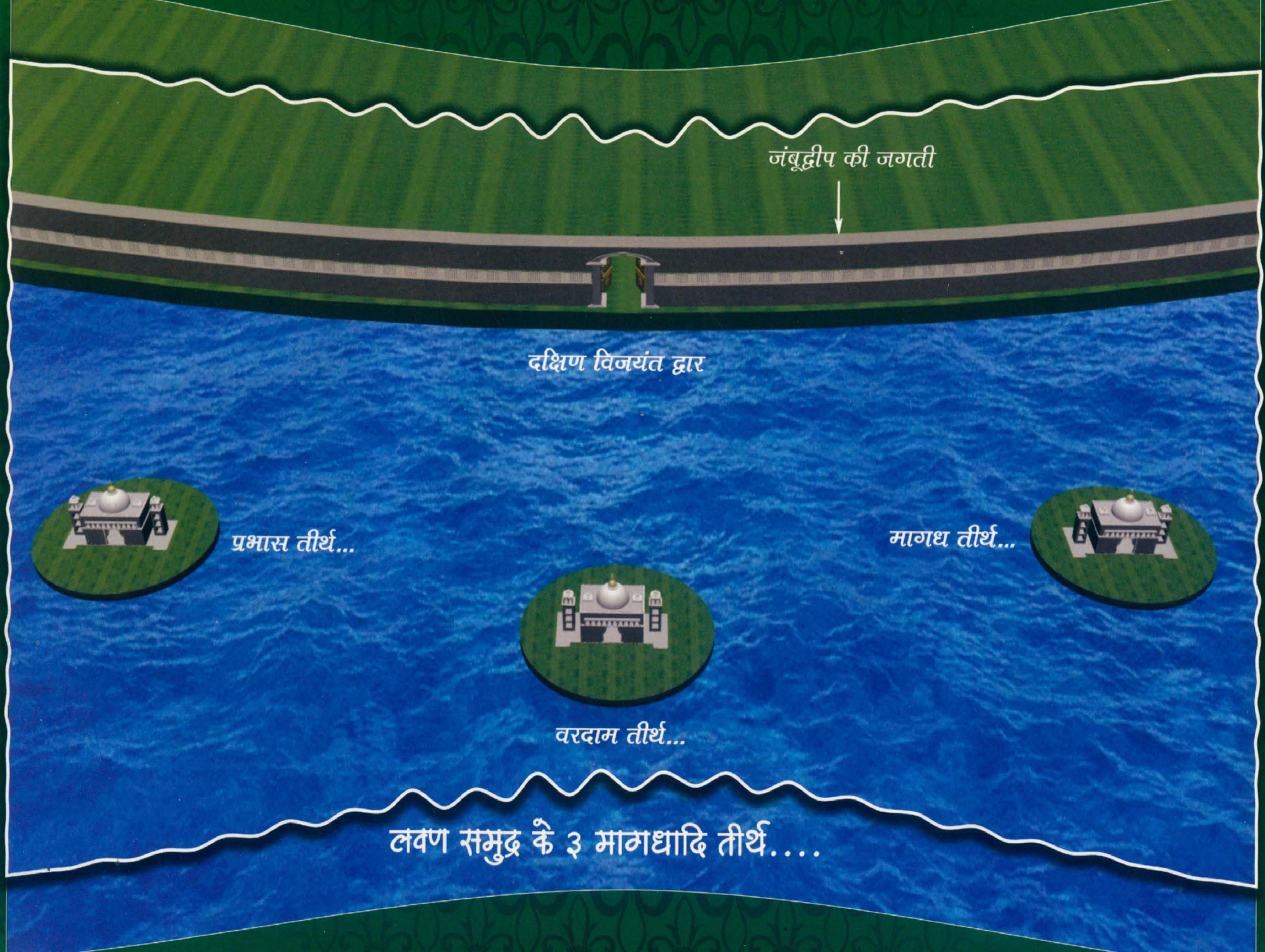
जंबूद्वीप की जगती
दक्षिण विजयंत द्वार
प्रभास तीर्थ...
मागध तीर्थ...
वरदाम तीर्थ...
लवण समुद्र के ३ मागधादि तीर्थ....

लवणसमुद्र के तीन मागधादि तीर्थ.....

इस जम्बूद्वीप के परिवर्तित (चारों तरफ) २,००,००० योजन का वलय-विष्कंभवाला लवणसमुद्र हैं। उसकी परिधि १५,८१,१३९ योजन में कुछ न्यून हैं।

इस लवणसमुद्र में ४-४ चन्द्र और सूर्य तथा गौतमद्वीप आदि द्वीप आए हुए हैं। इस लवणसमुद्र में भरत क्षेत्र के पूर्वभाग में बहनेवाली गंगानदी जिस स्थान में मिलती है वहाँ नदी और समुद्र के संगमस्थान से १२ योजन की दूरी पर मागध नाम के देव की राजधानी के रूप में प्रसिद्ध बने हुए मागध नाम का द्वीप है जिसे "मागधतीर्थ" कहा जाता है, (जलाशय में उतरने योग्य ढालवाला क्रमशः नीचे गया हुआ जो भूमिभाग होता हैं उसे "तीर्थ" कहा जाता है।) वह आया है। इसी तरह भरत की पश्चिम दिशा में दूसरी सिंधु नदी के संगमस्थान पर १२ योजन दूर प्रभासदेव की राजधानी वाला द्वीप जो "प्रभासतीर्थ" कहलाता है वह आया है। उन दोनों तीर्थों के मध्यभाग में उन दो तीर्थों की ही सतह में (नदी-समुद्र के संगम से १२ योजन दुर समुद्र में ही) वरदाम नाम के देव से प्रसिद्ध "वरदामतीर्थ" आया हुआ है। इसी तरह ऐरावत क्षेत्र में रक्तवती के संगमस्थान में १२ योजन दूर समुद्र में "मागधतीर्थ" तथा रक्ता के संगमस्थान से १२ योजन दूर "प्रभासतीर्थ" है, उन दोनों के बीच पूर्ववत् समुद्र में "वरदामतीर्थ" आया हैं। ३२ विजयों में उत्पन्न होनेवाला चक्रवर्ती जब छः खण्डों का दिग्विजय करने निकलता है तब प्रथम मागधतीर्थ के समीप समुद्र या नदी के किनारे पर अपने सारे सैन्य को स्थापित करके अट्ठम तप करके अकेला स्वयं ही चार अश्वों वाले रथ में आरूढ़ होकर रथ का मध्यभाग डूबे वहाँ तक समुद्र में उतरकर रथ के उपर खड़ा होकर, स्वनामांकित जो बाण मागधदेव की राजधानी में फेंकता है, वह बाण चक्रवर्ती की शक्ति से १२ योजन दूर जाकर मागधदेव की राजसभा में जा पड़ता हैं, पड़ते ही क्रोध से कुपित बना हुआ मागधदेव बाण उठाते ही चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं ऐसा जानकर और बाण पर उसका नाम पढ़कर तुरंत ही शांत बना हुआ मागधदेव अनेक प्रकार की भेंटों के साथ बाण लेकर चक्रवर्ती के समीप आकर, उसे नमस्कार करके तथा अपनी भक्ति प्रदर्शित करके "आपकी आज्ञा मुझे शीरोधार्य है" इत्यादि वचन कहकर, चक्रवर्ती को बाण वापस देकर तथा सत्कार में भेंट-सोगाद देकर, चक्रवर्ती भी उसका आनन्द से स्वीकार करके, उस देव का यथायोग्य सत्कार करके, स्वस्थान प्रति जाने के लिए सम्मति देता है। इसी तरह पुनः वरदाम तथा प्रभासतीर्थ को साधता हैं। इसप्रकार ये तीर्थ लवणसमुद्र में आये हुए हैं। इसके अलावा भी चार बड़े पातालकलश, लघुपातालकलश, वेलंधर पर्वत, अनुवेलंधर पर्वत, जलशिखा इत्यादि भी इन पदार्थों का अस्तित्व इसी लवणसमुद्र में पाया जाता हैं।[१]

(लवणसमुद्र में आये हुए पदार्थों का संक्षिप्त संग्रह....)

१. ५६ - अंतर्द्वीप	५. ४ - महापाताल कलश	९. ६ - मागधादि तीर्थद्वीप	१३. ४ - सूर्य / ४ चन्द्र
२. १ - गौतमद्वीप	६. ७,८८४ - लघुपाताल कलश	१०. १ - उदकमाला (शिखा)	१४. ११२ - नक्षत्र
३. १२ - चन्द्रद्वीप	७. ४ - वेलंधर पर्वत	११. १,७४,००० - वेलंधरदेव	१५. ३५२ - ग्रह
४. १२ - सूर्यद्वीप	८. ४ - अनुवेलंधर पर्वत	१२. २ - गोतीर्थ	१६. २,६७,९०० - कोडाकोडी तारा

(१) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-६

पृथ्वी पर जीवन का आरंभ कैसे हुआ, विज्ञान के पास इसका कोई उत्तर नहीं है।

How did living creatures begin to be upon the earth?

In point of science, we do not know..

- J. A. थॉमसन

The more scientific knowledge advances. The more the Jain teaching will be probed.

विज्ञान जितना विकसित होगा उतना जैन तत्त्वज्ञान प्रमाणित होता जायेगा।

डॉ. एल.पी.टेस्सीटॉरी, इटली

मैं अपने देशवासियों को दिखाऊंगा कि - कैसे उत्तम नियम और उच्च विचार जैन धर्म और जैनाचार्यो मे है। जैनियों का साहित्य बौद्धों से बहुत बढ़कर है और ज्यों-ज्यों मैं जैनधर्म और उसके साहित्य को पढ़ता - समझता हूँ, त्यों त्यों मैं उनको अधिक पसंद करता हूँ।

- डॉ. जोन्स हर्टल, पेरिस

लवण समुद्र में गौतीर्थ और जलवृद्धि का दो तरफ से दृश्य

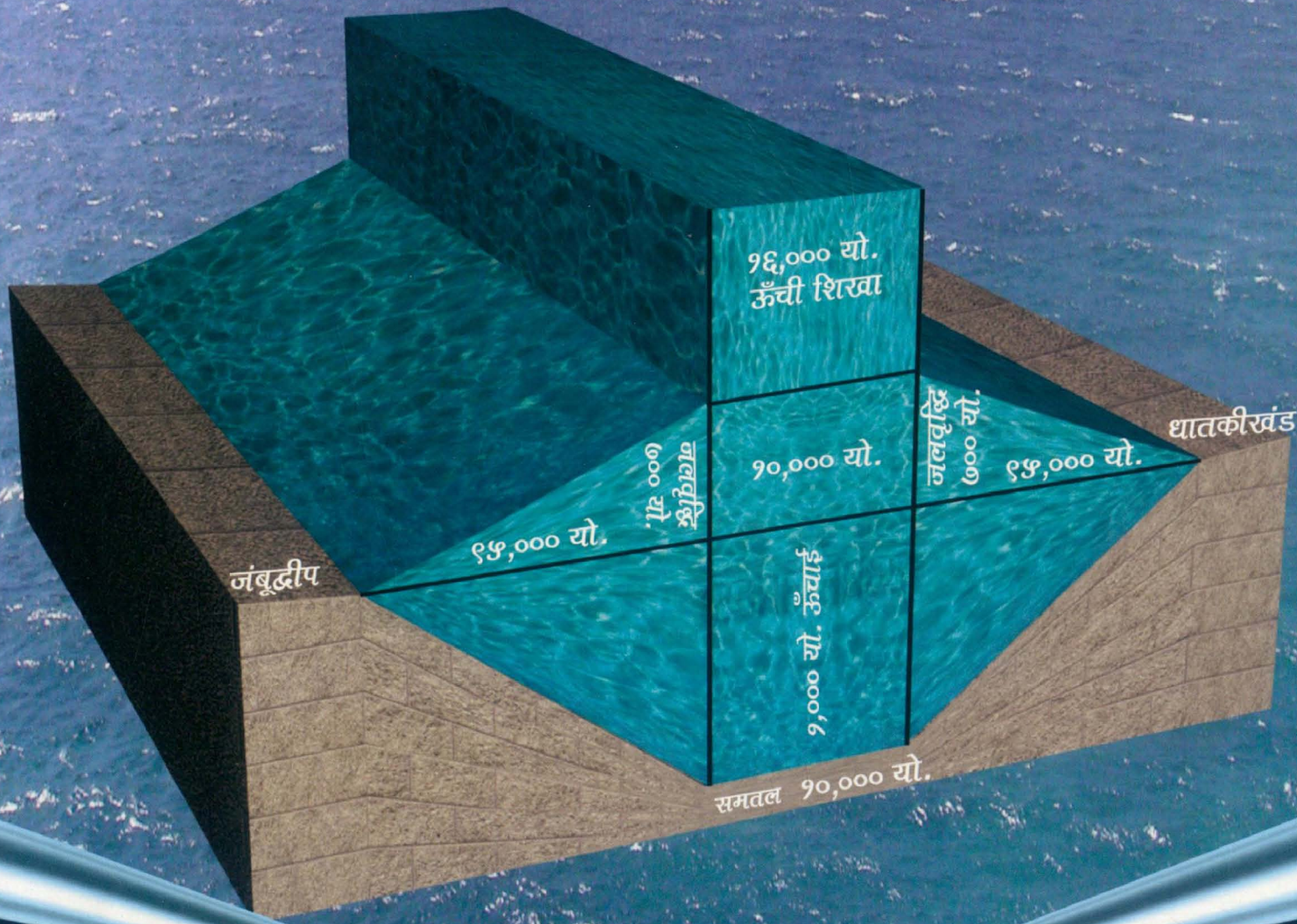

गोतीर्थ और जलवृद्धि का दो तरफ से दृश्य.....

जंबूद्वीप के चारों ओर लवणसमुद्र है और उसकी चारों ओर धातकीखण्ड होने से लवणसमुद्र का जल इस भाग पर जंबूद्वीप की जगती को और सामनेवाले भाग धातकीखण्ड की जगती को अर्थात् दो द्वीपों की दोनों जगती का स्पर्श करता हैं, उनमें जम्बूद्वीप द्वारा स्पर्शित जलवाला जो किनारा हैं, वह अभ्यंतर और धातकीखण्ड द्वारा स्पर्शित जो किनारा है वह बाह्य गिना जाता है। वहाँ जम्बूद्वीप की जगती से स्पर्शित इस अभ्यंतर किनारे से ९५,००० योजन समुद्र में दूर जाने पर उस स्थान में जगति से समुद्र की भूमि अनुक्रम से नीची नीची उतरती हुई १,००० योजन गहरी हो जाती है। वैसे ही धातकीखण्ड की जगती के पास से जंबूद्वीप की जगती की दिशा की तरफ ९५,००० / ९५,००० योजन समुद्र में आ जाने पर उस स्थान में भी पूर्व की तरह १,००० योजन गहराई हो जाती है, यद्यपि जम्बूद्वीप की तथा धातकीखण्ड की जगती के पास स्पर्शित जल तो योजन के असंख्याता भाग प्रमाण गहरा होता है, परंतु आगे बढने पर गहरी बढ़ती जाती होने से मध्य के १०,००० योजन में १,००० योजन गहराई हो जाती है। अतः लवणसमुद्र के दो लाख योजन के विस्तार में से दोनों बाजु के ९५,००० / ९५,००० योजन कम करे तब अति मध्यभाग में १,००० योजन विस्तार में से दोनों बाजु के ९५,००० योजन कम करें तब अति मध्यभाग में १०,००० योजन विस्तार शेष रहता है और उतने विस्तीर्ण भाग में १,००० योजन की गहराई चारों बाजु पर समान रूप में होती हैं।[१] (देखिए सामने रहे हुए चित्र को...)

अब दोनों बाजुओं पर जिस तरह ९५,००० योजन भूमि उतार कहा है उसी तरह दोनों बाजु की जगती से (अभ्यंतर तथा बाह्य किनारे से) ९५,००० योजन तक जल के अनुक्रम से समभूमि की सतह से चढता हुआ जल ७०० योजन ऊँचा हो जाता है जिससे उस स्थान पर १,००० योजन गहराई और ७०० योजन उपर की जलवृद्धि होने से कुल १,७०० योजन प्रमाण ऊँचा जल* समुद्र के तलवे की अपेक्षा से होता है। लवणसमुद्र में मध्य के १०,००० योजन के विस्तार में १,००० योजन की जो गहराई बताई उसी १०,००० योजन के विस्तार में सामान्यतः जल की सतह (सपाटी) से १६,००० योजन ऊँची जलशिखा खड़ी चुनी हुई दीवार अथवा गढ़ के आकार के समान ऊपर से लेकर १६,००० योजन शिखा हुई, वह शिखा उक्त प्रकार से नीचे और उपर दोनों स्थानों पर १०,००० योजन चौड़ी होती है, इस शिखा का जल प्रतिदिन दो बार दो कोस ऊँचा चढ़ता है और भाटा (पानी का उतार) की तरह पुनः उतरता जाता है। ऐसे ज्वार-भाटा होने का कारण लवणसमुद्र में स्थित पातालकलशों का वायु हैं।[२]

★ जल का सहज स्वभाव तो सम-सतह (सपाटी) में रहने का होता हैं, फिर भी जिसे जल का चढाव कहते हैं वह कैसे उपर जाए ? उस शंका के समाधान में समझना की प्राकृतिक रूप से ही जल तथाप्रकार के क्षेत्र स्वभाव से भी लवणसमुद्र में क्रमशः चढ़ता रहता हैं।

(१) स्थानांग सूत्र-(स्थान)-१०, (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२, श्लोक-९ से ३४

यदि पृथ्वी वास्तविकता मे गेंद जैसी गोल हो, सूर्य के आसपास अपनी भ्रमण कक्षा में घूमती हो व उसकी धूरी झुकी हुई हो तो न्युटन के सिद्धांत अनुसार उत्तर व दक्षिण दोनों ध्रुवों पर छः माह का दिन व छः माह की रात होनी चाहिए। वास्तव मे उत्तर ध्रुव पर छः माह के दिन-रात देखे जा सकते है, लेकिन दक्षिण ध्रुव पर वैज्ञानिको को छः माह के दिन-रात होने के एक भी प्रमाण आज तक नहीं मिला है।

ज्वार
ज्वार
ज्वार
ज्वार
ज्वार
ज्वार
ज्वार
ज्वार

जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण..... (पार्ट - १)

तिर्च्छालोकवर्ती असंख्यात द्वीप समुद्रों में से सिर्फ एक लवणसमुद्र में ही ज्वार-भाटा का प्रसंग मिलता हैं । हम १ लाख योजनवाले जंबूद्वीप में आए हुए छोटे से भरत क्षेत्र में रहते हैं। इस भरत क्षेत्र की (उत्तर दिशा के सिवा) तीनों दिशाओं में लवणसमुद्र होने से इस भरत क्षेत्रवर्ती मानवों को लवणसमुद्र में होते ज्वार-भाटा के प्रसंग विशेष रूप में देखने में आते हैं। लवणसमुद्र जंबूद्वीप की चारों बाजुओं से परिवेष्टित वलयाकार में आया हुआ है और उसका चक्रवाल-एक बाजु का (चौड़ाई) विष्कंभ दो लाख योजन प्रमाण है । इस समुद्र में १०,००० योजन के विस्तारवाली और समभूतल की समसतह से १६,००० योजन और समुद्रतल से १७,००० योजन ऊँची जलवृद्धि होती है। इस जलवृद्धि के नीचे चारों दिशाओं में एक-एक बड़े पाताल कलश आये हैं। ये कलश बड़े घड़े के आकार के समान और वज्ररत्न के है। इसके ठीकरे की मोटाई १,००० योजन की, नीचे से १०,००० योजन चौड़े और उतने ही चौड़े ऊर्ध्वस्थान में भी अर्थात् १०,००० योजन चौड़े मुखवाले, मध्यभाग में १,००,००० योजन चौड़ाईवाले भूमि में गए हुए हैं, जिससे समभूमि की सम सतह से १,००,००० योजन उपरांत १,००० योजन प्रमाण पूर्ण होने पर नीचे के कलश का तलवा आता है, और ऊपर से चारों कलश सम समूह में रहते हैं।

पूर्व दिशा के कलश का नाम ''वडवामुख'', दक्षिण दिशा के ''केयुप'', पश्चिम दिशा का ''यूप'' और उत्तर दिशा का ''ईश्वर'' इस तरह महाकलश आए हुए हैं।[१] एक कलश से दूसरे कलश का अंतर २,१९,२६५ योजन है और उस हर एक अंतर की चौड़ाई १०,००० योजन विस्तारवाली है। इस विस्तार में लघुपाताल कलशों की ९ पंक्तियाँ समा जाती है। इन नवों पंक्तिओं के मिलकर एक कलश के आंतरे में १,९७१ लघुपाताल कलश है, इस तरह चारों महाकलशों के आंतरों की नवों पंक्तिओं के कुल मिलाकर ७,८८४ लघुपाताल कलश आए हुए हैं। प्रत्येक कलश पर आधे पल्योपम के आयुष्यवाले अधिपति देव होते हैं। ये लघुपाताल कलश बड़े चार कलशो की अपेक्षा से प्रमाण में उनसें १०० वें भाग के जानने चाहिए। ये पल्योपम के आयुष्यवाले काल-महाकाल-वेलंब और प्रभंजन चारों देव अधिपति के रूप में हैं। इन चारों महाकलशों की १,००,००० योजन की गहराई को तीन भागों में बांटने से ३३,३३३ $^{१}/_{३}$ योजन प्रत्येक भाग में प्राप्त होता है। उनमें प्रथम भाग के ३३,३३३ $^{१}/_{३}$ योजन भाग में केवल वायु भरा है, मध्य के ३३,३३३ $^{१}/_{३}$ योजन भाग में वायु और जल दोनों होते हैं, और ऊपर के ३३,३३३ $^{१}/_{३}$ भाग में केवल जल होता है। (लघुपाताल कलशों में भी यही क्रम समझें, परंतु प्रमाण ३३,३३३ $^{१}/_{३}$ के बदले ३३३ $^{१}/_{३}$ योजन सर्वत्र योजे...)

(चलिए पढ़ते है ''जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण.... पार्ट-२'' अगले प्रकरण में.....)

(१) प्रवचन सारोद्धार,

81

According to the jain geography the Lavan Ocean encircles the jamboodweep and there are four maha kalashas (Giant pots) under Lavan Ocean and the height of these Mahakalash is 1,00,000 yojan (an indian measure of long distance), This Kalash is filled with 33% of air in the lower part, 33% of the water and the air in the middle & 33% of the water in the upper part. More over there are 7,884 Laghu Kalashas (Small pots) in lavan ocean and they are one thousand yojans tall each and constituted similarly to the Maha Kalash. The air in these kalash expand twice in a bay pushing the water upwards and causing the tide in the oceans and contracts twice in a day causing the ebb. There is a tide and an ebb in all oceans connected with the Lavan ocean.

भाटा

भाटा

भाटा

भाटा

जैन दृष्टि से ज्वार-भाटा का कारण.....(पार्ट - २)

अब नीचे के दोनों भाग में वायु होने के कारण वायु के स्वभाव के अनुसार कुदरती तौर पर ही उनमें तेज हवा चलती हैं और वह वायु अत्यन्त क्षुब्ध होता है। क्षुब्ध होने के कारण अगल-बगल निकलने का मार्ग तो हैं ही नहीं, अत: वायु ऊँचा उछलता है। (जैसे मनुष्यों के उदर में रहा हुआ श्वासोश्वास-प्राणवायु स्वाभाविक ऊर्ध्व होकर उच्छ्वास रूप में बाहर निकलता है वैसे) बाहर निकलने चाहता ऐसा वायु नीचे से उछलता हुआ तीसरे भाग में रहे जल को और परंपरा से कलश के उपर के जल को उछालता है, जिससे समुद्रगत १६,००० योजन की शिखा रूप में रहा ऊँचा जल वह भी शिखा के अंत से ऊपर दो कोस तक वृद्धि पाता है। यह जलवृद्धि कुदरती तौर पर और वेलंधर-अनुवेलंधर नागकुमार देवों के तीनों★ दिशावर्ती प्रयत्न से तीनों बाजु पर और समुद्र के बाहर की प्रचंड हवा से आगे बढने से रुक जाती हैं क्योंकि वे देव बड़े कलशे (करछुल) से आगे बढ़ते जल को रोकते जाते हैं। ऐसा नहीं होता तो उस समुद्र वेल की वृद्धि अनेक गाँव-नगरों को एक ही थपेड़े में जलमय बना देती। परंतु समुद्र मर्यादा का उल्लंघन करता ही नहीं है, के जिससे नगरादि स्थल वगैरह... जलमय नहीं हो सकते, यह उसका अनादि सिद्ध स्वभाव है। इस कलश का वायु जब शान्त होता है तब जलवृद्धि और छिछला (उछला) जल, क्रमश: घटता हुआ स्वस्थान पर आ जाता है। यह जलवृद्धि हररोज दिन में दो बार अवश्य होती है, उसमें भी अनुक्रम से अष्टमी-चतुर्दशी और पूर्णिमा-अमावस्या आदि दिनों में तो वह वायु स्वाभाविक रूप से अत्यन्त विशेष क्षुब्ध होता है, अत: जलवृद्धि उन दिनों में बहुत प्रबल होती है।

इस तरह पाताल कलश में रहे हुए वायु के क्षोभ से १६,००० योजन ऊँची लवणसमुद्र की जलशिखा के ऊपर दो कोस ऊँची जल की वेला का बढ़ना और उसके परिणाम स्वरूप लवणसमुद्र के हर एक विभाग में तरंगों लहरों के साथ जंबू-धातकी की जगती की और बढ़ना ''ज्वार'' कहा जाता है और शांत होने पर ''भाटा''• कहा जाता है।[१]

प्रश्न = लवणसमुद्र में होते ''ज्वार-भाटा'' के साथ यहाँ के समुद्रों का क्या सम्बंध हैं ?

उत्तर = यहाँ जो हम समुद्र देखते हैं उसे हम अपनी स्थूल दृष्टि से एक अथाह समुद्र जरूर कह सकते हैं लेकिन लवणसमुद्र की अपेक्षा से बड़ा दिखाई देनेवाला यहाँ के समुद्र तो एक खाडी मात्र है, क्योंकि यहाँ के समुद्र उसी लवणसमुद्र की नहर रूप में आया है, जिसकी विशेष हकिकत हमने पूर्व के प्रकरण ''भरत क्षेत्र में लवणसमुद्र कहाँ से आए ?'' में दी हैं, सो जिज्ञासुवर्ग वहाँ से देख ले...।

★ इस जलवृद्धि को रोकनेवाले नागकुमार निकाय के १,७४,००० वेलंधर - अनुवेलंधर रूप देव होते हैं, श्री संघ के प्रबल पुण्योदय से ही और तथाविध जगत स्वभाव से ही जलवृद्धि वृद्धि पाने से रुक जाती हैं।

• यदि केवल चंद्रकला की हानि-वृद्धि के कारण ही ज्वार-भाटा आता हो तो चन्द्रकला से बिलकुल रहित अमावस की रात्रि को ज्वार का प्रमाण क्यों अधिक हो जाता है ? और तो और अक्षयतृतीया आदि तिथियों के दिन ज्वार के दिनों में चन्द्रकला की वृद्धि का कारण कहाँ रहाँ ? तथा दिन में भी ज्वार भाटा होता है तो उस समय तो चन्द्रकला तो दीखती ही नहीं है तो उसका क्या कारण ? इसलिए विज्ञान की इत्यादि बातें बहुत ही विचारणीय हैं।

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-१४/१५/१६ (४१२ से ४१४) (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२१, श्लोक-६० से १०६

गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार जो पदार्थ पृथ्वी के केन्द्र बिंदु से दूर होता जाय तो उस पर आकर्षण बल कम हो जाता है। यदि चन्द्रमां समुद्र के पानी को अपनी और एक इंच भी आकर्षित करने में सफल हो जाता है तो यह पानी पृथ्वी से दूर हो कर चन्द्रमां के नजदीक आ जाता है। गुरुत्वाकर्षण के नियम के अनुसार पानी जब चन्द्रमां के नजदीक आ जाता है तब उस पर चन्द्रमां का गुरुत्वाकर्षण बल बढ़ता जाता है और पानी अधिक से अधिक चन्द्रमां की और खींचता जाता हैं। चन्द्रमां की गुरुत्वाकर्षण शक्ति यदि वास्तव में पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण की शक्ति से अधिक है, तो पृथ्वी का समस्त पानी खीच कर चन्द्रमां के पास पहुँच जाना चाहिए।

धातकीखंड द्वीप

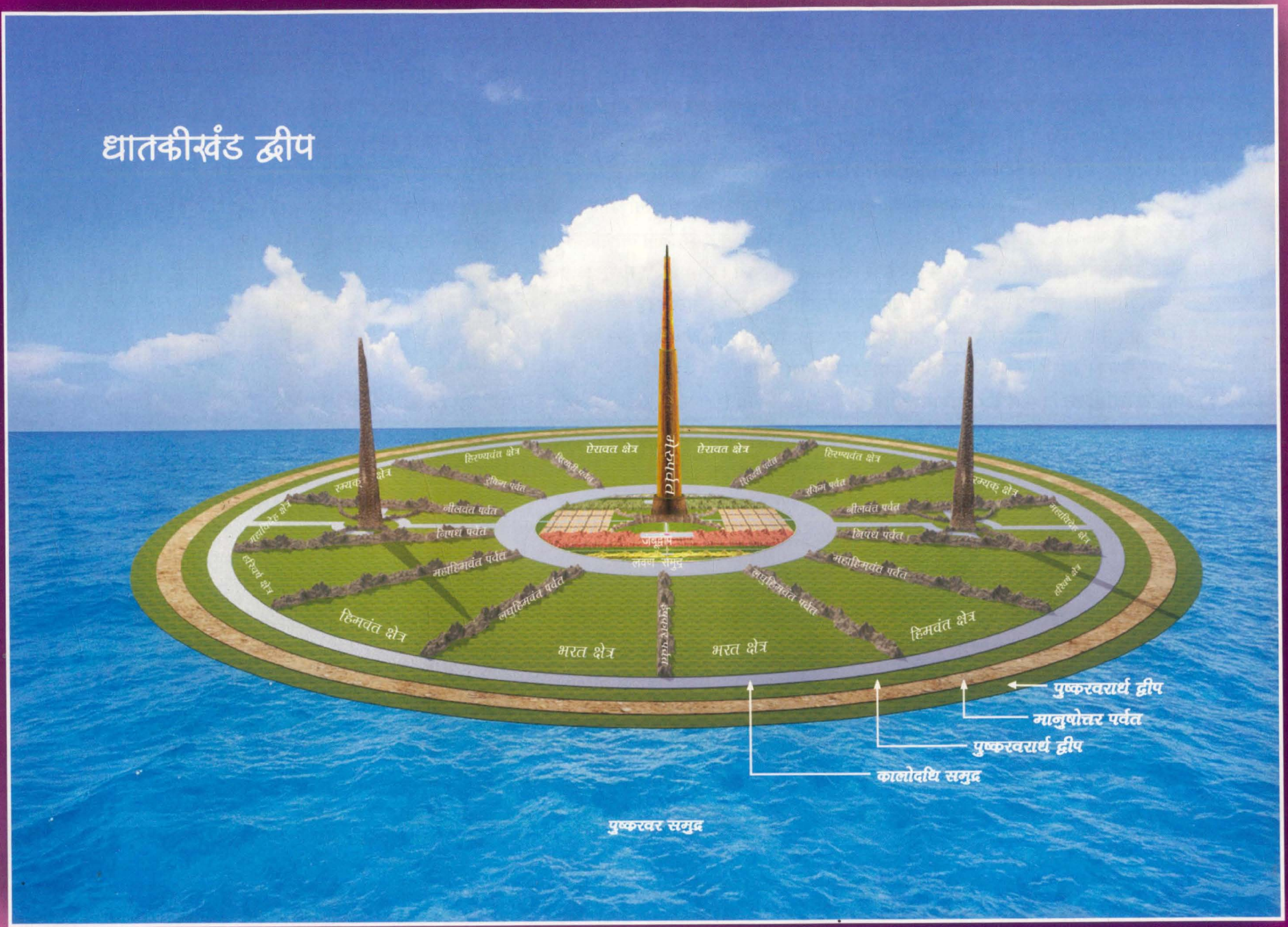
ऐरावत क्षेत्र
ऐरावत क्षेत्र
हिरण्यवंत क्षेत्र
हिरण्यवंत क्षेत्र
शिखरी पर्वत
शिखरी पर्वत
रुक्मि पर्वत
रुक्मि पर्वत
नीलवंत पर्वत
नीलवंत पर्वत
निषध पर्वत
निषध पर्वत
महाहिमवंत पर्वत
महाहिमवंत पर्वत
लघुहिमवंत पर्वत
लघुहिमवंत पर्वत
हिमवंत क्षेत्र
हिमवंत क्षेत्र
भरत क्षेत्र
भरत क्षेत्र
जंबूद्वीप
लवण समुद्र
कालोदधि समुद्र
पुष्करवर समुद्र
पुष्करवरार्ध द्वीप
मानुषोत्तर पर्वत
पुष्करवरार्ध द्वीप
कालोदधि समुद्र

धातकीखंड.....

- समग्र लोक के ३ विभाग हैं। उसमें भी तिर्च्छालोक में असंख्यद्वीप-समुद्र आये हुए हैं। उसमें भी अढाईद्वीप के अंदर ही मनुष्यों की बस्ती हैं और कहीं भी नहीं। इस अढाईद्वीप में (१) जंबूद्वीप (२) धातकीखंड और (३) पुष्करवरार्धद्वीप... गिने जाते हैं।
- लवणसमुद्र के चारों तरफ से घिरा हुआ वृत्त-वलयाकार संस्थान में रहा हुआ यह धातकीखंडद्वीप हैं। इसका विस्तार ४ लाख योजन का है। तथा इस द्वीप के दो विभाग हैं (१) पूर्वार्ध धातकीखंड (२) पश्चिमार्ध धातकीखंड।
- दो विभाग होने से यहाँ पर भरतादि क्षेत्र तथा पर्वत-नदी आदि सर्व एक ही नाम के दो-दो क्षेत्र-पर्वत-नदी इत्यादि हैं जैसे कि १२ वर्षधर पर्वत, १४ महाक्षेत्र, २ मेरुपर्वत, ३२ वक्षस्कार पर्वत, ६८ दीर्घ वैताढ्यपर्वत... आदि।
- दो भरत क्षेत्र, दो ऐरावत क्षेत्र तथा दो महाविदेह क्षेत्र इस तरह कुल मिलाकर ६ कर्मभूमि के क्षेत्र हैं।
- विजयादि ४ दरवाजे, धातकीखंड को घेरी हुई जगती, तथा इस जगती में गवाक्षकटक, पद्मवरवेदिका और वनखंड (बगीचा) इत्यादि सर्व जंबूद्वीप के जैसे ही हैं।
- इस धातकीखंड में १२ सूर्य और १२ चंद्र अपने स्व-स्व परिवार सहित चलावस्था में रहे हुए हैं।
- इस धातकीखंड में दोनों बाजु अर्थात् उत्तर और दक्षिण दिशा में आये हुए इक्षुकार (इषुकार) पर्वत से इसके पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध ऐसे दो विभाग पड़ते हैं।
- इस धातकीखंड के पूर्वार्ध और पश्चिमार्ध रूप दो विभाग में जंबूद्वीप में आया हुआ मेरुपर्वत के प्रमाण से न्यून अर्थात् ८५,००० योजन की ऊँचाईवाला १-१ मेरुपर्वत आया हुआ है।
- यहाँ पर पर्वतों-नदियों-द्रहों (सरोवरों) आदि के नाम-प्रमाण-संख्यादि सर्व जंबूद्वीप से द्विगुण हैं।
- यहां पर तीर्थंकर-चक्रवर्ती-बलदेव-वासुदेवादि की संख्या भी जंबूद्वीप से द्विगुण-द्विगुण जाननी।
- इस धातकीखंड की लवणसमुद्र की तरफ अभ्यंतर परिधि-लवणसमुद्र की बाह्य परिधि के समान १५,८१,१३९ योजन में कुछ न्यून है तथा मध्यम परिधि २८,४६,०५० योजन से अधिक और बाह्य परिधि अर्थात् कालोदधिसमुद्र के पास ४१,१०,९६१ योजन में कुछ न्यून हैं।
- इस द्वीप में आये हुए दोनों इक्षुकार पर्वत ५०० योजन ऊँचे, १००० योजन चौड़े और ४,००,००० योजन लंबे हैं।
- इस धातकीखंडद्वीप में जगह-जगह पर धातकीवृक्ष के अर्थात् धावडी के बहुत वन हैं तथा इस द्वीप के अधिपति देव (अधिष्ठायक-स्वामी देव) पूर्वार्द्ध के "सुदर्शन" और पश्चिमार्द्ध के "प्रियदर्शन" जो जंबूवृक्ष समान धातकी और महाधातकी नाम के दो महावृक्षों पर रहते हैं। (जिस तरह जंबूवृक्ष के बहुत वन और अनादृत नामक देव का निवासभूत शाश्वत जंबूवृक्ष के उपर से प्रथम द्वीप का नाम जंबूद्वीप पड़ा हैं) ठीक उसी तरह इस द्वीप का नाम भी पूर्वोक्त कारणों से धातकीखंड पड़ा है अथवा यह नाम तीनों काल में एक समान से शाश्वत नाम है।[१]

★ ता.क. = धातकीखंड के समान ही पुष्करवरार्ध का स्वरूप जाने..... मात्र माप-प्रमाण में फर्क हैं।

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२, सूत्र-१४/१५/१६ (४१२ से ४१४) (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२१, श्लोक-६० से १०६

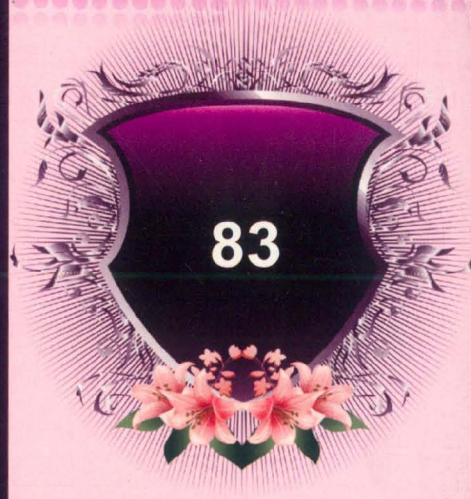

आज के विज्ञान जगत में आत्म-अस्तित्व पर भी विश्वास प्रगट किया जाने लगा है। विश्व के महान वैज्ञानिक अपनी शोध-खोज के आधार पर आत्म-अस्तित्व स्वीकार करने लगे है। जिस तरह ज्ञानोदय, अक्टूंबर-१९५२ में लिखा है - "वह युग निश्चय ही आयेगा, जब विज्ञान अज्ञात-अज्ञेय के सभी बंद दरवाजे खोलने में समर्थ होगा। जितना हम पहले सोचते थे, ब्रह्मांड उससे भी अधिक आध्यात्मिक तत्त्वों पर टिका है। सच तो यह है कि हम ऐसे आध्यात्मिक जगत में रहते है जो भौतिक संसार से अधिक महान और सशक्त है।"

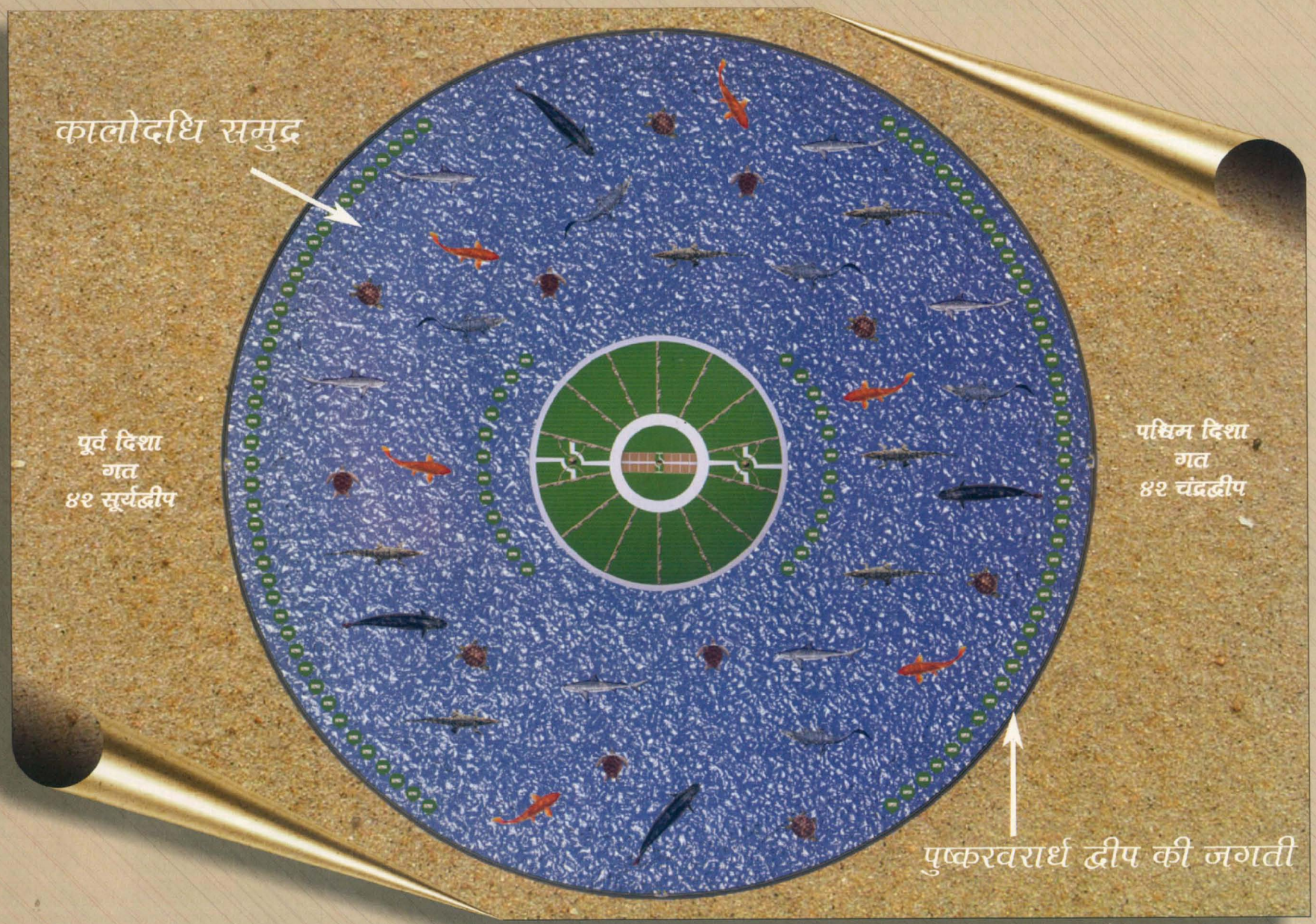
कालोदधि समुद्र
पूर्व दिशा
गत
४२ सूर्यद्वीप
पश्चिम दिशा
गत
४२ चंद्रद्वीप
पुष्करवरार्ध द्वीप की जगती

कालोदधि समुद्र.....

- धातकीखंड द्वीप के बाद में आता है... कालोदधि समुद्र...।
- वृत्त एवं वलयाकार संस्थान में स्थित कालोदधि समुद्र धातकीखंडद्वीप को चारों ओर से घेरकर स्थित है।
- यह समुद्र समचक्राकार में स्थित है, विषम चक्राकार में स्थित नहीं है।
- इस कालोदधि समुद्र की चक्राकार चौड़ाई ८,००,००० योजन की कही गई है। तथा... ९१ लाख, ७० हजार, ६०५ योजन से अधिक इसकी परिधि कही गई हैं।
- यह समुद्र एक पद्मवरवेदिका और वनखंड से चारों और से घिरा हुआ हैं।
- इस कालोदधि समुद्र के ४ द्वार कहे गये हैं(१)विजय(२)वैजयंत(३)जयंत और(४)अपराजित।
- एक द्वार से दूसरे द्वार के मध्य का व्यवस्थित अन्तर २२ लाख, ९२ हजार, ६४२ योजन और उपर तीन कोश (३ गाउ) का कहा गया है।
- कालोदधि समुद्र के पूर्वान्त में पुष्करद्वीप के पूर्वार्ध के पश्चिम में और सीतोदा महानदी के ऊपर कालोदधि समुद्र का ''विजय'' नामक द्वार कहा गया है।
- कालोदधि समुद्र के दक्षिणान्त में और पुष्करवरद्वीप के दक्षिणार्ध के उत्तर में... ''वैजयंत'' नाम का द्वार कहा गया है।
- कालोदधि समुद्र के पश्चिमांत में और पुष्करवरार्ध के पश्चिमार्ध के पूर्व में और सीता महानदी के ऊपर ''जयंत'' नाम का द्वार कहा गया हैं।
- कालोदधि समुद्र के उत्तरार्ध के अन्त में और पुष्करवरद्वीप के उत्तरार्ध के दक्षिण में ''अपराजित'' नाम का द्वार कहा गया है।
- इस समुद्र का नाम कालोदधि पड़ने का कारण-इस समुद्र का पानी स्वादिष्ट, पुष्टिकारक, श्रेष्ठ, कृष्ण अर्थात् काले माष (उडद) की राशि जैसे वर्णवाला एवं प्राकृतिक पानी जैसे रसवाला कहा गया है।(यहाँ प्राकृतिक पानी अर्थात् अतिशय निर्मल, सुंदर और हल्का याने आहार को शीघ्र पचावे वैसा और अमृत जैसी मिठासवाला पानी समझें।)
- तथा इस कालोदधि समुद्र के अधिष्ठायक अधिपति-स्वामी देव ''काल'' और ''महाकाल'' नामक दो देव हैं जो बड़ी समृद्धि के मालिक होते हुए एक पल्योपम की आयुष्य को धारण करते हैं इसी कारण से इस समुद्र का नाम कालोदधि समुद्र पड़ा है, अथवा यह नाम शाश्वत जानें...।
- इस कालोदधि समुद्र में ९,००,००० (नौ लाख) कुलकोटि मत्स्यादि होते हैं तथा इनके माप-प्रमाण उत्कृष्ट से ७०० योजन तक का कहा गया हैं। इस तरह समुद्र के पानी के अन्दर लवणसमुद्र के समान पानी का ऊँचा शिखर नहीं है, ज्वार-भाटा भी नहीं है, पातालकलशादि भी नहीं है, सुंदर मेघ से बरसते पानी के समान मधुर पानी वाला है तथा शांत-प्रशांत है।
- धातकीखंड से पूर्व तथा पश्चिम दिशा में १२-१२ हजार योजन की दूर पर कालोदधि समुद्र में धातकीखंड संबंधी १२ सूर्य - १२ चंद्र द्वीप आए हुए हैं। तथा इसी तरह पुष्करद्वीप से भी पूर्व-पश्चिम दिशा में १२-१२ हजार योजन जाने के बाद कालोदधि समुद्र में कालोदधि समुद्र संबंधी ४२-४२ सूर्य-चंद्र के द्वीप हैं। तथा इन कालोदधि समुद्र में ४२ सूर्य और ४२ चन्द्र है, ग्रह ३,६९६ है, नक्षत्र १,१७६ है तथा २८,१२,९५० कोडाकोडी प्रमाण तारा समूह हैं।[१]

(१) (A) अनुयोगद्वार सूत्र (B) जीवाजीवाभिगम, पडि.-३, (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२२, श्लोक-२८३ से २९२

सभी भारतीय विचार धाराएं "शब्द" को आकाश का गुण मानती रही है, जबकि जैनदर्शन उसे पुद्गल मानता हैं। जैनदर्शन की इस विलक्षण मान्यता को विज्ञानने पुष्ट कर दिया है और अब यह पाठ्य पुस्तकों में भी उतर रही हैं।

The Jain account of sound is a physical concept. All other Indian systems spoke of sound as a quality of space. But Jainism explains its relation with material particles as a result of concision of atmospheric-molecules. To prove this The Jain Thinkers employed arguments which are new generally found the test book of physics.

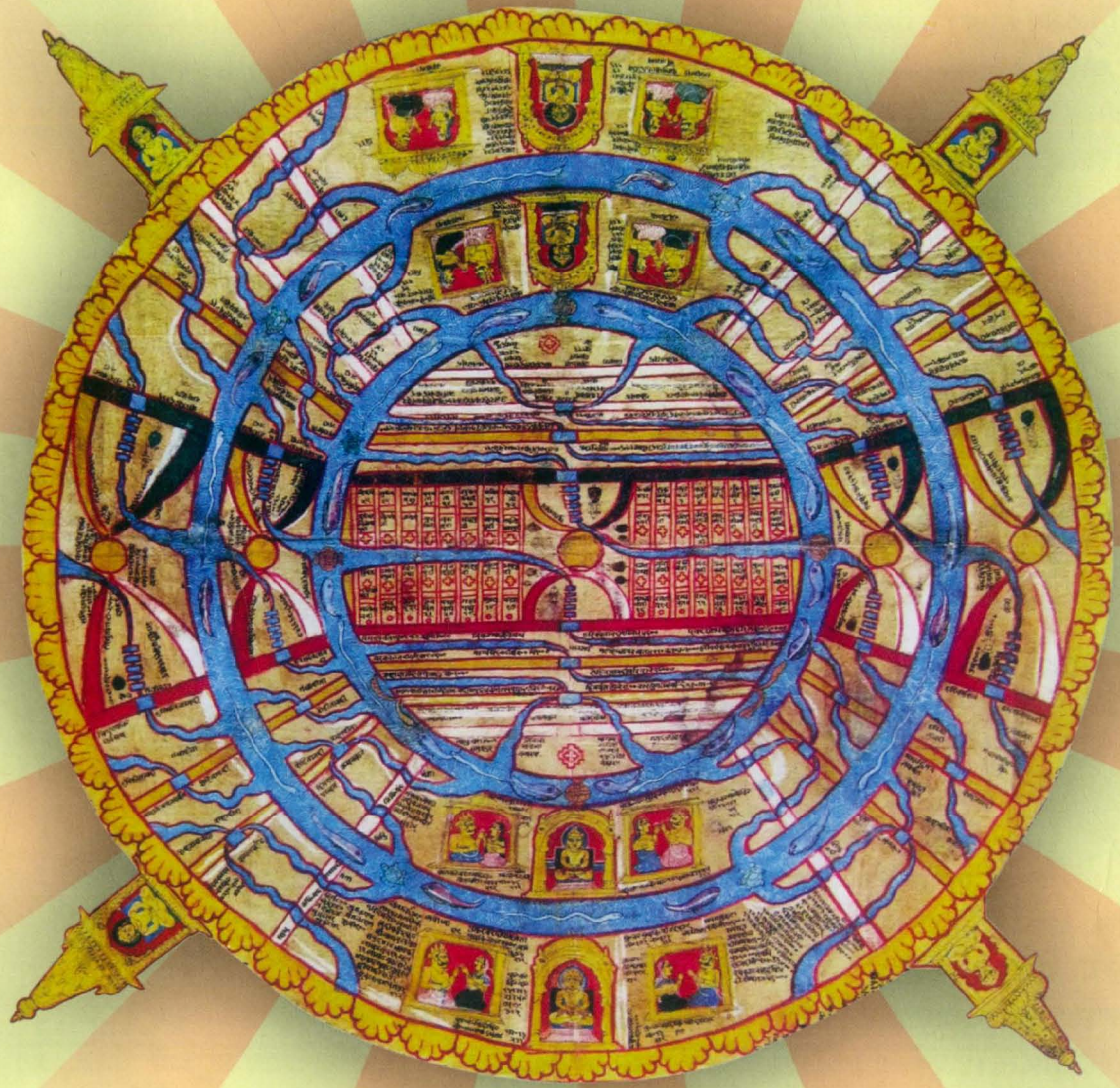

सुन्दर ऐसे पुष्कर (कमल विशेष) से यह द्वीप शोभायमान होता है, इसी कारण यह द्वीप पुष्करवर द्वीप के नाम से जाना जाता हैं। सूक्ष्म अर्थ के जानकार महापुरूषोंने आगम में इस द्वीप का चक्रवाल विस्तार सोलह लाख (१६,००,०००) योजन कहाँ हैं।

धातकीखंड की तथा पुष्करवरार्ध की रचना समान है। धातकीखण्ड के ही तुल्य पुष्करवरार्ध में भी दो (२) इषुकार पर्वत हैं। ये दक्षिण और उत्तर में लम्बे हैं। कालोदधि तथा पुष्करवर समुद्र के जल का स्पर्श करनेवाले हैं एवं ५०० योजन ऊँचे हैं। इस पुष्करवरार्ध के भी दो भाग है (१) पूर्व पुष्करवरार्ध तथा (२) पश्चिम पुष्करवरार्ध। धातकीखण्ड के तुल्य इनमें भी रचना है। जंबूद्वीप की अपेक्षा यहाँ पर भी क्षेत्रों तथा पर्वतों की संख्या दुगुनी होती है - जैसे कि जंबूद्वीप में एक भरत क्षेत्र है तो पुष्करवरार्ध में दो भरत क्षेत्र है, इसी तरह अन्य क्षेत्रों का तथा पर्वतों का प्रमाण भी जानना।

धातकीखण्ड के समान यहाँ पर भी दो मेरुपर्वत हैं, जो ८४,०००-८४,००० योजन ऊँचे हैं। वर्षधर पर्वत भी ४००-४०० योजन ऊँचे हैं। यहाँ सब कुछ धातकीखण्ड के समान ही समझना। इस द्वीप के मध्यभाग में मानुषोत्तर नाम का एक पर्वत है जो कंकण (बंगडीं) के समान गोल है। इसने चारों तरफ से संपूर्ण दिशाओं में पड़े हुए मनुष्यक्षेत्र को घेर कर रखा हैं। इसलिए इस निमित्त के कारण से ही पुष्करवर द्वीप के दो भाग हो गये हैं। धातकीखण्ड में जितने क्षेत्र तथा पर्वत हैं, इतने ही क्षेत्र तथा पर्वत पुष्करवरद्वीप के अर्ध विभाग में हैं। परंतु विशेष यह है कि धातकीखंड से पुष्करवरार्ध में रहे हुए सभी क्षेत्र-वर्ष-वर्षधर पर्वतादि समान आकार / ऊँचाई / नीचाई / विस्तार / लंबाई आदि को धारण किए हुए रहे हैं।

१-जंबूद्वीप, १-धातकीखण्ड और १/२ पुष्करवरद्वीप, ये सब मिलाकर अढाईद्वीप कहलाते हैं। इनमें कुल ५ मेरुपर्वत, ३० वर्षधर पर्वत, और ३५ वर्ष अर्थात् क्षेत्र हैं। इनमें ५ भरत, ५-ऐरावत और ५-महाविदेह मिलकर १५ कर्मभूमि कहलाती है, यहाँ पर असि-मसि-कृषि इत्यादि कर्म का व्यापार (व्यवहार) होता है। अथवा कर्मरूपी मल को सर्वथा दूर करके मुक्तिधाम (मोक्ष) प्राप्त करने के लिए यही योग्य भूमि हैं। क्योंकि अन्य स्थलों से मुक्ति का अभाव है, इसीलिए कर्मों से सर्वथा मुक्त होने के लिए यहीं ''कर्मभूमि'' कहलाती है।

उक्त ३५ क्षेत्रों के ५ महाविदेह क्षेत्रों में ५-देवकुरु, ५-उत्तरकुरु तथा १६० विजय हैं। ५६ अंतर्द्वीप केवल लवणसमुद्र में ही है। पुष्करवरद्वीप में जो मानुषोत्तर पर्वत है जो पुष्करवरद्वीप के मध्य में किल्ले की भांति गोलाकार खड़ा है, तथा मनुष्यलोक को घेरे हुए हैं। जंबूद्वीप, धातकीखण्ड और आधा पुष्करवरद्वीप ये अढाई द्वीप तथा लवणसमुद्र एवं कालोदधि समुद्र... बस इतना ही क्षेत्र ''मनुष्यक्षेत्र वा मनुष्यलोक'' कहलाता है।[१]

इस पुष्करवरार्ध द्वीप में ७२-चन्द्र, ७२-सूर्य, ६,३३६-ग्रह, २,०१६-नक्षत्र है एवं ४८,२२,२०० कोडाकोडी तारा का समूह है अर्थात् ४८,२२,२०,००,००,००,००,००,००,००० मतलब के ४८,२२२ के उपर १६ शुन्य हैं।

(१) (A) जीवाजीवाभिगम, पडि.-३, (B) धर्मसंग्रह-सटीक, अधिकार-२ (C) ललितविस्तरा-वृत्ति

85

जैनधर्म में त्याग को जितना महत्त्व दिया जाता है। उतना महत्त्व अन्य कोई धर्मों में नहीं है। शांती, सहिष्णुता, अहिंसा और जीवदया की भावना जैनधर्म के द्वारा भारतीय संस्कृति को सबसे उपर लाकर रख दिया है।

श्री श्री रविशंकरजी महाराज

We are beginning to appreciate better and more thoroughly. How great is the range of our ignorance.

अर्थात् अपने अज्ञान का विस्तार कितना बडा है, वह अब हम बहुत ही अच्छी रीत से एवं स्पष्ट रूप से समझने लगे है।

एक परदेशी डॉ. वैज्ञानिक

जैनधर्म कोई निश्चित जाति अथवा संप्रदाय का धर्म नहीं, परंतु वह तो जीवमात्र का धर्म है, वह अंतराष्ट्रीय और समग्र विश्व का धर्म है।

डॉ. कालीदास नाग,
जैन गेझेट

अढाई द्वीप
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
जंबूद्वीप
लवण समुद्र
घातकीखंड
घातकीखंड
कालोदधि समुद्र
पुष्करवरार्ध द्वीप
पुष्करवरार्ध द्वीप
मानुषोत्तर पर्वत
मानुषोत्तर पर्वत

मानुषोत्तर पर्वत.....

विश्व में मनुष्यायुष्य और मनुष्यगति नामकर्म के उदय से जो जीव मनुष्यरूप में जन्म धारण करता है, उसे मनुष्य कहते हैं। इसलिए यह मनुष्य पर्याय जन्म की अपेक्षा ही कही जाती है, न कि अन्य किसी कारण से। पुष्करवरद्वीप में जो मानुषोत्तर नामक पर्वत है, वह चूड़ी के समान गोल तथा पुष्करवर द्वीप के मध्य शहर पनाह के समान घिरा हुआ है। इसी कारण द्वीप के दो विभाग हो गये है। मनुष्यों का जन्म मानुषोत्तर पर्वत के भीतर के क्षेत्र में ही होता है, बाहर नहीं होता। मनुष्यों का निवास-स्थान होने के कारण ही इस पर्वत का नाम मानुषोत्तर रखा गया है।[१]

इसके भीतरी विभाग में अर्ध पुष्करवरद्वीप, कालोदधिसमुद्र, धातकीखण्ड, लवणसमुद्र और जंबूद्वीप क्रमशः यथाक्रम से हैं। इन क्षेत्रों में मनुष्यों का जन्म तथा मरण होता है। इसलिए इसे ''मनुष्यलोक'' कहते हैं। इसकी सीमा-मर्यादा रखनेवाला मानुषोत्तर पर्वत हैं। इस पर्वत के परे (बाद) जितने क्षेत्र आये हैं, उनमें मनुष्यों का जन्म या मरण दोनों में से एक भी नहीं होता है। वहाँ पर तो सिर्फ विद्यासंपन्न मुनियों का और वैक्रियलब्धिवाले मनुष्यों का ही आवागमन होता है। किन्तु उनका जन्म या मरण कभी नहीं होता है। अर्थात् उनके जन्म-मरण का स्थान ''मनुष्यलोक'' ही है।

उपर कही गई बात का सारांश यही है कि - मानुषोत्तर पर्वत के पहले मनुष्यों का वास है। विश्व में भले द्वीप और समुद्र असंख्य हो, किन्तु जन्म से मनुष्यों के निवास मानुषोत्तर पर्वत के पहले जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड और पुष्करवरद्वीप का अर्ध भाग मिलाकर अढाईद्वीप में ही हैं। तथा तिर्यंच प्राणीयों का वास अढाईद्वीप उपरान्त बाहर के प्रत्येक द्वीप-समुद्र में भी है।

अढाईद्वीप के बाहर मनुष्यों का गमनागमन होता हैं। जैसे कि - विद्याधर और चारण मुनि भगवंत नंदीश्वरद्वीप तक जाते है। किसी के द्वारा अपहरण से भी मनुष्य अढाईद्वीप के बाहर ले जाये जाते हैं। किन्तु वहाँ पर कभी भी मनुष्य का जन्म या मरण नहीं होता है। इसलिए पुष्करवर के अर्ध भाग के बाद आये हुए वलयाकार पर्वत का नाम मानुषोत्तर पर्वत है। यहाँ पर विशेष यह हैं की व्यवहार, सिद्ध, काल, अग्नि, चन्द्र और सूर्यादि का परिभ्रमण, उत्पातसूचक गान्धर्वनगर इत्यादिक चिह्न प्रमुख पदार्थ इस अढाईद्वीप के बाहर नहीं होते है।[२] तो चलिए मित्रो ! अब आपको इस मानुषोत्तर पर्वत के विषय में भी कुछ प्रमाणादि बताया जा रहा हैं।

क्रम	विषय	प्रमाणादि
१	ऊंचाई	१,७२१ योजन
२	भूमि में अवगाढ	४३० यो. १ गाउ
३	पृथ्वी के ऊपर	१,०२२ योजन
४	मध्य विस्तार	७२३ योजन
५	शिखर पर का विस्तार	४२४ योजन
६	कूट संख्या	२०

क्रम	विषय	प्रमाणादि
७	अभ्यंतर परिधि	१,४२,३०,२४९ योजन
८	बाह्य परिधि	१,४२,३६,७१३ योजन
९	मध्यपरिधि	१,४२,३४,८२३ योजन
१०	शिखर पर की परिधि	१,४२,३२,९३२ योजन
११	किसका बना हुआ है	जांबुनद सुवर्णमय
१२	आकार	सिंहनिषादी अथवा अर्ध जव जैसा

(१)(A) सर्वार्थसिद्धि, ३/३५/२२८/१० (B) राजवार्तिक-३/३५ (१९७/३०) (२) (A) बृहत्क्षेत्रसमास, भाग-२ सूत्र (५८१ से ५८७) (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२३, श्लोक-४ से ४२

According to the modern scientists, the Moon reflects the sun light. on the basis of this hypothesis, they state that the moon eclipses due to the obstade of the earth shadow but appearance of the sun on the horizon even at the lanar eclipse dismisses this theory. In that case some black object may be responsible for the lunar eclipse which passes on the face of the moon and covers the moon light. The lunar eclipse due to this black object proves that the moon has its own light, being obst-ructed by the black object.

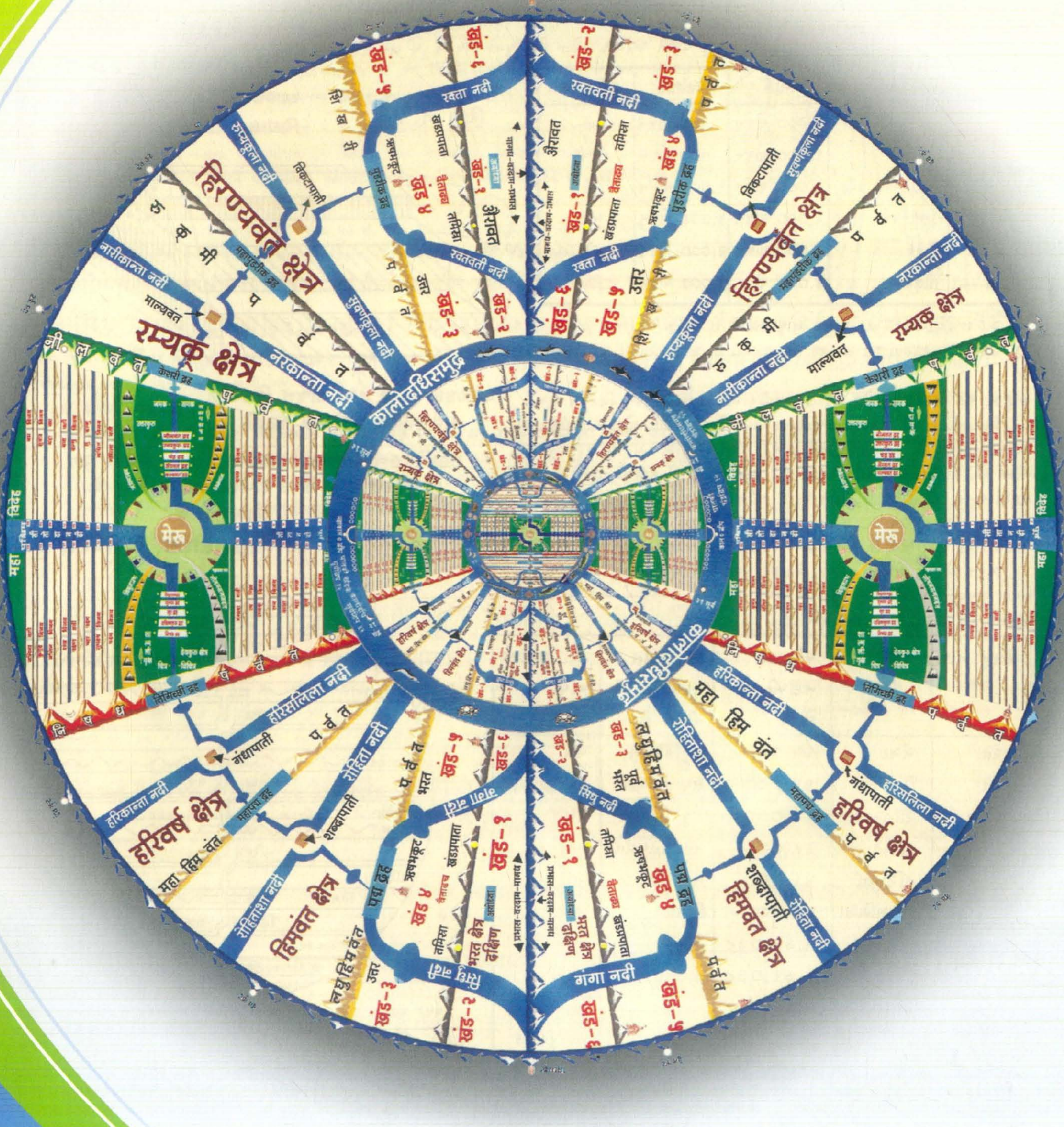
कालोदधिसमुद्र
हिरण्यवंत क्षेत्र
रम्यक क्षेत्र
हरिवर्ष क्षेत्र
हिमवंत क्षेत्र
मेरु
विदेह
गंगा नदी
सिंधु नदी
रक्ता नदी
रक्तवती नदी
नरकान्ता नदी
नारीकान्ता नदी
हरिकान्ता नदी
हरिसलिला नदी
रोहिता नदी
रोहितांशा नदी
सुवर्णकूला नदी
रूप्यकूला नदी
विकटापाती
माल्यवंत
गंधापाती
शब्दापाती
केसरी द्रह
तिगिंछी द्रह
पद्म द्रह
महा हिम वंत
पर्वत

अढाईद्वीप.....

१४ राजलोक के जो ३ विभाग है, उसमें आये हुए तिर्च्छालोक (मध्यलोक) में यह "अढाईद्वीप" आते है।

तिर्च्छालोक में असंख्य द्वीप-समुद्र आये हुए हैं, परंतु मानववस्ती और काल का अस्तित्व मात्र अढाईद्वीप में ही है।

इस अढाईद्वीप को "मनुष्यक्षेत्र" अथवा "समयक्षेत्र" वगैरह के नामों से भी पहचाना जाता है।

इस अढाईद्वीप का प्रमाण ४५ लाख योजन है, वह इस तरह - १ लाख योजन का जंबूद्वीप + उसको घेरकर २ लाख योजन का लवणसमुद्र + उसको घेरकर ४ लाख योजन का धातकीखंड और + उसको घेरकर ८ लाख योजन का कालोदधिसमुद्र + उसको घेरकर ८ लाख योजन का अर्धपुष्करवरद्वीप....इस तरह १ लाख योजन का जंबूद्वीप और उसके दोनों बाजू २ + ४ + ८ + ८ = २२ + २२ = ४४ इस तरह कुल ४५ लाख योजन का अढाईद्वीप है।[१]

उपरोक्त जितना प्रमाण अढाईद्वीप का है उतना ही "सिद्धशिला" का है। कारण के मनुष्यक्षेत्र में से ही जीव (मनुष्य) मोक्ष में जाते हैं और मोक्ष में जानेवाला आत्मा समश्रेणी में ही ऊर्ध्वगति करते हैं, इसलिए दोनों का प्रमाण ४५ लाख योजन कहा गया है।

इस अढाईद्वीप में ज्योतिष रूप सूर्य-चंद्रादि ५ है, वह सभी चलावस्था में है... इसी कारण यहाँ दिन-रात रूप काल का अस्तित्व है और अढाईद्वीप के बाहर सूर्य-चंद्रादि स्थिर होने से वहाँ दिन-रातादि (मास-वर्ष आदि) रूप काल का अस्तित्व नहीं है।

इस अढाईद्वीप में १३२ सूर्य और १३२ चंद्र स्व-स्व परिवार सहित भ्रमण करते हैं तथा १-सूर्य, १ चंद्र के परिवार में ८८ नक्षत्र, २८ ग्रह और ६६,९७५ कोडाकोडी ताराओं का परिवार है।

इस अढाईद्वीप में १५ कर्मभूमि, ३० अकर्मभूमि और ५६ अंतर्द्वीप इस तरह कुल मिलाकर १०१ क्षेत्र होते हैं। तथा ३० वर्षधर पर्वत, ४ इक्षुकार पर्वत, ५ मेरुपर्वत, १००० कंचनगिरि पर्वत, १७० दीर्घ वैताढ्यपर्वत, २० वृत्त वैताढ्य पर्वत, २० गजदंत पर्वत, ८० वक्षस्कार पर्वत, १० यमक-समक पर्वत, १० चित्र-विचित्र पर्वत, और लवणसमुद्र में ४ वेलंधर + ४ अनुवेलंधर पर्वत इस तरह कुल मिलाकर १,३५७ बड़े पर्वत हैं। तथा ३५० बड़ी नदियाँ और ८० द्रह (३० वर्षधर पर्वतों पर और ५० कुरुक्षेत्रों के सरोवर) हैं। और भी जानने जैसी बातें... इस अढाईद्वीप में पांच मेरुपर्वत के पांडुकवन में रही हुई २० अभिषेकशीला, शीला पर स्थित जन्माभिषेक के लिए ३० सिंहासन, १७० ऋषभकूट (जिस पर चक्रवर्ती षट्खंड विजय दरम्यान स्वनाम अंकित करता है।), १७० कोटिशिला (जिसे वासुदेव ही उठा सकते है) १७० - मूल अयोध्या नगरी, ३०४ - वैताढ्य की (तमिस्र-खंडप्रपाता) गुफा, १५० - मागध-वरदाम-प्रभासतीर्थ, ५ भरत + ५ ऐरावत + ५ महाविदेह के कुल क्षेत्र १७०, अब १ क्षेत्र में ३२,००० देश तो अढाईद्वीप में कुल ५४,४०,००० देश, जंबू आदि बडे (पृथ्वीकायमय) वृक्ष-१०, अंतरनदी-६०, दीर्घ वैताढ्य की (सर्व विजय में २ विद्याधर की, २-आभियोगिक देवों की मिलकर ४-४ श्रेणी गिनते) ६८० श्रेणी वगैरह जानना।

इस अढाईद्वीप में कुल ३,१७९ शाश्वत चैत्य और उसमें ३,८१,४८० ऋषभादि प्रतिमाजी बिराजमान है।

इस अढाईद्वीप में सर्वकाल में जघन्य से २० तीर्थंकर विहरमान होते हैं और कोईक (अजितनाथ भगवान के) काल में उत्कृष्ट से १७० भी होते हैं।

इस अढाईद्वीप को घेरकर मानुषोत्तर पर्वत रहा हुआ है, इसके बाहर कोई भी मनुष्यों की वस्ती नही है इसलिए मनुष्यक्षेत्र की मर्यादा करता होने से इसे मानुषोत्तर पर्वत कहा जाता है।[२]

(१) चैत्यवंदन महाभाष्य-६५४/५५/५६ (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२३, श्लोक-१९० से २७७

सन् १९६१ में - पश्चिम वर्जीनिया के ग्रीन बैंक नेशनल रेडियो आब्जर्वेटरी में एक सम्मेलन हुआ था। यहाँ सभी वैज्ञानिक एक "ग्रीन बैंक फार्मूला" पर एकमत हो गये कि केवल अपनी आकाश - गंगा में ही पाँच करोड सभ्यताएँ मौजूद हैं, जो आपसी सम्पर्क के लिए कोशिश कर रही हैं।

प्रसिद्ध मानव-विज्ञान शास्त्री आशले मौंटेगु ने विश्वास -पूर्वक कहा है कि - दुसरे ग्रहों के जीव निश्चय ही हम से ज्यादा विकसित और बुद्धिमान है।

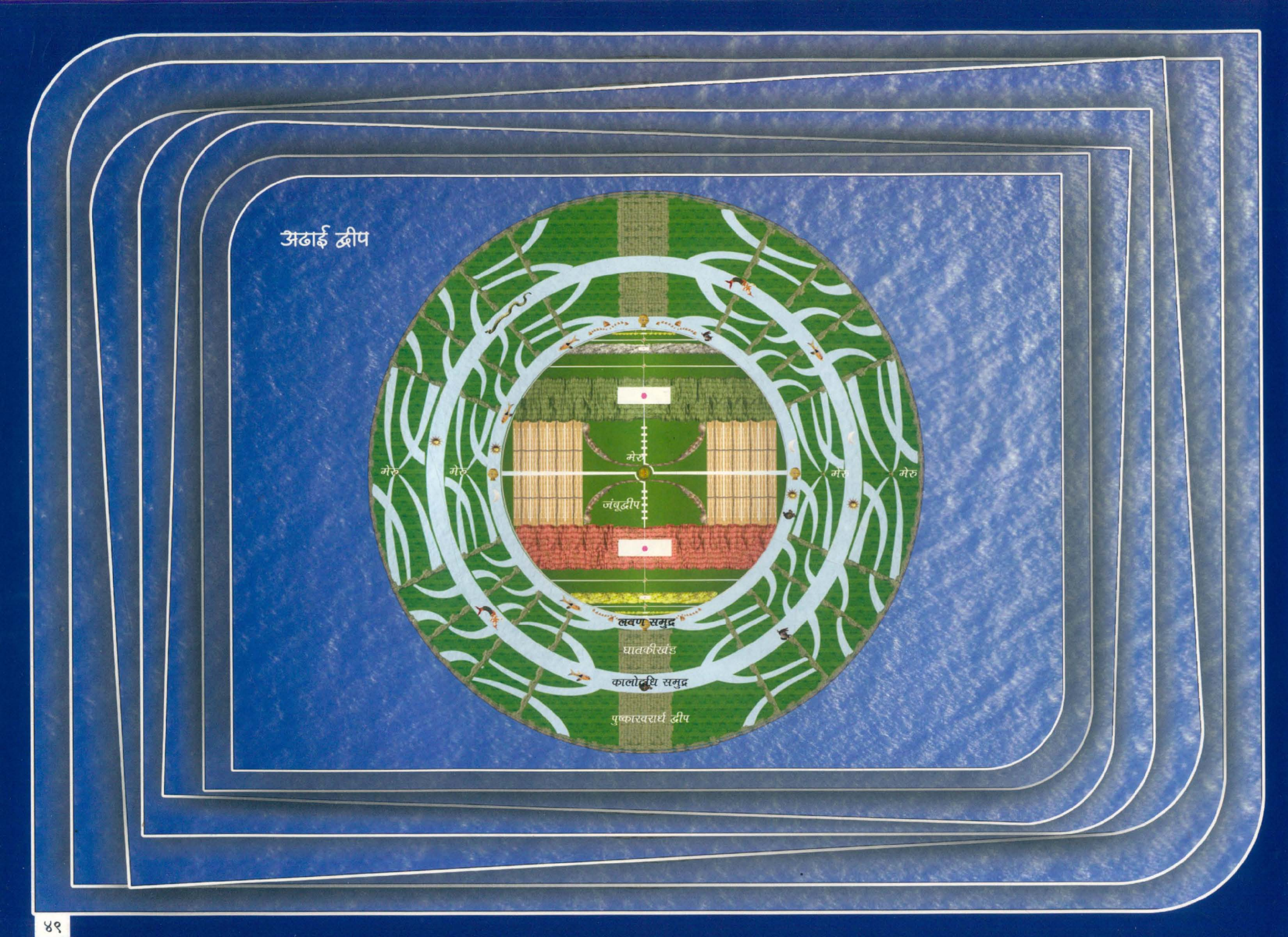
अढाई द्वीप
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
जंबूद्वीप
लवण समुद्र
घातकीखंड
कालोदधि समुद्र
पुष्करवरार्ध द्वीप

अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - १)

क्रम	शाश्वत पदार्थों के नामादि	जंबूद्वीप में	धातकीखंड में	पुष्करवरार्ध में	कुल
१	वर्षधर पर्वत (मेरु सहित)	७	१४	१४	३५
२	वर्षधर क्षेत्र	७	१४	१४	३५
३	पांच मेरुपर्वत के पांडुकवन में रही हुई शिलाएँ	४	८	८	२०
४	शिला पर स्थित जन्माभिषेक के लिए सिंहासन	६	१२	१२	३०
५	शाश्वते कुल पर्वत (लवणसमुद्र के साथ में)	२७९	५४०	५४०	१,३५९
६	पर्वत ऊपर के कूट (शिखर)	४६७	९३४	९३४	२,३३५
७	ऋषभकूट (जंबूद्वीप के भरतादि क्षेत्रों के चौथे खंड में आया हुआ जहाँ पर चक्रवर्ती स्वयं का नाम अंकित करता है)	३४	६८	६८	१७०
८	कोटिशिला (जिसे मात्र वासुदेव ही उठा सकते हैं ।)	३४	६८	६८	१७०
९	वैताढ्य में रही हुई गुफाएँ (तमिस्रा-खंडप्रपाता)	६८	१३६	१३६	३४०
१०	वैताढ्य में रहे हुए बील (भरत- ऐरावत के)[१]	१४४	२८८	२८८	७२०
११	मागध-वरदाम-प्रभास तीर्थ	१०२	२०४	२०४	५१०
१२	भरत-ऐरावत और ३२ विजयों में स्थित ६-६ खंड	२०४	४०८	४०८	१,०२०
१३	६ खंड में कुल ३२,००० देश (तो ३४ में मिलकर...)	१०,८८,०००	२१,७६,०००	२१,७६,०००	५४,४०,०००
१४	मूल अयोध्यानगरी	३४	६८	६८	१७०
१५	२५ १/२ आर्य देश (३२ विजय + भरत + ऐरावत क्षेत्र के मिलकर)	८६७	१,७३४	१,७३४	४,३३५
१६	दीर्घ वैताढ्यपर्वत की ४-४ श्रेणी (२ विद्याधर की, २ आभियोगिक देवों की...)	१३६	२७२	२७२	६८०
१७	बड़े ६ द्रह तथा कुरुक्षेत्र के १० द्रह	१६	३२	३२	८०
१८	बड़े द्रहों में देवी तथा छोटे द्रहों में देव	१६	३२	३२	८०
१९	सर्व महाद्रहों के कमलों में ६-६ वलय	६ द्रहों में-३६	१२ द्रहों में-७२	१२ द्रहों में-७२	३० द्रहों में-१८०

(१) यह बील गंगा-सिंधु-रक्ता और रक्तवती नदी के दोनों किनारों पर वैताढ्य के उत्तर और दक्षिण में मिलकर ७२-७२ होते हैं ।

88

The belief that the earth is static, flat and the sun, the moon, the planets, the constellations, the stars etc. orbit the earth etc. were prevalent in the 15th century and accepted universally when nicholas Copernicus, Johannes ke-ppler and galileo began to propagate baseless beliefs without any scientific base that the earth is round like a ball and orbits the sun. The christian clergymen and the common people too opposed them & refused to accept them.

अढाई द्वीप

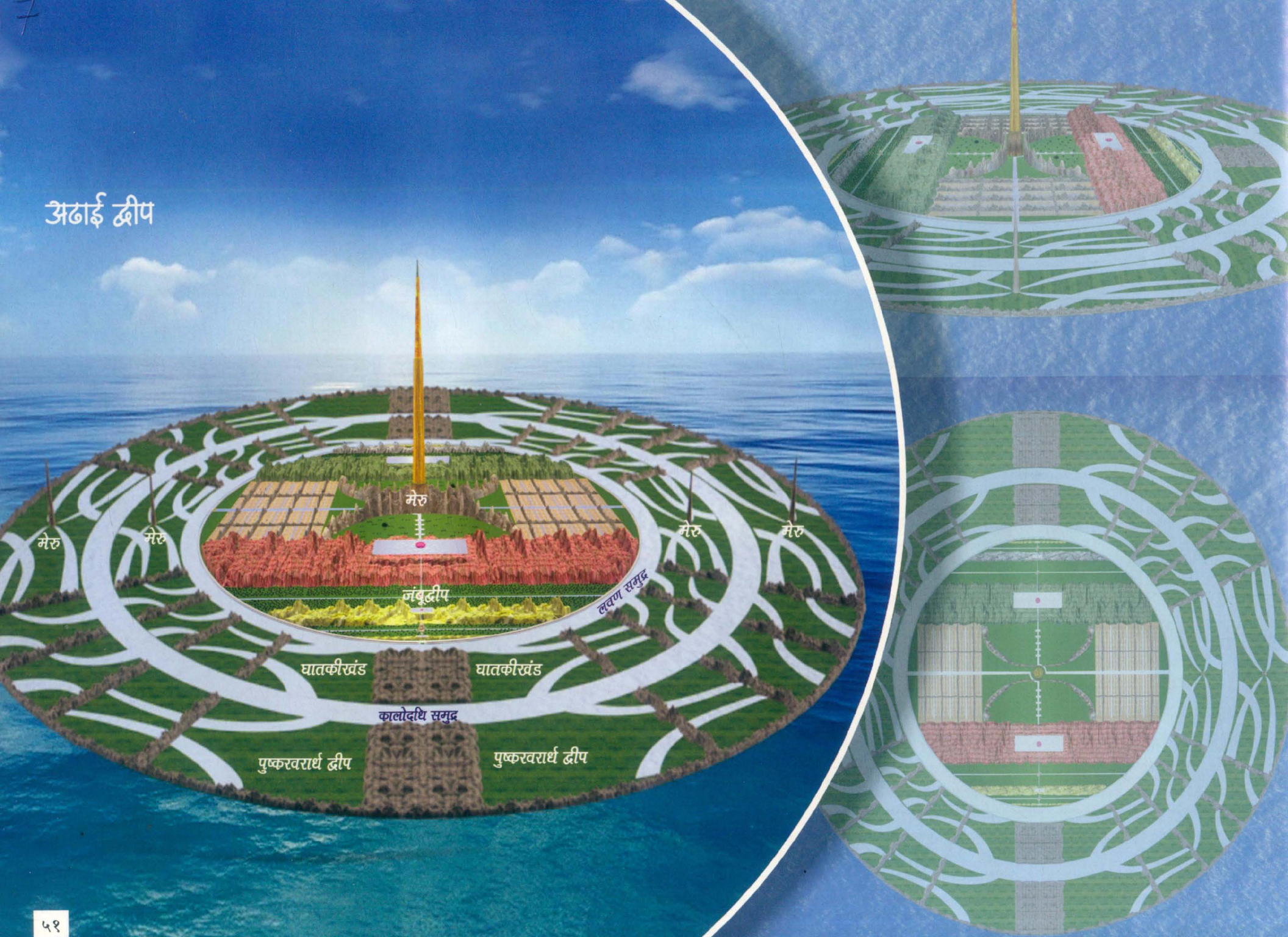
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
जंबूद्वीप
लवण समुद्र
घातकीखंड
घातकीखंड
कालोदधि समुद्र
पुष्करवरार्ध द्वीप
पुष्करवरार्ध द्वीप

अढाईद्वीप में रहे हुए शाश्वत पदार्थों का यंत्र..... (पार्ट - २)

क्रम	शाश्वत पदार्थों के नामादि	जंबूद्वीप में	धातकीखंड में	पुष्करवरार्ध में	कुल
२०	६ वलयों में रहे हुए सर्व कमल...	१,२०,५०,१२०	२,४१,००,२४०	२,४१,००,२४०	३,६१,५०,३६०
२१	गंगा-सिंधु आदि महानदी...	१४	२८	२८	७०
२२	महानदी के प्रपातकुंड	१४	२८	२८	७०
२३	महानदियों की परिवारभूत नदियाँ	१४,५६,०००	२९,१२,०००	२९,१२,०००	७२,८०,०००
२४	जंबू आदि बड़े वृक्ष (पृथ्वीकायमय)	२	४	४	१०
२५	जंबू आदि बड़े वृक्षों के फिरते वलयादि	६-६ वलय	१२-१२ वलय	१२-१२ वलय[१]	६० वलय
२६	सर्व वृक्ष (कुल वृक्ष) संख्या	१,२०,५०,१२०	४,४१,००,२४०	४,८२,००,४८०	८,४३,५०,८४०
२७	अंतर नदी	१२	२४	२४	६०
२८	वक्षस्कार पर्वत	१६	३२	३२	८०
२९	सीता-सीतोदा नदी के उभय बाजु के वनमुख	४	८	८	२०
३०	मेरु संबंधी भद्रशाल-नंदन-सौमनस एवं पांडुकवन	४	८	८	२०
३१	गजदंतगिरि	४	८	८	२०
३२	ईषुकार पर्वत	०	२	२	४
३३	वृत्त वैताढ्य और दीर्घ वैताढ्य पर्वत	४-३४	८-६८	८-६८	२०-१७०
३४	यमक-समक-चित्र-विचित्र गिरि (पर्वत)	४	८	८	२०
३५	कंचनगिरि	२००	४००	४००	१०००
३६	युगलिक क्षेत्र	६	१२	१२	३०
३७	अंतर्द्वीप ५६	५६	०	०	५६
३८	विहरमान सीमंधरादि प्रभु की विहार रूप विजय[२] (पुष्कलावती-वत्स, नलीनावती-वप्रा)	४	८	८	२०
३९	शाश्वत चैत्य[३]	६३५	१,२७२	१,२७२	३,१७९
४०	सूर्य और चंद्र...	२-२ जंबू में ४-४ लवण में	१२-१२ धातकी में ४२-४२ कालोदधि में	७२-७२ पुष्करवरार्ध में	१३२ सूर्य १३२ चंद्र

टीप्पन

(१) यह वलय "अढीद्वीपना नक्सानी हकिकत"नी पुस्तक में लिखा है, पर उसमें कौन निवास करता है, वह बताया नहीं है । (२) पांचों महाविदेह में ये ऊपर बताई गई नामवाली ४-४ विजय ही समझनी । (३) इसके सिवाय नंदीश्वर के-६८, कुंडल के-४, रुचक के-४, मानुषोत्तर के-४ मिलकर कुल १२४-१२४ भगवानवाले ८० चैत्य जोडते हुए तिर्च्छालोक में ३,२५९ चैत्य होते हैं तथा उसमें अढाईद्वीप के ३,८१,४८० + (८० X १२४) = ९,८४० मिलकर कुल ३,९१,३२० जिनप्रतिमाएं बिराजमान है... उसे भी हम भाव से वंदना करते है !...

(अढाईद्वीप के ३,८१,४८० चैत्यों में १२०-१२० तथा अढाईद्वीप के बाहर के ८० चैत्यों में १२४-१२४ भगवान होने से कुल मिलाकर (३,१७९ X १२०) = ३,८१,४०० तथा (८० X १२०) = ९,८४० मिलकर ३,९१,३२० भगवान तिर्च्छालोक में ३,२५९ जिनालयों में है) इसलिए "सकलतीर्थ" सूत्र में कहा गया है कि...

"बत्रीसे ने ओगणसाठ,
तिर्च्छालोकमां चैत्यनो पाठ ।
त्रण लाख एकाणु हजार,
त्रणसे वीस ते बिंब जुहार ।।"

ऋषभ
चंद्रानन
वर्धमान
वारिषेण

अढाईद्वीप में शाश्वत चैत्य-प्रतिमाओं का वर्णन.....

क्रम	स्थान[1]	जंबूद्वीप में			धातकीखंड में			पुष्करवरार्ध में		
		संख्या	चैत्य	प्रतिमा	संख्या	चैत्य	प्रतिमा	संख्या	चैत्य	प्रतिमा
१	मेरुपर्वत	१	१	२,०४०	२	३४	४,०८०	२	३४	४,०८०
२	वर्षधरपर्वत	६	६	७२०	१२	१२	१,४४०	१२	१२	१,४४०
३	दीर्घ वैताढ्य पर्वत	३४	३४	४,०८०	६८	६८	८,१६०	६८	६८	८,१६०
४	गजदंत पर्वत	४	४	४८०	८	८	९६०	८	८	९६०
५	यमकादि पर्वत	४	४	४८०	८	८	९६०	८	८	९६०
६	वक्षस्कार पर्वत	१६	१६	१,९२०	३२	३२	३,८४०	३२	३२	३,८४०
७	वृत्त वैताढ्य पर्वत	४	४	४८०	८	८	९६०	८	८	९६०
८	इषुकार पर्वत	–	–	–	२	२	२४०	२	२	२४०
९	कंचनगिरि	२००	२००	२४,०००	४००	४००	४८,०००	४००	४००	४८,०००
१०	दिग्गजकुट	८	८	९६०	१६	१६	१,९२०	१६	१६	१,९२०
११	उत्तरकुरु	१	१	१२०	२	२	२४०	२	२	२४०
१२	देवकुरु	१	१	१२०	२	२	२४०	२	२	२४०
१३	जंबूवृक्ष परिवार	१	११७	१४,०४०	२	२३४	२८,०८०	२	२३४	२८,०८०
१४	शाल्मली वृक्ष परिवार	१	११७	१४,०४०	२	२३४	२८,०८०	२	२३४	२८,०८०
१५	कुंड	७६	७६	१,९२०	१५२	१५२	१८,२४०	१५२	१५२	१८,२४०
१६	नदी	१४	१४	१,६८०	२८	२८	३,३६०	२८	२८	३,३६०
१७	द्रह	१६	१६	१,९२०	३२	३२	३,८४०	३२	३२	३,८४०
कुल			६३५	७६,२००		१,२७२	१,५२,६४०		१,२७२	१,५२,६४०

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२३ श्लोक-२५९ से ३२०

एरिस्टोटल व टोलेमी ने पृथ्वी को सृष्टि का केन्द्र माना था और इस मान्यता को टायको ने स्वयं के निरीक्षणों से सिद्ध किया। एरिस्टोटल व टोलेमी ने बताया था कि सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र व तारें पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं। टायको ने पाया कि ग्रहों की गति वक्र है और ऐसा मालूम नहीं होता है कि वे पृथ्वी की वर्तुलाकार भ्रमणकक्षा में गति करते हैं। दूसरी ओर कोपरनिकस की इस कल्पना के साथ टायको सहमत नहीं था कि पृथ्वी व ग्रह सूर्य के चारों ओर परिभ्रमण करते हैं। टायको भी मानता था कि यदि सूर्य के चारों ओर पृथ्वी परिभ्रमण करती है तो नजदीक के तारों का प्रकाश कम- ज्यादा होना चाहिए और उनका स्थान भी बदलता हुआ दिखाई देना चाहिए। इन तथ्यों के आधार पर टायको इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सूर्य, चन्द्र तो पृथ्वी की प्रदक्षिणा करते हैं, लेकिन ग्रह सूर्य की प्रदक्षिणा करते हैं। अपने स्वयं के निरीक्षणों के आधार पर टायको इस निष्कर्ष पर पहुँचा था।

ऋषभ
चंद्रानन
वर्धमान
वारिषेण

तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र[1] (पार्ट -१)

क्रम	स्थानविशेष	प्रासाद	प्रतिमाजी की संख्या	१-१ प्रासाद में जिनबिंब	प्रमाण (उत्सेधांगुल से)	आयाम	विष्कंभ	ऊंचाई
१	ज्योतिषीयों की राजधानी	असंख्याता	असंख्याती	१८०	५००धनुष्य	१२ १/२ यो.	६ १/४ यो.	९ १/२ यो.
२	ज्योतिषी विषे	असंख्याता	असंख्याती	१८०	५००धनुष्य	१२ १/२ यो.	६ १/४ यो.	९ १/२ यो.
३	व्यंतर निकाय में	असंख्याता	असंख्याती	१८०	५००धनुष्य	१२ १/२ यो.	६ १/४ यो.	९ यो.
४	अनुत्तरविमान में	५	६००	१२०	१ ३/४ धनुष्य	१०० यो.	५० यो.	७२ यो.
५	ग्रैवेयकविमान में	३१८	३८,१६०	१२०	१ ३/४ धनुष्य	१०० यो.	५० यो.	७२ यो.
६	वैमानिकनिकाय में	८४,९६,७००	१,५२,९४,०६,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	१०० यो.	५० यो.	७२ यो.
७	असुरनिकाय में	६४,००,०००	१,१५,२०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	३६ यो.
८	नागकुमारनिकाय में	६४,००,०००	१,१५,२०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
९	सुपर्णकुमारनिकाय में	७२,००,०००	१,२९,६०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
१०	विद्युत्कुमारनिकाय में	७६,००,०००	१,३६,६०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
११	अग्निकुमारनिकाय में	७६,००,०००	१,३६,६०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
१२	द्वीपकुमारनिकाय में	७६,००,०००	१,३६,६०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
१३	उदधिकुमारनिकाय में	७६,००,०००	१,३६,६०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
१४	दिक्कुमारनिकाय में	७६,००,०००	१,३६,६०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
१५	पवनकुमारनिकाय में	९६,००,०००	१,७२,८०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
१६	स्तनितकुमारनिकाय में	७६,००,०००	१,३६,६०,००,०००	१८०	१ ३/४ धनुष्य	२५ यो.	१२ १/२ यो.	१८ यो.
१७	जंबूवृक्ष के विषय में	१,१७०	१,४५,४००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४४० धनुष्य
१८	कंचनगिरिपर्वत में	१,०००	१,२०,०००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४४० धनुष्य
१९	कुंड में	३८०	४,५६,०००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४४० धनुष्य

(१) चैत्यवंदन महाभाष्य, गाथा-६४४ से ६४८.....

सुख-शांति और समृद्धि का रहस्य

जैसे-जैसे जीव स्पृहा-इच्छा कम करने लगता है, वैसे-वैसे उसमें पात्रता बढने लगती है और उससे उसे सभी प्रकार की संपत्तियाँ मिलने लगती है तथा जैसे जैसे वह संपत्ति प्राप्त करने की इच्छावाला बनने लगता है, वैसे वैसे उसकी अयोग्यता को जानकर संपत्तियां उससे दूर-दूर भागने लगती है । ऐसा होने से जिसे संसार में भी समृद्ध बनने की इच्छा हो उसे स्वप्न में भी सांसारिक पदार्थो की इच्छा नहीं करनी चाहिए...

त्यागे सो आगे - मांगे सो भागे....

सर्वज्ञ वचन....

आधार-"उपमिति भव प्रपंचा कथा" महाग्रंथ

ऋषभ
चंद्रानन
वर्धमान
वारिषेण

तीनों लोक में रहे हुए शाश्वत प्रासादादि का यंत्र (पार्ट - २)

क्रम	स्थानविशेष	प्रासाद	प्रतिमाजी की संख्या	१-१ प्रासाद मे जिनबिंब	प्रमाण (उत्सेधांगुलसे)	आयाम	विष्कंभ	ऊंचाई
२०	वैताढ्य पर्वत में	१७०	२०,४००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४४० धनुष्य
२१	महानदी संबंधी	७०	८,४००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४४० धनुष्य
२२	गजदंत पर्वत में	२०	२,४००	१२०	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	३६ यो
२३	मेरुपर्वत के वन में	८०	९,६००	१२०	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	३६ यो.
२४	वक्षस्कार पर्वत में	८०	९,६००	१२०	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	३६ यो.
२५	वर्षधर पर्वत में	३०	३,६००	१२०	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	३६ यो.
२६	दिग्गज संबंधी	४०	४,०८०	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४५० धनुष्य
२७	ह्रद (सरोवर) में	८०	९,६००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४५० धनुष्य
२८	यमकादि पर्वत में	२०	२,४००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४५० धनुष्य
२९	वृत्त वैताढ्यपर्वत में	२०	२,४००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४५० धनुष्य
३०	इन्द्राणी की राजधानी में	१६	१,९२०	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४५० धनुष्य
३१	नंदीश्वर द्वीप में	५२	६,४४८	१२४	५०० धनुष्य	१०० यो.	५० यो.	७२ यो.
३२	कुंडलपर्वत में	४	४९६	१२४	५०० धनुष्य	१०० यो.	५० यो.	७२ यो.
३३	रुचकपर्वत में	४	४९६	१२४	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	३६ यो.
३४	इषुकारपर्वत में	४	४८०	१२०	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	३६ यो.
३५	मानुषोत्तरपर्वत में	४	४८०	१२०	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	९ यो.
३६	१० कुरुक्षेत्र संबंध में	१०	१,२००	१२०	५०० धनुष्य	५० यो.	२५ यो.	९ यो.
३७	मेरुपर्वत की चूला संबंधी	५	६००	१२०	५०० धनुष्य	१ गाउ	१/२ गाउ	१४५० धनुष्य

कोम्प्युटर में संग्रहीत स्मृति शक्ति को बीट्स कहा जाता है । अच्छे कोम्प्टुयर में १० लाख बीट्स संग्रहीत कीये जा सकते है । बड़े से बड़े अच्छे कोम्प्युर में १ अबज बीट्स संग्रहीत होते है । मनुष्य के दिमाग में १४ अबज न्युरोन्स है । १ न्युरोन्स १ सेकन्ड में १४ स्मृतिओं को संग्रहीत कर सकता है । यानि कि १९६ अबज प्रकार की भिन्न - भिन्न स्मृति शक्ति को संग्रहित करने की शक्ति अपने दिमाग में है । वह भी सिर्फ एक सेकन्ड में । ५० वर्ष का इन्सान १,०५, ५७, ००, ००० (१ अबज ५ क्रोड, ५७ लाख) सेकन्ड जीता है । यानि इन्सान ५० वर्ष में १, ०५, ५७,००,०००१x १,९६,००,००,००, ००० (गुणा स्वयं कर लेना) स्मृतिओं को संग्रहित कर सकता है । (कहाँ कोम्प्युटर और कहाँ मनुष्य का दिमाग...)

सात द्वीप समुद्र

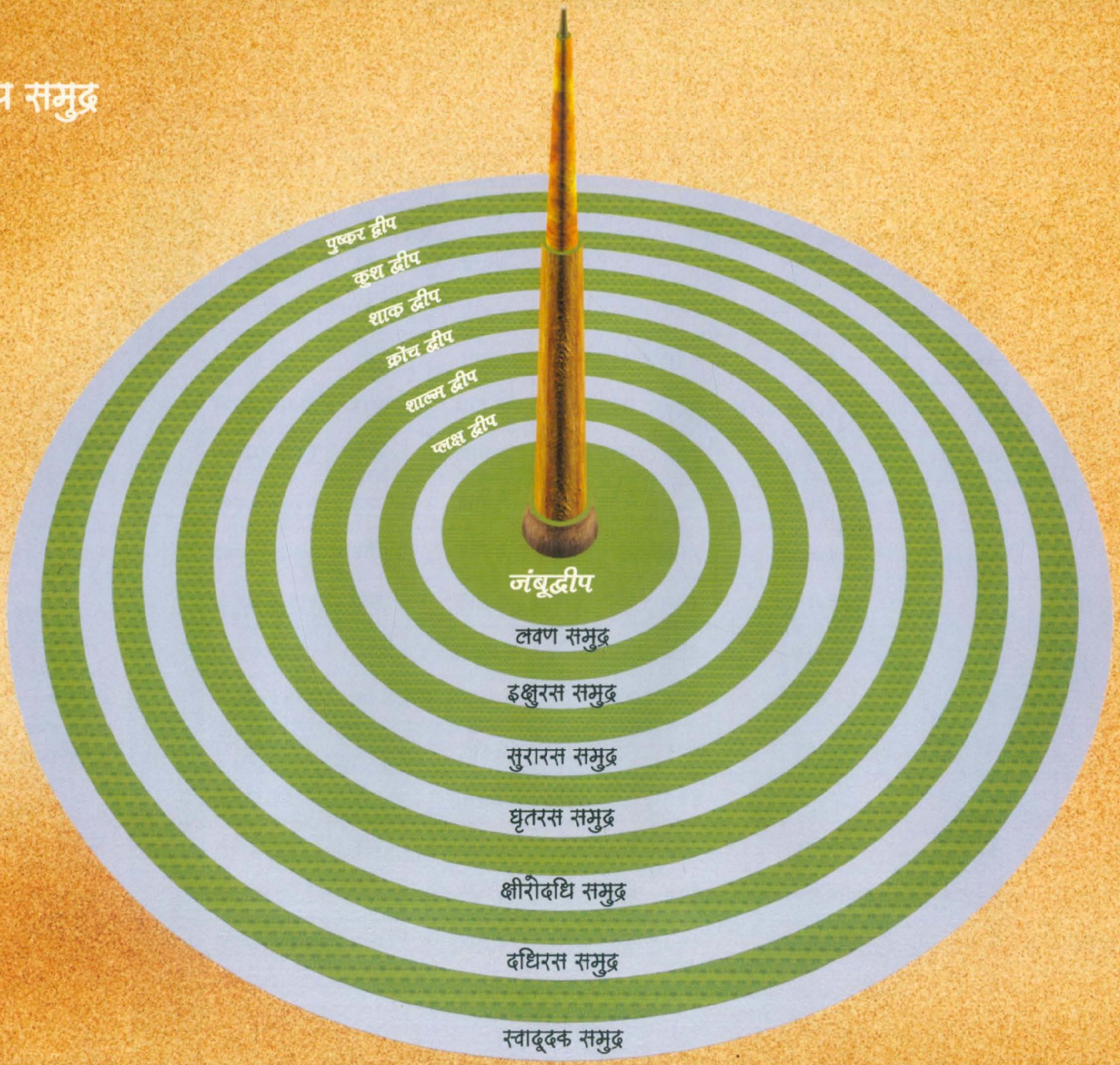
पुष्कर द्वीप
कुश द्वीप
शाक द्वीप
क्रौंच द्वीप
शाल्मल द्वीप
प्लक्ष द्वीप
जंबूद्वीप
लवण समुद्र
इक्षुरस समुद्र
सुरारस समुद्र
घृतरस समुद्र
क्षीरोदधि समुद्र
दधिरस समुद्र
स्वादूदक समुद्र

सात द्वीप-सात समुद्र की बातें क्या सच है ?.....

तिर्च्छालोक में असंख्य द्वीप-समुद्र आए है। अन्य दर्शनकार सात द्वीप-सात समुद्र ही मानते है, तो ऐसा मानने का क्या कारण हुआ ? यह बात यहाँ पर बताना इसलिए जरूरी है कि - सर्वज्ञ भगवंत कदापि अन्यथा बोलते ही नहीं हैं। जिन्होंने राग-द्वेष का निर्मूल क्षय करने के बाद ही जो वचनोच्चार किया हो वह सर्वथा सत्य ही होता है, क्योंकि असत्य बोलने के कारणों का उन्होंने सर्वथा क्षय किया है उन सर्वज्ञ प्रभु के वचन में संशय को तो स्थान ही नहीं होता। जिन्होंने अल्पबुद्धि या अल्पज्ञान से जिस-जिस वस्तु को जितने रूप में देखी उतने रूप में कही, अत: वह वस्तु उतनी ही है ऐसा कैसे कहा जाए ?

॥ सात द्वीप-समुद्रों का मन्तव्य ॥

इन सात-द्वीप-समुद्रों की प्ररूपणा भगवान महावीर स्वामी के समकालीन शिव नाम के राजर्षि से चली आ रही है ऐसा लगता है। उस राजर्षि को उग्र तपश्चर्या तपते तपते अल्प प्रमाण का विभंगज्ञान उत्पन्न हुआ। उस ज्ञान से यावत् ७ द्वीप-समुद्र तो ये देख सके, परंतु आगे देखने की शक्ति जितना ज्ञान नहीं होने से न देख सके, अत: उस राजर्षिने "सात द्वीप-समुद्र ही मात्र लोक में है;" ऐसी प्ररूपणा सर्वत्र फैलाई। लोक तो भेडिया घसान जैसे हैं अत: यह हकीकत व्यापक हो गई। यह बात जब भगवान महावीर ने जानी तब सर्वज्ञत्व को प्राप्त भगवान महावीरने उस वस्तु का (७ द्वीप समुद्र का) घटस्फोट किया। यह बात कर्णोपकर्ण शिवराजर्षिने भी जानी। उन्होंने भी भगवान महावीर के समीप आकर अपने शंकित प्रश्नों की पृच्छा की और सभी के समाधान प्राप्त किये। अपनी शंका के निवारण करनेवाले उन परम कारुनिक परमात्मा महावीर देव के प्रति परम भक्ति भी जागृत हुई। भावना भाते भाते उन्होंने भी उस वस्तु को देख सकने को समर्थ एसा केवलज्ञान प्राप्त किया, जिससे स्वशंका भी दूर हो गई। परंतु पूर्व प्रसरी हुई बात प्रबल स्वरूप में फैली थी उसका प्रवाह अब तक चला आया है। इस बात को मान्य रखनेवाले क्षणभर सोचें की जब तक इस राजर्षि को ज्ञान नहीं हुआ था और द्वीप-समुद्र की प्ररूपणा नहीं की थी तब द्वीप-समुद्रों के बारे में क्या मानते होंगे ? अरे ! वर्तमान उदाहरण सोचे की, जब कोलंबसने अमेरिका खंड नहीं ढूंढा था, तब तक पृथ्वी के बारे में क्या मानते थे ? ज्यों ज्यों संशोधन कार्य का विकास होता गया त्यों त्यों वे आगे बढते गए और कुछ वर्ष पहले पाश्चात्योंने अमेरिका से भी आगे की भूमि (न्युझिलैण्ड देश) का संशोधन किया है और अब भी संशोधन कर रहे हैं। वैसे यहाँ भी जितने जितने पैमाने ज्ञानशक्ति के विकास की वृद्धि होती है उतने उतने पैमाने में अतिन्द्रिय वस्तु भी अवश्य आत्मसाक्षात् होती जाती है। अत: वस्तु का अभाव नहीं ही कह सकते। क्योंकि अतीन्द्रिय पदार्थों की श्रद्धा के लिए नंदीवृत्ति में श्रीमान् आचार्य श्री मलयगिरिसूरिजी महाराजने भी कहा ही हैं कि "अतीन्द्रिये च संसारे, प्रमाणं न प्रवर्तते।"[१] इस वचन का अनुसरण करके हे भव्य आत्माएँ ! आप भी सर्वज्ञ भाषित वचन में श्रद्धालु हों। जिस श्रद्धा को पाकर, परंपर कर्मक्षय करते करते केवलज्ञान प्राप्त करके, स्वत: सर्वज्ञता प्राप्त करके, सर्व वस्तुओं को आत्मसाक्षात् करनेवाले हो सको....।[२]

(१) (A) नंदीसूत्र-मलयगिरि वृत्ति (२) (A) भगवती सूत्र-शतक-११, उद्देशा-९ (B) आवश्यकचूर्णि (C) आवश्यक-मलयगिरि.....

93

आधुनिक वैज्ञानिकों के मतानुसार पृथ्वी से सूर्य की दूरी ९.२५ करोड़ माईल है। संख्या के इस आंकडों का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं हैं। क्योंकि पृथ्वी से सूर्य की दूरी मापने की परिशुद्ध पद्धति डॉ. पेरेलेक्सन ने उपलब्ध कराई है।

सन् १९४६ के जुलाई और अगस्त महिने में जे.मेकडोनल्ड नामक विद्वान के द्वारा एस्ट्रोलोजिकल मेगेझीन मे एक लेख लिखा गया था कि क्या पृथ्वी गोल है ? और इस लेख में पृथ्वी के आकार संबंधी उदाहरण (दृष्टांत) एवं दलीलों के साथ प्रतिपादित किया गया है कि पृथ्वी गोल है ही नहीं। साथ ही पृथ्वी के घूमने की बात को तर्क पूर्वक असत्य साबित कर बताया है।

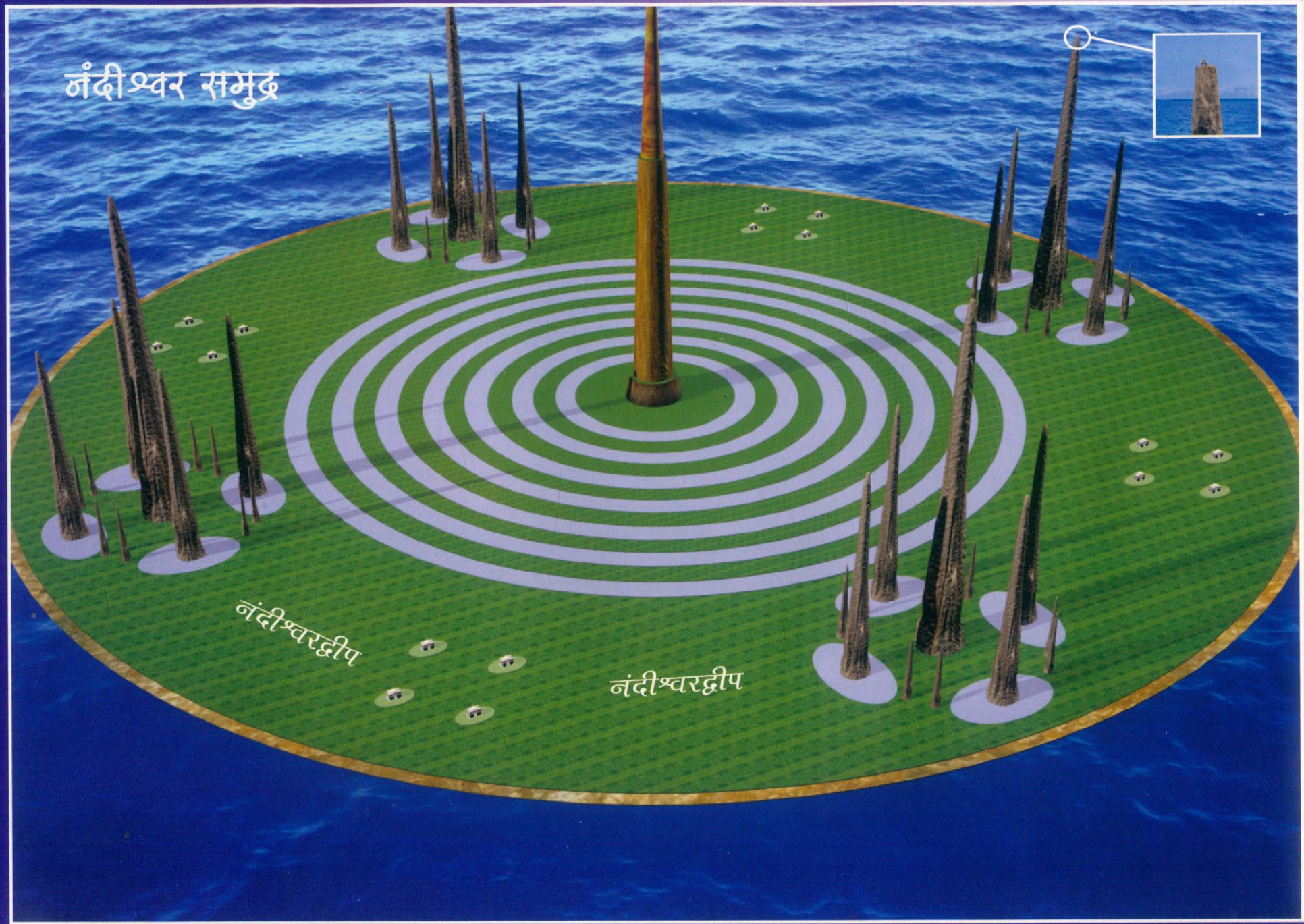
नंदीश्वर समुद्र
नंदीश्वरद्वीप
नंदीश्वरद्वीप

नंदीश्वरद्वीप.....

- "नंदी" अर्थात् समृद्धि के द्वारा, और "ईश्वर" अर्थात् वैभववाला जो द्वीप... वह है नंदीश्वरद्वीप।
- इस नंदीश्वरद्वीप के पूर्वार्ध का अधिपति देव कैलासदेव और पश्चिमार्ध का अधिपति हरिवाहन देव हैं।
- इन अधिपति देवों की विजयदेव के समान राजधानी अन्य नंदीश्वरद्वीप में आई हुई है।
- यह नंदीश्वरद्वीप वृत्त-वलयाकार संस्थान में संस्थित इक्षुवरसमुद्र से चारों ओर से घिरा हुआ है।
- यह नंदीश्वरद्वीप समचक्रवाल संस्थान में रहा हुआ है परंतु विषमचक्रवाल संस्थान में स्थित नहीं है।
- इस नंदीश्वरद्वीप के सभी जगहों पर अर्थात् सब विभागों में जगह जगह पर अनेक छोटी-छोटी बावड़ियाँ है यावत् सरोवरों की पंक्तियाँ हैं और वे सभी ईक्षुरस से भरी हुई है इसीलिए चित् को आह्लादकता एवं प्रसन्नता से भर देती हैं। इसी कारण से इस द्वीप का नाम नंदीश्वर पड़ा हैं... अथवा वह नाम शाश्वत जाने...।
- इस द्वीप का वलय विस्तार १,६३,८४,००,००० (एकसो त्रेसठ क्रोड़, चौर्यासी लाख) योजन हैं।
- इस नंदीश्वरद्वीप का विस्तार (चक्रवाल विष्कम्भ) १६,३८४ लाख योजन का कहा गया हैं।
- इस नंदीश्वरद्वीप में ४ अंजनगिरि + १६ दधिमुख पर्वत और ३२ रतिकर पर्वत आये हुए है। इन ५२ पर्वतों पर १-१ जिनचैत्य कहे गये है और वे सभी चैत्य सिंहनिषादी आकार के हैं। अर्थात् एक बाजु से नीचे... और दूसरी बाजु से अनुक्रम से ऊँचे ऊँचे होते हुए यावत् ७२ योजन तक ऊँचे जाते हैं तथा १०० योजन लंबे और ५० योजन चौड़े होते हैं।
- श्री जिनेश्वर सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्माओं के जन्मकल्याणकादि प्रसंगो पर सौधर्मेन्द्र आदि ६४ इन्द्र जो अपने-अपने पालकादि नामवाले तथा १ लाख योजन के प्रमाणवाले प्रयाण विमान में बैठकर आते हैं, तो उन विमानों को सर्व इन्द्र इसी नंदीश्वरद्वीप में संक्षेप करके (छोटा बनाकर के) भरतादि क्षेत्रों में लाते हैं।
- इस नंदीश्वर द्वीप में मधुर इक्षुरस समान स्वादिष्ट तथा संपूर्ण विकसित कमलों में से बहते मकरंद से सुगंधित बनी जल बावड़ी आदि जलाशयों में तथा खिले हुए पुष्प और फलों से अत्यंत सुन्दर और शोभायमान सर्वरत्नमय उत्पात पर्वतों पर व्यंतरियों के साथ व्यंतर देवता निवास करते हैं, आराम करते हैं, स्वेच्छानुसार क्रीडा करते हैं और वे इस तरह पूर्व के भोगपुण्य को (कर्म को) भोगते हैं।[१]
- चलिए प्रिय मित्रो ! अब तक आपको नंदीश्वर का सामान्य से परिचय कराने के बाद कुछ विशिष्ट बातें बताना ही चाहते हैं... जैसे कि ४ अंजनगिरि, १६ दधिमुख पर्वत और ३२ रतिकर पर्वत आदि कैसे हैं इनका क्या प्रमाण है, तथा इनके आजु-बाजु में कैसा वातावरण है अर्थात् क्या-क्या आया हुआ है... आदि बहुत कुछ जानने जैसी बातें... पढ़ते हैं अगले प्रकरण में... अनुक्रम से...।

(१) (A) अनुयोगद्वार सूत्र (B) स्थानांग सूत्र-४ उद्देशा-२ (C) नंदीश्वरकल्प (D) नंदीश्वरस्तोत्र (E) प्रवचन सारोद्धार (F) राजप्रश्नीय सूत्र (G) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, श्लोक-१२५ से १३४

94

"I may say with conviction that the doctrine for which the name of Lord Mahaveer is glorified now a days is the doctrine of "Ahimsa" If anyone has practised it to the fullest extent and propagated most the doctrine of Ahimsa, it was Mahaveer."

- Mahatma Gandhi

"Such is the foundation of Jain religion, that to its true followers no morality, no religion, is higher than precepts of Ahimsa. Therefore they can rightly take pride to be absolute believers in "Universal Brotherhood" of all living beings."

Alexander Gorden

नंदीश्वर समुद्र
अंजनगिरि
नंदीश्वरद्वीप
नंदीश्वरद्वीप
दधिमुख
रतिकर

श्री नंदीश्वरद्वीप विषयक किंचित् वर्णन.....

''नन्दी'' अर्थात् (सर्व प्रकार से) आनंदकारक वृद्धि उसमे ''ईश्वर'' अर्थात् श्रेष्ठ, उसे नंदीश्वर कहा जाता है। प्रथम १. जंबूद्वीप, २. लवणसमुद्र, ३. धातकीखण्ड, ४. कालोदधिसमुद्र, ५. पुष्करवरद्वीप, ६ पुष्करवरसमुद्र, ७. वारुणीवरद्वीप, ८. वारुणीवरसमुद्र, ९. क्षीरवरद्वीप, १०. क्षीरवरसमुद्र, ११. घृतवरद्वीप, १२. घृतवरसमुद्र, १३ इक्षुवरद्वीप, १४. ईक्षुवरसमुद्र इस तरह सात द्वीप और सात समुद्र उल्लंघन करने के बाद आठवाँ ''नंदीश्वर-द्वीप'' आता है। इस द्वीप में चारों दिशाओं के मिलकर बावन जिनालय (और आगे आते हुए कुण्डलद्वीप तथा रुचकद्वीप के ४-४ कुल मिलाकर ६० जिनालय मनुष्यक्षेत्र के बाहर★) आए हुए हैं।

यह द्वीप १,६३,८४,००,००० योजन चौड़ा है। इस द्वीप के मध्यभाग की अपेक्षा से चारों दिशाओं में श्यामवर्ण के ''चार अंजनगिरि'' आए हैं, वे ८४,००० योजन ऊँचे हैं और चारों उपर एक-एक जिनभवन (देहरासर) है (इस अंजनगिरि का विस्तृत स्वरूप आगे दिया जाएगा)

॥ इति ४ अंजनगिरिपर्वतशाश्वतजिनचैत्यानि ॥

इस अंजनगिरि के चारों दिशाओं की तरफ १,००,००० योजन के अन्तर पर १,००,००० योजन की लम्बी-चौड़ी इसी से विराट स्वरूप का दिग्दर्शन कराती बावड़ियाँ हैं। एक अंजनगिरि की अपेक्षा में चार चार बावड़ियां होने से ४ अंजनगिरि की अपेक्षा में १६ बावड़ियां होती हैं। इन बावड़ियों की चारों दिशाओं में ५०० योजन दूर जाने पर १,००,००० योजन लम्बा एक वन आता हैं, अर्थात् एक बावड़ी के चारों बाजु पर चार वन होने से एक अंजनगिरि के चारों दिशाओं में रही ४ बावड़ियों के १६ वन होते हैं, और ४-४ अंजनगिरि की १६ बावड़ियों के ६४ वन होते हैं। इस बावड़ी के मध्यकूप के ऊपर स्फटिक रत्नमय उज्ज्वल वर्ण के ६४,००० योजन ऊँचे, १,००० योजन गहरे, और धान्य के प्याले की तरह वर्तुलाकार में रहे हुए ''दधिमुखगिरि'' आए हैं। कुल १६ बावड़ियाँ होने से ''दधिमुख'' पर्वत भी १६ होते हैं और प्रत्येक के उपर १-१ शाश्वत ''जिनचैत्य'' होता है।

॥ इति १६ दधिमुखपर्वतशाश्वतजिनचैत्यानि ॥

इस अंजनगिरि के चारों दिशाओं में जो बावड़ियाँ कही, उनमें एक बावड़ी से दूसरी बावड़ी तक पहुँचते बीच के भाग में दो-दो ''रतिकर'' नाम के पर्वत आते हैं। १६ बावड़ियों के आंतरे में ३२ रतिकर पर्वत होते है। प्रत्येक के उपर १-१ शाश्वत जिनचैत्य आए हैं।

॥ इति ३२ रतिकरपर्वतशाश्वतजिनचैत्यानि ॥

इस तरह ४ अंजनगिरि, १६ दधिमुख पर्वत, और ३२ रतिकर पर्वत के कुल मिलाकर ५२ चैत्य होते हैं।

नंदीश्वरद्वीप में कहे गये ५२ जिनचैत्य सभी सिंहनिषादी आकार के हैं, अर्थात् एक बाजु से नीचे ढले हुए और दूसरी बाजु से ऊँचे होते हुए यावत् ७२ योजन ऊँचे हैं, तथा इषुकारादि पर्वत पर रहे जिनचैत्यों से द्विगुण प्रमाणवाले होने से १०० योजन लम्बे, ५० योजन चौड़े तथा ७२ योजन ऊँचे हैं।

हर वर्ष के पर्युषणपर्व, तीन चातुर्मासिक पर्व, नवपदजी ओली (आसो-चैत्र) आदि प्रसंगों पर तथा श्री जिनेश्वरों के जन्मादिक कल्याणक महोत्सवादि पूर्ण करके जाते समय इन्द्रादि देवगण इस नंदीश्वरद्वीप में आकर अट्ठाई महामहोत्सवादि उजवणी करते हैं।

★ ''बावन्ना नन्दीसरम्मि चउ चउर कुण्डले रुयगे'' । (शाश्वत चैत्यस्तव)

95

सर्वज्ञ महावीर के डिमडिम नाद से हिंद में एक ऐसा संदेश फैलाया कि धर्म यह मात्र सामाजिक रुढी नहीं है, परंतु यह एक वास्तविक सत्य है। यह मोक्ष बाहरी क्रियाकांड पालने से नहीं मिलता, परंतु सत्यधर्म स्वरूप में आश्रय लेने से मिलता है। धर्म और मनुष्यों में कोई स्थाई भेद रह नहीं सकता। यह कहते हुए आश्चर्य पैदा होता है कि इस शिक्षा ने समाज के हृदय में जड़ होके बेठी हुई भावना रूपी विघ्नों को त्वरा से भेद दिए और समूचे देश को वशीभूत कर लिया। इसके पश्चात् बहुत समय तक इन क्षत्रिय उपदेशकों के प्रभाव के बल से ब्राह्मणों की सत्ता अभिभूत हो गई।

-डॉ. रवीन्द्रनाथ टैगोर

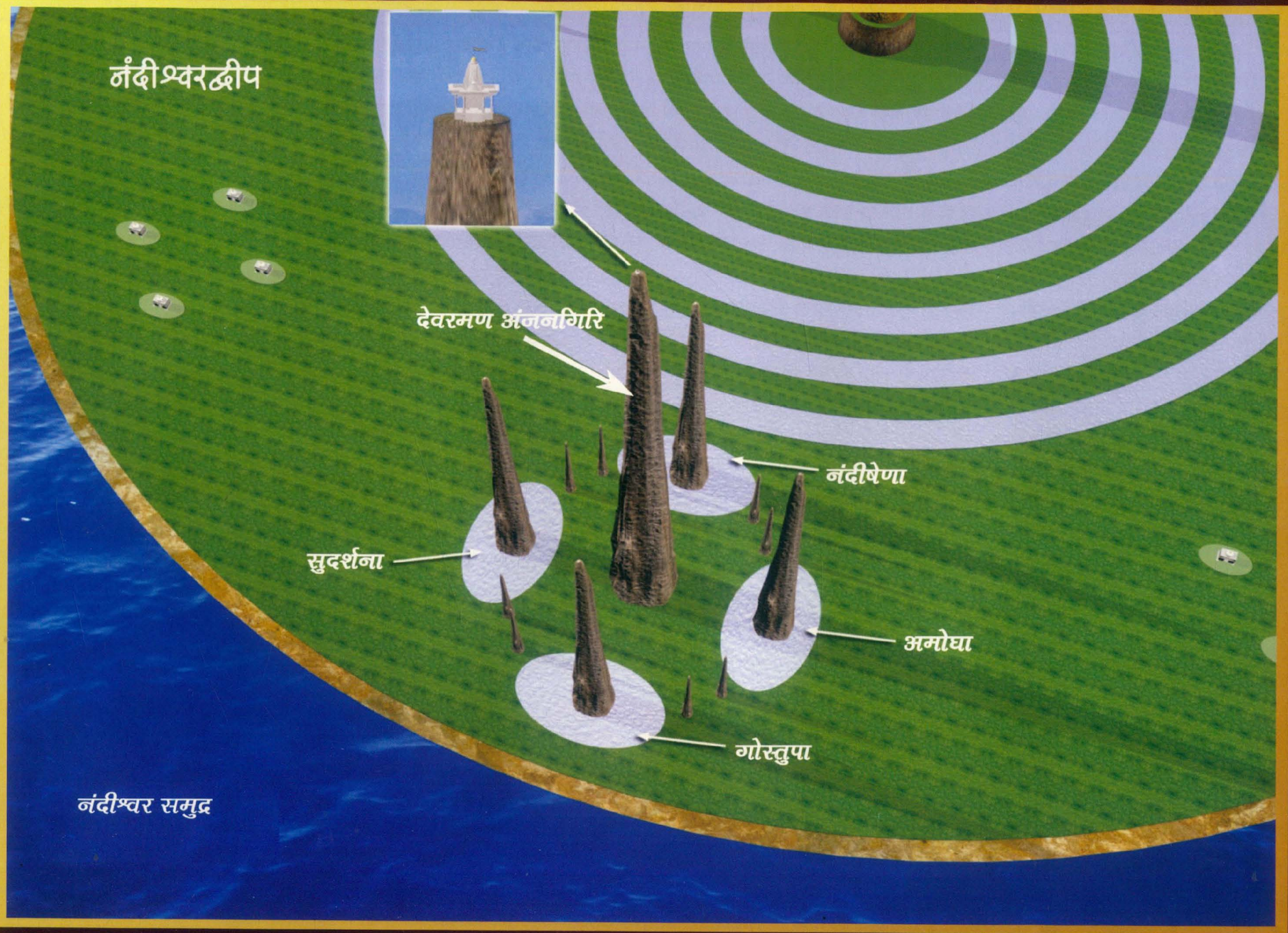
नंदीश्वरद्वीप
देवरमण अंजनगिरि
नंदीषेणा
सुदर्शना
अमोघा
गोस्तुपा
नंदीश्वर समुद्र

नंदीश्वरद्वीप में आया हुआ अंजनगिरि.....

- नंदीश्वरद्वीप के लगभग मध्यभाग में जातिमान अंजनरत्नमय ऐसे ४ अंजनगिरि पर्वत शोभायमान हैं। जो अनुक्रम से पूर्वादि दिशा में रहे हुए हैं। जैसे कि पूर्व दिशा में "देवरमण" नाम का, दक्षिण दिशा में "नित्योद्योत" नाम का, पश्चिम दिशा में "स्वयंप्रभ" नाम का और उत्तर दिशा में "रमणीयक" नाम का अंजनगिरि है।
- गोपुच्छ के आकार से रहे रज और मल से रहित गगनोत्तुंग शिखरों को धारण करते और अति तेजस्वी ये पर्वत पृथ्वी से ८४,००० योजन ऊँचे हैं जब की पृथ्वी के अन्दर १,००० योजन अवगाह हुआ है तथा पृथ्वी की सपाटी उपर १०,००० योजन विस्तृत और शिखर ऊपर १,००० योजन जितना चौड़ा है।
- गोपुच्छ के आकार से रहे रज और मल से रहित गगनोत्तुंग शिखरों को धारण करते और अति तेजस्वी ये पर्वत पृथ्वी से ८४,००० योजन ऊँचे हैं जब की पृथ्वी के अन्दर १,००० योजन अवगाह हुआ है तथा पृथ्वी की सपाटी उपर १०,००० योजन विस्तृत और शिखर ऊपर १,००० योजन जितना चौड़ा है।
- इस अंजनगिरि पर्वत की भूतल ऊपर परिधि ३१,६२३ योजन की कही गई हैं। तथा शिखर के ऊपर की परिधि ज्ञानी महर्षीओंने ३,१६२ योजन से कुछ अधिक कही है।
- अब इन प्रत्येक अंजनगिरि पर्वत की चारों तरफ एक-एक लाख योजन दूर ४ पुष्करिणी-बावड़ियाँ हैं। ये चारों १,००,००० योजन लम्बी-चौड़ी और १० योजन गहरी है और मत्स्य-मछली आदि के स्वच्छ पानी के उछलते कल्लोल से शोभायमान है। चारों दिशा में मनोहर तीन सौपान की पंक्तियों से तथा रत्न के रमणीय तोरण से वे बावड़ियाँ सुंदर श्रेष्ठ दिखती हैं।
- इन ४ अंजनगिरि के पूर्वादि क्रम से आई हुइ बावड़ियों के नाम बताए जा रहे हैं।

(१) देवरमण-अंजनगिरि में (१) नंदीषेणा (२) अमोघा (३) गोस्तूपा और (४) सुदर्शना नामक बावड़ी।
(२) नित्योद्योत-अंजनगिरि में (१) नंदोत्तरा (२) नंदा (३) सुनन्दा और (४) नंदीवर्धना नामक बावड़ी...।
(३) स्वयंप्रभ-अंजनगिरि में (१) भद्रा (२) विशाला (३) कुसुम और (४) पुण्डरीकीणी नामक बावड़ी।
(४) रमणीयक-अंजनगिरि में (१) विजया (२) वैजयन्ती (३) जयन्ती और (४) अपराजीता नामक बावड़ी...।
इन बावड़ियों के नामादि का यह क्रम नंदीश्वरस्तव एवं नंदीश्वरकल्प के अभिप्रायानुसार है।

- इन प्रत्येक बावड़ियों की चारों तरफ की दिशा में ५०० योजन दूर जाने के बाद एक-एक वन आता है। जो इस प्रकार है - पूर्व दिशा में अशोकवन है, दक्षिण दिशा में सप्तपर्ण नामक वन है, पश्चिम दिशा में चंपकवन है और उत्तर दिशा में आम्रवन हैं। इन प्रत्येक वनो का विस्तार १,००,००० (एक लाख) योजन प्रमाण है। ५०० योजन का घेराव हैं और विशिष्ट शोभनीय होने से अद्‌भुत प्रकार से शोभायमान है। इस वन में जो वृक्ष है वे सुंदर छायावाले, सुमनोहर, महास्कंधवाले और अति ऊँचे हैं और इससे वन की शोभा अति बढ़ जाती है। जैसे कि उत्तम पुरुष कुल को शोभायमान करता है वैसे ही ये सुवृक्ष इस वन को शोभायमान करते हैं।
- इन प्रत्येक अंजनगिरि पर्वत ऊपर सिंहनिषद्याकार में रहा हुआ ऊँचा अरिहंत परमात्मा का भव्य जिनालय है। तथा जिनालयों के चारों दिशा में रत्नमय सिंहासन पर भी अरिहंत परमात्मा की शाश्वत प्रतिमाएँ है अत: एक दिशा के अन्दर २७ प्रतिमा तो चार दिशा में १०८ प्रतिमा हैं और द्वार में १६ प्रतिमा होने से कुल मिलाकर १२४ प्रतिमाएं यहाँ है। अत: चारों दिशा में ४९६ प्रतिमा हुई और इसी तरह ४ अंजनगिरि पर कुल प्रतिमाएँ १,९८४ होती हैं।[१]

(१) (A) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-२ (B) स्थानांग सूत्र-४ (C) जीवाजीवाभिगम सूत्र, पडि-४. (D) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, श्लोक-१३४ से १७२ (E) नंदीश्वरस्तव (F) नंदीश्वरकल्प।

आधुनिक वैज्ञानिक मानते है कि पृथ्वी अपनी धूरी के चारों और एक घंटे में ११०० माईल की तेज गति से घूमती है, इसे अंग्रेजी में "एक्जीबल मोशन" कहते है। इसके साथ ही पृथ्वी सूर्य के चारों और अण्डाकार भ्रमणकक्षा में भी चक्कर लगाती है, इसे अंग्रेजी में "आर्टीबल मोशन" कहते है। पृथ्वी गतिमान नहीं बल्कि वास्तव में स्थिर है और इसे सिद्ध करने के लिए उन्नीसवी सदी में "डॉ. पेरेलेक्स" ने कई प्रयोग किए थे और उनके जवाब आज भी कोई वैज्ञानिक दे नहीं पाये है।

नंदीश्वरद्वीप के ५२ जिनालय

नंदीश्वरद्वीप के दधिमुख पर्वत और रतिकर पर्वत.....

नंदीश्वरद्वीप के ४ अंजनगिरि पर्वतों की चारों बाजु रही हुई १६ बावड़ियों के मध्य विभाग में सुंदर स्फटिकरत्नों से बने हुए १-१ दधिमुख पर्वत है। दधि अर्थात् दहि और मुख अर्थात् शिखर, इस पर्वत का शिखर दहि के समान उज्ज्वल होने के कारण से दधिमुख नाम से प्रसिद्ध है तथा इस पर्वत के मनोरम शिखर रुप्य (चांदी) के बने हैं। यह दधिमुख पर्वत अनाज के प्याले के समान चारों तरफ से समान ऊपर-नीचे १०,००० योजन के विस्तारवाला है। तथा ६४,००० योजन ऊँचा है और पृथ्वी में १,००० योजन अवगाढ है।

ये सभी दधिमुख पर्वत पूर्व वर्णित बावड़ियों में रहे हुए हैं। गाढ मेघ सदृश श्याम कान्तिवाले ४ अंजनगिरि पर्वत और १६ दधिमुख पर्वत ऊपर स्फूरायमान १-१ जिनालय-जिनमंदिर है। जिसकी सर्व संख्या २० होती है।

इन १६ बावड़ियों के १६ अन्तर में २-२ रतिकर पर्वत है इससे कुल ३२ रतिकर पर्वत होते हैं। ये ३२ पर्वत पद्मराग की कान्तिवाले और सब एक समान है।

इस तरह १ अंजनगिरि पर्वत पर १, ४ दधिमुख पर्वत पर ४ और ८ रतिकर पर्वतों पर ८ जिनालय, अर्थात् एक-एक दिशा में १३-१३ जिनमंदिर हैं तो कुल ४ दिशा में सब मिलाकर ५२ जिनालय होते हैं।

चलिए देखते हैं कुछ वर्णन रतिकर पर्वत के बारे में... इस द्वीप के मध्यविभाग में चार दिशाओं में सर्वरत्नमय ४ रतिकर पर्वत रहे हुए है। ये ४ रतिकर पर्वत १०,००० योजन लम्बे, १०,००० योजन चौड़े, १,००० योजन ऊँचे और आकृति में झल्लरी के समान है तथा वे भूमि में २५० योजन अवगाढ़ है और इनकी परिधि ३१,६२३ योजन की कही गई है।

इन पर्वतों से उत्तरपूर्व (ईशाणकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में ईशानेन्द्र देवराज की चारों अग्रमहिषियों की जम्बूद्वीप जितनी लम्बी-चौड़ी ४ राजधानियाँ हैं। जैसे कि - (१) कृष्णा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम नन्दुत्तरा। (२) कृष्णराजी अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - नन्दा। (३) रामा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - देवकुरा और (४) रामरक्षिता अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - उत्तरकुरा।

इन पर्वतों से दक्षिण-पूर्व (अग्निकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में से शक्र देवेन्द्र देवराज की चारों अग्रमहिषियों की जंबूद्वीप जितनी लम्बी-चौड़ी चार राजधानीयाँ कही गई है। जैसे कि - (१) पद्मा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - समणा। (२) शिवा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - सोमनसा। (३) राची अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - अर्चिमाली और (४) अंजू अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - मनोरमा।

इन पर्वतों से दक्षिण-पश्चिम (नैऋत्यकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में शक्र देवेन्द्र देवराज की चारों अग्रमहिषियों की जंबूद्वीप जितनी लम्बी-चौड़ी चार राजधानियाँ कही गई है। जैसे कि - (१) अमरा अग्रमहषी की राजधानी का नाम - भूता। (२) अप्सरा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - भूतावतंसा। (३) नवमिका अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - गोस्तुपा और (४) रोहिणी अग्रमहिषी की राजधानी का नाम सुदर्शना।

इन पर्वतो में से उत्तर-पश्चिम (वायव्यकोण) के रतिकर पर्वत की चारों दिशाओं में से ईशानेन्द्र देवराज की चारो अग्रमहिषियों की जंबूद्वीप जितनी लम्बी-चौड़ी चार राजधानियां कही गई हैं...। जैसे कि (१) वसु अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - रत्ना। (२) वसुगुप्ता अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - रत्नोच्चया। (३) वसुमित्रा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - सर्वरत्ना और (४) वसुन्धरा अग्रमहिषी की राजधानी का नाम - रत्नसंचया।[१]

(१) (A) नंदीश्वरस्तव (B) नंदीश्वर कल्प (C) जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति, वक्ष.-२ (D) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, श्लोक-१७५ से २८५

97

विज्ञान के क्षेत्र में मौजुद अज्ञान व अंधेरगर्दी का कोई आभास शालाओं व महाविद्यालयों में अध्ययनरत छात्र-छात्राओं को नहीं दिया जाता है। उन्हें तो पृथ्वी गेंद जैसी गोल है व अपनी धूरी के चारों तरफ घूमती है। तथा सूर्य को प्रदक्षिणा करती हैं। इत्यादि तर्कहीन बातों को बगैर स्वयं की बुद्धि का उपयोग किए अंधविश्वास के साथ स्वीकार कर लेना होता है और उसके अनुरूप परीक्षा में जवाब लिखने पड़ते है। इस शिक्षण पद्धति के कारण हमारे करोड़ों छात्र आधुनिक भूगोल खगोल की कपोलकल्पित बातों को सत्य मानने लग गए है। इसलिए आधुनिक विज्ञान मे अंध श्रद्धा रखनेवाले सब लोगों के लिए जगत का वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कराने हेतु यह सचित्र तत्त्वज्ञान का नया नजराना आपश्री के सामने प्रस्तुत करने का एक अल्प प्रयास किया गया है।

११ वाँ द्वीप..... कुंडलद्वीप
कुंडलगिरि
मेरु
कुंडलद्वीप
कुंडल समुद्र

कुंडलद्वीप की विशेष जानकारी.....

१. जंबूद्वीप, २. धातकीखंड, ३. पुष्करवरद्वीप, ४. वारुणीवरद्वीप, ५. क्षीरवरद्वीप, ६. घृतवरद्वीप, ७. इक्षुवरद्वीप, ८. नंदीश्वरद्वीप, ९. अरुणद्वीप, १०. अरुणोपपातद्वीप, ११. कुंडलद्वीप, १२. शंखद्वीप, १३. रुचकद्वीप, १४. भुजगद्वीप, १५. कुशद्वीप आदि अनेक द्वीप क्रमसर आये हुए हैं।

इसी क्रम की अपेक्षा से अग्यारहवाँ कुंडलद्वीप कहा गया है। इस प्रकार से श्री भगवती सूत्र के चौथे शतक के उद्देशे की टीका में भी अग्यारहवाँ ही कहा गया हैं।

इस द्वीप के अंदर एक कुंडलगिरि नाम का पर्वत है जो कि मानुषोत्तर पर्वत के समान ही रहा है, वह ४२,००० योजन ऊँचा है और १,००० योजन भूमि में अवगाढ़ है। मूल-मध्य और ऊपर में यह पर्वत मानुषोत्तर पर्वत के समान ही विस्तारवाला है।

इस कुंडलगिरि पर्वत के ऊपर चारों दिशा में ४ द्वारवाले ४ जिनालय है जो चतुर्गति संसार रूप अरण्य में व्याकुल बने जीवात्मा का विश्राम स्थान समान है। इन सभी चैत्यों का स्वरूप नंदीश्वरद्वीप के अंदर रहे हुए पर्वत के ऊपर मंदिरों के समान जानना। इस पर्वत के दक्षिण और उत्तर दिशा में अभ्यंतर ४-४ पर्वत है उसके नाम सोमप्रभ, यमप्रभ, वैश्रमणप्रभ और वरुणप्रभ है, इन आठ पर्वतों की आकृति रतिकर पर्वत के समान है तथा ऊँचाई, गहराई, चौड़ाई से अत्यंत रमणीय लगते हैं। इन एक-एक पर्वत की चारों दिशाओं में ३२ राजधानियाँ हैं जो कि जम्बूद्वीप के समान लम्बी-चौड़ी है।

इस पर्वत में सोमप्रभ पर्वत की पूर्वादि ४ दिशा में रहे (१) सोमा (२) सोमप्रभा (३) शिवप्रकारा और (४) नलिना नाम की राजधानियाँ हैं। यमप्रभ पर्वत की चारों दिशाओं में (१) विशाला (२) अतिविशाला (३) शय्याप्रभा और (४) अमृता नाम की राजधानियाँ हैं। वैश्रमणप्रभ की चारों दिशाओं में (१) अचलनद्धा (२) समक्वसा (३) कुबेरिका और (४) धनप्रभा नाम की राजधानियाँ हैं तथा चौथे वरुणप्रभ की चारों दिशाओं में (१) वरुणा (२) वरुणप्रभा (३) कुमुदा और (४) पुण्डरीकीणी नाम की राजधानियाँ हैं। इसमें दक्षिण दिशा की ओर रही हुई जो १६ नगरियाँ हैं वे सौधर्मेन्द्र के चार लोकपाल संबंधी है, उसी तरह उत्तर दिशा की ओर रही हुई जो १६ राजधानियाँ हैं वे ईशानेन्द्र के चार लोकपाल संबंधी है, इस तरह "श्री द्वीपसागरप्रज्ञप्ति संग्रहणी" सूत्र में कहा गया हैं।[१]

इस कुंडलगिरि पर्वत के ऊपर पूर्वादि क्रम से ४-४ कूट आये हुए हैं - वह इस प्रकार से जाने... पूर्व में (१) वज्रप्रभ (२) वज्रसार (३) कणक (४) कणकोत्तम। दक्षिण में (१) रक्तप्रभ (२) रक्तधातु (३) सुप्रभ (४) महाप्रभ...। पश्चिम में (१) मणिप्रभ (२) मणिहित (३) रुचक (४) एकावतंसक। उत्तर में (१) स्फटिक (२) महास्फटिक (३) हिमवान (४) मंदर। इन १६ कूटों पर पल्योपम की स्थितिवाले १६ नागकुमार बसते हैं... जिनके नाम क्रमसर इस प्रकार है... (१) त्रिशीष (२) पंचशीष (३) सप्तशीष (४) महाभुज (५) पद्मोत्तर (६) पद्मसेर (७) महापद्म (८) वासुकी (९) स्थिरहृदय (१०) मृदुहृदय (११) श्रीवत्स (१२) स्वस्तिक (१३) सुंदरनाम (१४) विशालाक्ष (१५) पांडुरंग और (१६) पांडुकेशी। इन कूटों की ऊँचाई- ५०० योजन, मूल में विस्तार-५०० योजन, मध्य में विस्तार - ३७५ योजन, शिखर पर का विस्तार २५० योजन तथा मूल में परिधि १,५८१ योजन से कुछ अधिक है।

(१) (A) द्वीपसागरप्रज्ञप्ति संग्रहणी, गाथा-८७ (B) भगवती सूत्र, शतक-३, उद्देशो-८ की वृत्ति-टीका (C) जीवाजीवाभिगम, पडि.-३. (D) स्थानांग सूत्र-३, उद्देशा-४, (E) चंद्रप्रज्ञप्ति (F) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, श्लोक-३०४ से ३२०

98

निकोलस कोपरनिकस ने "रिवोलूशन ऑफ द हेवनली बॉडीझ" नामक पुस्तक लिखकर पहली बार कल्पना की थी कि पृथ्वी गेंद जैसी गोल है और वह सूर्य के चारों ओर घूमती है, कोपरनिकस की यह पुस्तक सन १५४३ में प्रकाशित हुई थी और उसके तुरन्त बाद ही उनका अवसान हो गया था। ईसाई धर्मगुरुओं ने इस पुस्तक और उसमें दिए समस्त मुद्दों की उपेक्षा की थी, क्योंकि यूरोप में बहुत कम व्यक्तियों ने उसे पढ़ा था और बहुत कम विद्वान उसमें उठाई बातों के साथ सहमत थे। जब गैलीलियों ने दूरबीन का आविष्कार किया और उसके द्वारा कोपरनिकस की कल्पना को सच करने का प्रयास किया, तब ईसाई धर्मगुरु सजाग हो गए और गैलीलियो का जोर-शोर से विरोध करने लगे, जिससे यूरोपीय प्रजा पर गैलीलियो की गलत बातों का प्रभाव न पड़े। इसका मुख्य कारण धार्मिकता थी।

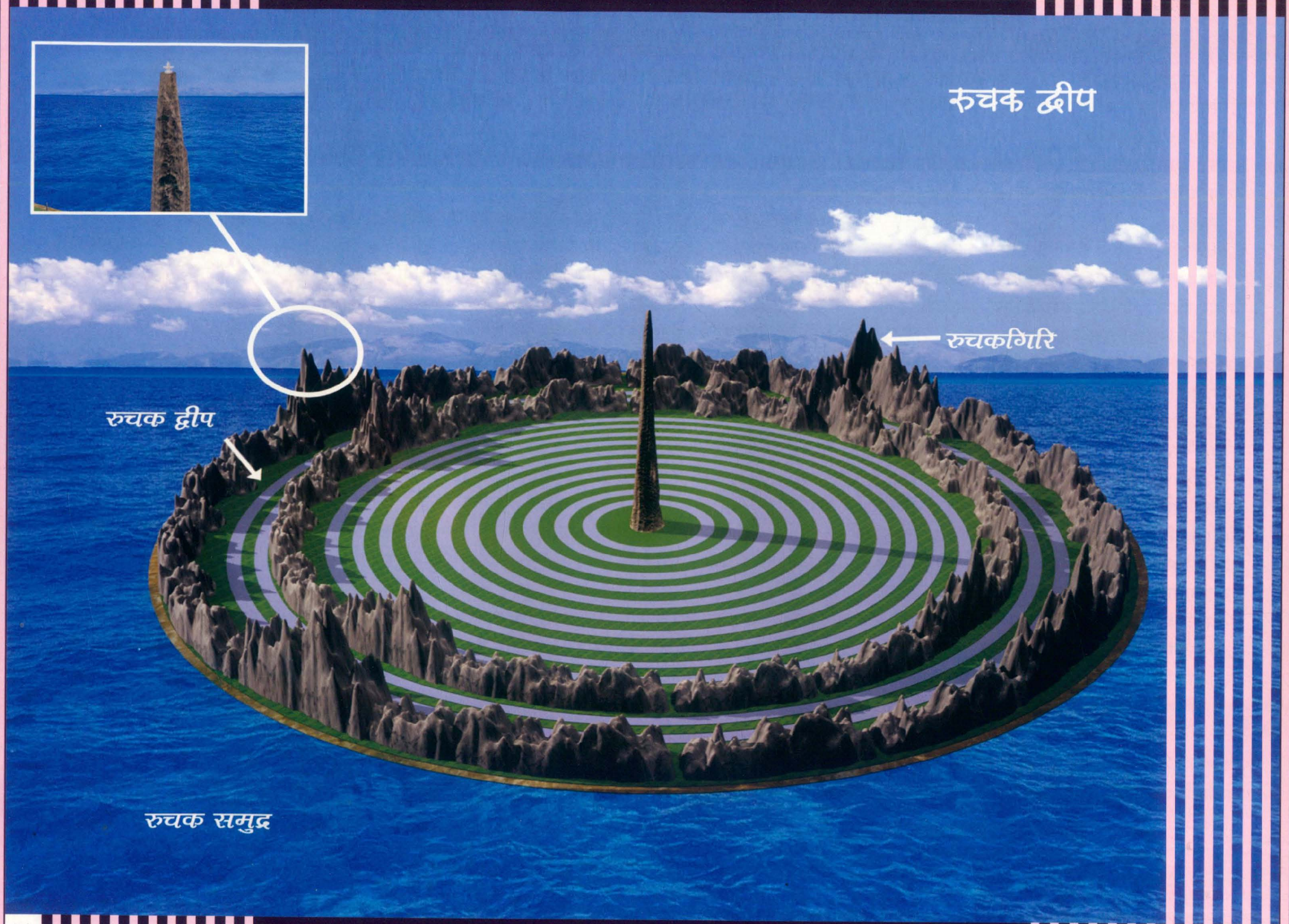
रुचक द्वीप
रुचकगिरि
रुचक द्वीप
रुचक समुद्र

रुचकद्वीप.....

जंबूद्वीप से लेकर १३ वां द्वीप **रुचकद्वीप** आता है। यह रुचकद्वीप १०,९९,५१,१६,२७,७७६ लाख योजन के विस्तारवाला है। इस द्वीप के ठीक मध्यभाग में रुचक नाम का वलयाकार पर्वत है जो विस्तृत उल्लसते प्रसन्नता के हार के समान शोभायमान है। यह रुचक पर्वत ऊँचाई में ८४,००० योजन है, उसका मूल में विस्तार १०,०२२ योजन है। मध्यभाग में ७,०२३ योजन है, तथा ऊपर के विभाग में ४,०२४ योजन का है।

कुंडलाकृति (गोलाकार रूप) से ३ महापर्वत हैं **(१) मानुषोत्तर पर्वत (२) कुंडल पर्वत** तथा **(३) रुचक पर्वत**। इस रुचक पर्वत के ४,००० योजन से चारों दिशा में १-१ सुंदर आकृतिवाले सिद्ध मंदिर हैं। इन चारों सिद्ध मंदिरों का स्वरूप नंदीश्वर पर्वत के चैत्यालय के समान है और वह ४ दिशा रूपी लक्ष्मी के तिलक के समान शोभायमान है। वह १०० योजन लंबे, ५० योजन चौड़े और ७२ योजन ऊँचे, ४ द्वारवाले नंदीश्वरद्वीप के जिनभवन समान वर्णनवाले १२४ प्रतिमा से युक्त होते हैं।

विशेष में पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण दिशा के जिनभवन के दोनों बाजु ४-४ कूट अर्थात् १ जिनभवन के दोनों बाजु होकर कुल ८-८ कूट होने से चारों दिशा में ३२ कूट हैं तथा विदिशा में (कोणे में) १-१ होने से वह ४ मिलकर कुल ३६ कूट हैं। उसके उपर पल्योपम की स्थितिवाली ३६ दिक्कुमारियाँ रहती हैं। यह ३६ दिक्कुमारी ऊर्ध्वरुचक की कहलाती हैं। तथा अभ्यंतर रुचकार्ध के मध्यभाग में चारों विदिशा में १-१ कूट है, उसके ऊपर भी १-१ मिलकर ४ दिक्कुमारी हैं जो मध्यरुचक की दिक्कुमारी कही जाती हैं। यह ४० दिक्कुमारी★ श्री जिनेश्वर परमात्मा के जन्मकल्याणक प्रसंग में आती हैं।

अब इस रुचकगिरि में आये हुए पूर्वादि दिशा में जो ३२ कूट आये है, उनके नामादि इस प्रकार से जाने...

पूर्व में -(१)कणक(२)कंचणग(३)तपन(४)दिशास्वस्तिक(५)अरिष्ठ(६)चंदन(७)अंजनमूल(८)वज्र।

दक्षिण में -(१)स्फटिक(२)रतन(३)भवन(४)पद्म(५)नलिन(६)शशी(७)वैश्रमण(८)वैडुर्य।

पश्चिम में -(१)अमोघ(२)सुप्रबुद्ध(३)हिमवान(४)मंदिर(५)कुंडल(६)रुचकोत्तर(७)चंद्र(८)सुदर्शन।

उत्तर में -(१)विजय(२)वैजयंत(३)जयंत(४)अपराजित(५)कुंडल(६)रुचक(७)रत्नोच्चय(८)सर्वरत्न।[१]

★ अब उपरोक्त कूटों पर बसनेवाली **दिक्कुमारियों** के नाम एवं कार्यो की जानकारी भी जान लेवे...

पूर्व रुचक की ८ = (१) नंदोत्तरा (२) नंदा (३) सुनंदा (४) नंदीवर्धना (५) विजया (६) वैजयंती (७) जयंती और (८) अपराजीता। यह ८ दिक्कुमारियाँ श्री जिनेश्वर के जन्म समय में प्रभु के आगे दर्पण धरकर गायन करती खड़ी रहती है।

दक्षिण रुचक की ८ = (१) समाहारा (२) सुप्रदत्ता (३) सुप्रबुद्धा (४) यशोधरा (५) लक्ष्मीवती (६) शेषवती (७) चित्रगुप्ता और (८) वसुन्धरा। यह ८ दिक्कुमारी श्री जिनेश्वर प्रभु के आगे कलशों में जल भरकर गायन करती खड़ी रहती हैं।

पश्चिम रुचक की ८ = (१) अलंबुसा (२) मिश्रकेशी (३) पुंडरीका (४) वारुणी (५) हासा (६) सर्वप्रभा (७) श्री और (८) ह्री। यह ८ दिक्कुमारी जिनेश्वर प्रभु की आगे चामर विंझती हुई गायन करती खड़ी रहती हैं।

विदिशि रुचक की ४ = (१) चित्र (२) चित्रकनका (३) तेजा (४) सुदामिनी। यह ४ दिक्कुमारी श्री जिनेश्वर प्रभु के आगे दीपक धरकर गायन करती खड़ी रहती है।

मध्य रुचक की ४ = (१) रूपा (२) रूपान्तिका (३) सुरूपा (४) रूपवती। ये ४ दिक्कुमारी श्री जिनेश्वर प्रभु का प्रसूतिकर्म को करती है।

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, श्लोक-३२५ से ३३४

"In all upper western North Central Asia then, say 1500 to 800 B.C., existed throughout India an ancient and highly organised religion, philoso-phical, ethical and severely ascetical viz., Jain-ism, out of which clearly developed the early as-cetical features of Brah-minism and Buddhism."

- Dr. E Thomas

"Jainism is completely different from Hind-uism and independent of it. The beginning of Jainism and its history are much older than the "Smruti Shastras" and their comm-entaries. (All India reporter 1927, Madras 228, 229 (Gaheppa V. Erama)"

- Sri Kumaraswamy Sastri (Chief Justice, Madras - High Court)

असंख्य द्वीप और समुद्र

तिर्च्छालोकवर्ती क्रमशः द्वीप-समुद्र स्थापना.....

१. जंबूद्वीप, २. लवणसमुद्र, ३. धातकीखंड, ४. कालोदधिसमुद्र, ५. पुष्करवरद्वीप, (अब मनुष्यक्षेत्र के बाद) ६. पुष्करवरसमुद्र, ७. वारुणीवरद्वीप, ८. वारुणीवरसमुद्र, ९. क्षीरवरद्वीप, १०. क्षीरवरसमुद्र, ११. घृतवरद्वीप, १२. घृतवरसमुद्र, १३. इक्षुवरद्वीप १४. इक्षुवरसमुद्र, १५. नंदीश्वरद्वीप, १६. नंदीश्वरसमुद्र.... अब यहाँ से त्रिप्रत्यावतार द्वीप-समुद्र शरु होते हैं । १७. अरुणद्वीप, १८. अरुणसमुद्र, १९. अरुणवरद्वीप, २०. अरुणवरसमुद्र, २१. अरुणवरावभासद्वीप, २२. अरुणवरावभाससमुद्र, २३. कुंडलद्वीप, २४. कुंडलसमुद्र, २५. कुंडलवरद्वीप, २६. कुंडलवरसमुद्र, २७. कुंडलवरावभासद्वीप, २८. कुंडलवरावभाससमुद्र, २९. अरुणोपपातद्वीप, ३०. अरुणोपपातसमुद्र, ३१. अरुणोपपातवरद्वीप, ३२. अरुणोपपातवरसमुद्र, ३३. अरुणोपपातवरावभासद्वीप, ३४. अरुणोपपातवरावभाससमुद्र... ३५. शंखद्वीप, ३६. शंखसमुद्र, ३७. शंखवरद्वीप, ३८. शंखवरसमुद्र, ३९. शंखवरावभासद्वीप, ४०. शंखवरावभाससमुद्र, ४१. रुचकद्वीप, ४२. रुचकसमुद्र, ४३. रुचकवरद्वीप, ४४. रुचकवरसमुद्र, ४५. रुचकवरावभासद्वीप, ४६. रुचकवरावभाससमुद्र, ४७. भुजगद्वीप, ४८. भुजगसमुद्र, ४९. भुजगवरद्वीप, ५०. भुजगवरसमुद्र, ५१. भुजगवरावभासद्वीप, ५२. भुजगवरावभाससमुद्र, ५३. कुशद्वीप, ५४. कुशसमुद्र, ५५. कुशवरद्वीप, ५६. कुशवरसमुद्र, ५७. कुशवरावभासद्वीप, ५८. कुशवरावभाससमुद्र ५९. क्रौंचद्वीप, ६०. क्रौंचसमुद्र, ६१. क्रौंचवरद्वीप, ६२. क्रौंचवरसमुद्र, ६३. क्रौंचवरावभासद्वीप ६४. क्रौंचवरावभाससमुद्र[१]..... पुनः- यहाँ से प्रत्येक शुभ वस्तु के नामवाले सर्व त्रिप्रत्यावतारी असंख्याता द्वीप-समुद्र, तथा प्रत्येक नामवाले द्वीप-समुद्र अन्तर-अन्तर से असंख्यात-असंख्यात आये हुए हैं जैसे कि....

मूलद्वीप - मूलसमुद्र - मूलवरद्वीप - मूलवरसमुद्र - मूलवरावभासद्वीप - मूलवरावभाससमुद्र,
हारद्वीप - हारसमुद्र - हारवरद्वीप - हारवरसमुद्र - हारवरावभासद्वीप - हारवरावभाससमुद्र,
गंगाद्वीप - गंगासमुद्र - गंगावरद्वीप - गंगावरसमुद्र - गंगावरावभासद्वीप - गंगावरावभाससमुद्र,
मेरुद्वीप - मेरुसमुद्र - मेरुवरद्वीप - मेरुवरसमुद्र - मेरुवरावभासद्वीप - मेरुवरावभाससमुद्र,
जम्बूद्वीप - जम्बूसमुद्र - जम्बूवरद्वीप - जम्बूवरसमुद्र - जम्बूवरावभासद्वीप - जम्बूवरावभाससमुद्र,

.....

.....असंख्य द्वीप-समुद्र.....

इस तरह यहाँ असंख्यात द्वीप-समुद्र आए हैं । उनमें सबसे अन्तिम त्रिप्रत्यावतार सूर्य नाम का द्वीप-समुद्र आया है, जैसे कि.... असंख्यातवाँ सूर्यद्वीप-सूर्यसमुद्र-सूर्यवरद्वीप-सूर्यवरसमुद्र-सूर्यवरावभासद्वीप-सूर्यवरावभाससमुद्र.....[२]

॥ इति त्रिप्रत्यावताराः द्वीप-समुद्रा समाप्ताः ॥

अब यहाँ अन्तिम प्रत्येक नामवाले पांच द्वीप-समुद्र हैं... जो इस प्रकार से जाने... (१) देवद्वीप-देवसमुद्र (२) नागद्वीप-नागसमुद्र (३) यक्षद्वीप-यक्षसमुद्र (४) भूतद्वीप-भूतसमुद्र तथा अंतिम (५) स्वयंभूरमणद्वीप और स्वयंभूरमणसमुद्र[३].....।

॥ इति तिर्च्छालोकवर्ती असंख्य द्वीप-समुद्र स्थापना ॥

(१) सप्ततिशतकस्थानप्रकरणम्-३५ (२) (A) बृहत्संग्रहणी, गाथा-७२ से ७५ (B) त्रैलोक्यदीपिका-९८ से... (३) देवेन्द्रनरकेन्द्र प्रकरणम्

जैनधर्म का अभ्यास जितना मैंने किया है, उस पर से दृढता के साथ कह सकता हुँ कि अगर विरोधी सज्जन जो जैन साहित्य का अभ्यास व मनन सूक्ष्म रीति से कर ले तो उनका विरोध ही खत्म हो जाएगा और वे विरोध करना ही छोड़ देंगे ।

डॉ. गंगानाथ झा (M.A.D.) लीट्

सर्वज्ञ महावीर स्वामीजी ने जैन धर्म को पुनर्जीवन दिया है । वे चोवीस वें अवतार थे । इस अवतार के पहले भी जैनधर्म प्रचार में था । इस बात से ही जैनधर्म की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है ।

बाल गंगाधर लोकमान्य तिलक

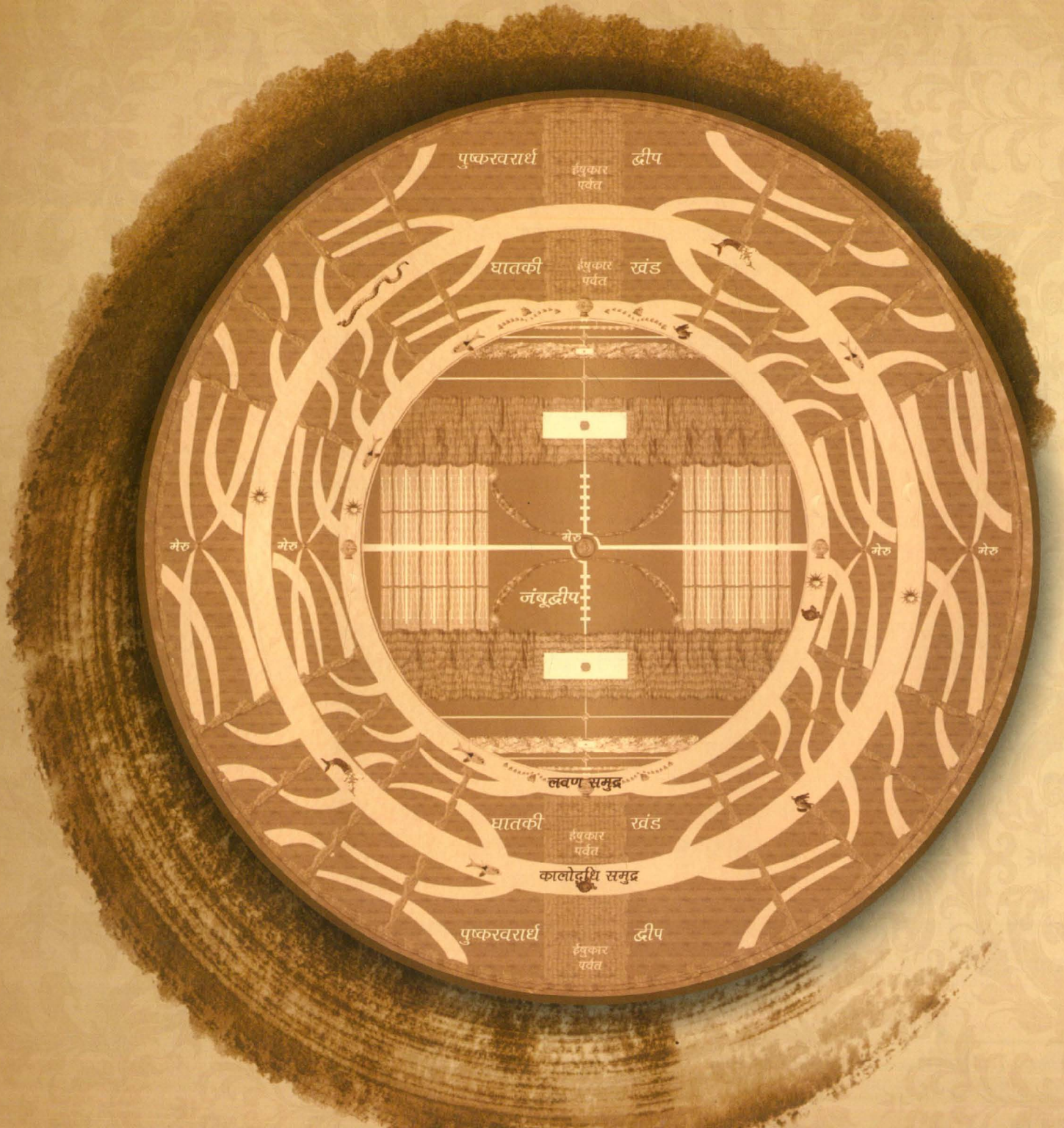
पुष्करवरार्ध द्वीप
इषुकार पर्वत
घातकी खंड
इषुकार पर्वत
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
मेरु
जंबूद्वीप
लवण समुद्र
घातकी खंड
इषुकार पर्वत
कालोदधि समुद्र
पुष्करवरार्ध द्वीप
इषुकार पर्वत

समस्त द्वीप-समुद्रों का आकार तथा प्रमाण.....

द्वीप-समुद्रों का प्रमाण... तेल का पुडला (मालपुआ) के आकार में अथवा पूर्णिमा के चन्द्राकार में सर्वद्वीप-समुद्राभ्यंतरवर्ती स्थित पहले जम्बूद्वीप को वर्जित करके वलयाकार में रहे हुए हैं। शेष (सर्व) द्वीप-समुद्र पूर्व-पूर्व से द्विगुण विस्तारवाले हैं। जैसे कि - जंबूद्वीप १,००,००० योजन का, तदनन्तर आया हुआ लवणसमुद्र उससे द्विगुण २,००,००० योजन का, उससे द्विगुण धातकीखण्ड ४,००,००० योजन का और उससे द्विगुण कालोदधिसमुद्र आदि ऐसे उत्तरोत्तर द्विगुण द्विगुण (दुगुने) विस्तारवाले सर्व द्वीप-समुद्र जानें।

समस्त द्वीप* समुद्र का आकार... उत्सेधांगुल (अपना जो चालु अंगुलप्रमाण वह) से प्रमाणांगुल ४०० गुणा या १,००० गुणा बड़ा होता है अर्थात् ४०० उत्सेधांगुल का एक प्रमाणांगुल हो उस प्रमाणांगुल से निष्पण्ण १,००,००० योजन प्रमाणवाला पहला जंबूद्वीप आया है। यह जम्बूद्वीप जैनशास्त्रों के मतानुसार वृत्त (गोल) विष्कम्भवाला है अर्थात् थाली अथवा मालपूए के समान गोलाकार है परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिकों के मतानुसार गेंद जैसा वा नारंगी जैसा नहीं है। इस आकार को "प्रतरवृत्त" कहते हैं। प्रतरवृत्त की लम्बाई और चौड़ाई प्रमाण से एक समान होती है इसलिए वृत्त विष्कम्भ (प्रतरवृत्त) वाली वस्तु को मध्यबिंदु से किसी भी दिशा अथवा विदिशा में (आमने-सामने) मापें तो भी उसका एक समान प्रमाण आएगा। "समप्रतरवृत्त" (समगोल) वस्तु का व्यास (विस्तार) समान होता हैं। अतः जंबूद्वीप भी "विषमप्रत्तरवृत्तादि" (लम्बगोल या अर्धगोल) नहीं है लेकिन "समगोल" है

इसी "समप्रतरवृत्त" जैसे जंबूद्वीप के चारों और परिवृत्त परिमण्डलाकार में (चूड़ी के समान आकार में) "लवणसमुद्र" आया है अर्थात् चूड़ी में चारों भागों पर किनारे और बीच में पोला भाग हो वैसे जम्बू के परिवृत्त चूड़ी के समान वलयाकार में लवणसमुद्र आया है। बीच में पोलापन हो ऐसे गोलाकार को "परिमण्डल" अथवा "वलय" कहा जाता है। यह लवणसमुद्र भी वैसे ही आकार में और उसका "चक्रवालविष्कम्भ" अर्थात् वलयाकार वस्तु की किसी एक दिशा (बाजु) की ओर की चौड़ाई अर्थात् जम्बूद्वीप की एक ओर की जगती से लेकर ठेठ लवणसमुद्र की जगती तक अथवा तो धातकीखण्ड से प्रारम्भ के क्षेत्र तक का २,००,००० (दो लाख) योजन "विष्कम्भ" प्रमाण होता है।

तदनन्तर लवणसमुद्र से परिवृत्त धातकीखण्ड वलयाकार में आता है। यह खण्ड ४,००,००० योजन विष्कम्भवाला है। उससे परिवेष्टित मण्डलाकार में ८,००,००० योजन प्रमाण वलय विष्कम्भवाला कालोदधि रहा है, और उस कालोदधिसमुद्र के चारों और परिवेष्टित होकर १६,००,००० योजन चक्रवाल विष्कम्भवाला पुष्करवरद्वीप आया है उसके बाद के भी असंख्य द्वीप-समुद्र भी इसी तरह द्विगुण द्विगुण विस्तारवाले समझना...। तथा सबसे अंतिम तिर्च्छालोक के अंत में स्वयंभूरमण नाम का समुद्र आया हैं और इस समुद्र की जगती पूर्ण हुई कि (इसी समुद्र की पूर्व दिशा की वेदिका से लेकर पश्चिम वेदिका पर्यन्त तक एक राजलोक प्रमाण का) तिर्च्छालोक समाप्त होता है और उसके बाद अलोकाकाश का शुभारंभ होता है।

★ द्वीप अर्थात् क्या ? जिसके चारों और पानी हो और बीच में बसने योग्य भूमि हो उसे "द्वीप" कहते हैं। (१) हरिवंशपुराण-५/७३०

101

लाखों माईल प्रति घंटे की गति से सूर्य को चारों और पृथ्वी के चक्कर लगाने की मान्यता माननेवाले यह स्पष्टीकरण दे नहीं पाये कि यदि पृथ्वी अरबो वर्षो से इस प्रकार प्रदक्षिणा करती रही है तो वह फिर रुक क्यों नहीं जाती है ? न्युटन की गति के प्रथम नियमानुसार गतिशील वस्तु यदि शून्यावकाश हो तो वह अनंतकाल तक गतिशील ही रहेगी, लेकिन वैज्ञानिक तो मानते है कि अवकाश में ईथर भरा हुआ है। इस पदार्थ के साथ घर्षण के कारण पृथ्वी की गति कम हो जानी चाहिए और अंत मे रुक जानी चाहिए। ऐसा क्यो नहीं होता है ? इसका जवाब किसी भी वैज्ञानिक के पास नहीं हैं।

प्रत्येक समुद्र के पानी का स्वाद....

प्रत्येक समुद्रवर्ती जल का स्वाद और मत्स्यादि का प्रमाण.....

पहला लवणसमुद्र, चौथा वारुणीवर समुद्र, पाँचवाँ क्षीरवरसमुद्र और छट्ठा घृतवर, इन समुद्रों का पानी अपने अपने नामों के अनुसार गुणवाले-अर्थात् भिन्न-भिन्न रसवाले हैं[1] अर्थात् लवण=खारा अतः खारापानी वाला वह लवणसमुद्र। वारुणीवर=मदिरा श्रेष्ठ अर्थात् श्रेष्ठ मदिरा (शराब) समान जल है।(चन्द्रहासादि उत्तम मदिरावाला परन्तु यहाँ की तरह बदबुदार बदबू फैलाते शराब जैसा नहीं।)[2] क्षीरवर=श्रेष्ठ दूध (Best Milk) जैसा स्वादवाला पानी जिसमें है वह[3]... (यह जल दूध तुल्य है लेकिन दूध के समान नहीं हैं दूध जैसा श्वेत वर्णवाला है। ४ सेर (सेर=४० तोला, Weight of 40 Talas.) दूध में से तीन सेर जलकर, सेर दूध रखकर उसमें शर्करा डालकर पीने से जैसी मिठास प्राप्त हो वैसी मिठासवाला यह पानी है। तथा चक्रवर्ती जैसे कि गाय के दूध से भी अधिक मिठास यह पानी पीनेवाले को लगता है। तथापि इस दूध से दूधपाकादि नहीं होता। इस समुद्र के उत्तम जल को इन्द्रादि देव परम तारक परमात्मा जिनेश्वरों के जन्मकल्याणक के विशिष्ट प्रसंग पर अभिषेक में उपयोग लेते हैं।) तथा घृतवर=उत्तम घी के समान स्वादवाला जल जिसमें होता है वह... (यह पानी घी के तुल्य अर्थात् घी नहीं परंतु उसके जैसे स्वादवाला होता है, क्योंकि घी जैसा होता तो उससे पूरी आदि तली जा सकती है, परंतु वैसा बनता नहीं है।)

दूसरा कालोदधि, तीसरा पुष्करवर और चरिम अर्थात् अंतिम स्वयंभूरमण ये तीनों समुद्र प्राकृतिक जल जैसे स्वादवाले हैं (अतिशय निर्मल, सुंदर और हल्का (आहार शीघ्र पचाए वैसा) और अमृत जैसी मिठासवाला पानी समझें।)[4] और शेष समग्र (असंख्यात) समुद्र स्वाभाविक इक्षु=ईख (Sugar Cane) के रस के समान आस्वादवाले हैं।[5] (यह पानी ईख के रस जैसा स्वादवाला, परंतु ईख का रस न समझें।[6] यह पानी चतुर्जातक (तज, इलाचयी, केसर और कालीमिर्च) वस्तु को, चार सेर ईख के रस में डालकर उबालते उबालते तीन सेर जल जाने पर एक सेर शेष रहने पर उसे पीने में, उसमें जिस प्रकार की मिठास का अनुभव प्राप्त हो, उससे अधिक मिठास इन सर्व समुद्रों के जल की जानें।)

इन सर्व समुद्रों में से लवणसमुद्र में उत्सेधांगुल के माप से ५०० योजन के, दूसरे कालोदधि समुद्र में ७०० योजन के और अंतिम स्वयंभूरमणसमुद्र के १००० योजन के उत्कृष्ट प्रमाणवाले व्हेल-मछली (मत्स्यादि) तथा मगरमच्छादि होते हैं। उससे अतिरिक्त शेष समुद्रों में उक्त प्रमाण से क्रमशः न्यून और भिन्न-भिन्न प्रमाणवाले मत्स्यादि होते हैं। ऊपर कथित तीनों समुद्रों में विशेषतः बहुत मत्स्य होते हैं, जबकी अन्य समुद्रों में अल्प मत्स्यादि होते हैं।

विशेष = लवणसमुद्र में ७,००,००० (सात लाख) कुलकोटि मत्स्य, कालोदधि में ९,००,००० (नौ लाख) कुलकोटि मत्स्य और स्वयंभूरमणसमुद्र में १२,५०,००० (साढे बारह लाख) कुलकोटि मत्स्य होते हैं।

(१) (A) बृहत्संग्रहणी सूत्र-७६/७७, (B) त्रैलोक्यदीपिका-९३/९४ (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, गाथा-९० (३) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, गाथा-९६ से ९९ (४) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, गाथा-८२, (५) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४ गाथा-१२१/१२२ (६) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२४, गाथा-११९/१२०

आज के वैज्ञानिक पृथ्वी के गोल होने के प्रमाण देते हुए बताते है कि एक स्टीमर या विमान पूर्व अथवा पश्चिम में प्रवास करे तब अंत में वहीं आ जाता है जहाँ से वह निकला था। इस प्रक्रिया को पृथ्वी की प्रदक्षिणा कहा जाता है और इसके लिए वैज्ञानिकों का कहना है कि यह संभव तब ही है, जब पृथ्वी गेंद (बोल) जैसी गोल हो। इस क्रिया को यदि ठीक से समझा जाय, तो स्पष्ट हो जायेगा कि गोल नहीं, बल्कि सपाट पृथ्वी की भी प्रदक्षिणा की जा सकती है।

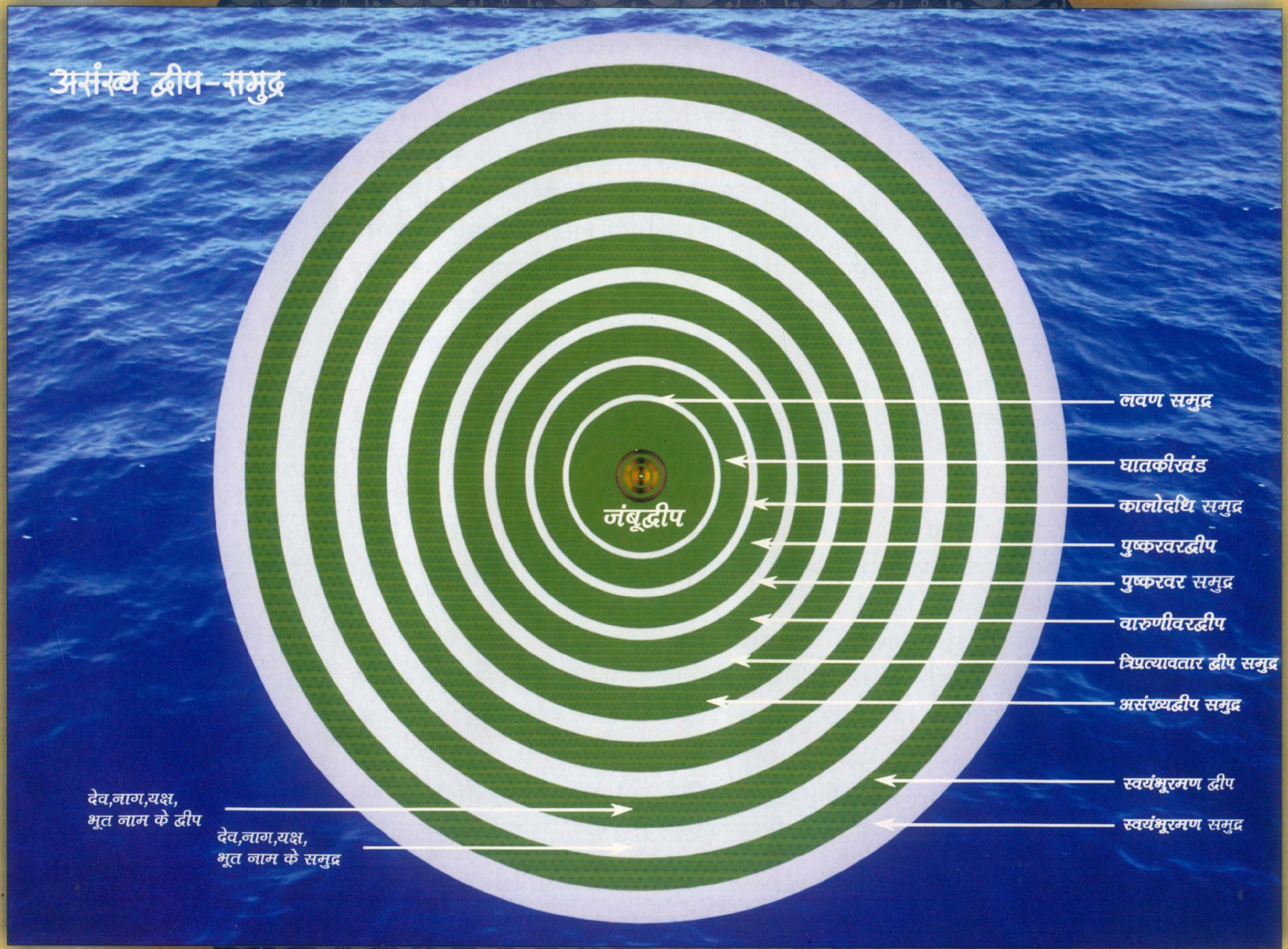
असंख्य द्वीप-समुद्र
जंबूद्वीप
लवण समुद्र
घातकीखंड
कालोदधि समुद्र
पुष्करवरद्वीप
पुष्करवर समुद्र
वारुणीवरद्वीप
त्रिप्रत्यावतार द्वीप समुद्र
असंख्यद्वीप समुद्र
स्वयंभूरमण द्वीप
स्वयंभूरमण समुद्र
देव,नाग,यक्ष,
भूत नाम के द्वीप
देव,नाग,यक्ष,
भूत नाम के समुद्र

तिर्च्छालोक में रहे हुए द्वीप-समुद्रों का प्रमाणादि....

क्रम	द्वीप का नाम	द्वीप का विस्तार (प्रमाणांगुल के माप से...)	क्रम	समुद्र का नाम	समुद्र का विस्तार(प्रमाणांगुल के माप से.)
१	जंबूद्वीप	१ लाख योजन	२	लवणसमुद्र	२ लाख योजन
३	धातकीखंड	४ लाख योजन	४	कालोदधिसमुद्र	८ लाख योजन
५	पुष्करवरद्वीप	१६ लाख योजन	६	पुष्करवरसमुद्र	३२ लाख योजन
७	वारुणीवरद्वीप	६४ लाख योजन	८	वारुणीवरसमुद्र	१२८ लाख योजन
९	क्षीरवरद्वीप	२५६ लाख योजन	१०	क्षीरवरसमुद्र	५१२ लाख योजन
११	घृतवरद्वीप	१,०२४ लाख योजन	१२	घृतवरसमुद्र	२,०४८ लाख योजन
१३	ईक्षुवरद्वीप	४,०९६ लाख योजन	१४	ईक्षुवरसमुद्र	८,१९२ लाख योजन
१५	नंदीश्वरद्वीप	१६,३८४ लाख योजन	१६	नंदीश्वरसमुद्र	३२,७६८ लाख योजन
१७	अरुणद्वीप	६५,५३६ लाख योजन	१८	अरुणसमुद्र	१,३१,०७२ लाख योजन
१९	अरुणवरद्वीप	२,६२,१४४ लाख योजन	२०	अरुणवरसमुद्र	५,२४,२८८ लाख योजन
२१	अरुणवरावभासद्वीप	१०,४८,५७६ लाख योजन	२२	अरुणवरावभाससमुद्र	२०,९७,१५२ लाख योजन
२३	अरुणोपपातद्वीप	४१,९४,३०४ लाख योजन	२४	अरुणोपपातसमुद्र	८३,८८,६०८ लाख योजन
२५	अरुणोपपातवरद्वीप	१,६७,७७,२१६ लाख योजन	२६	अरुणोपपातवरसमुद्र	३,३५,५४,४३२ लाख योजन
२७	अरुणोपपातवरावभासद्वीप	६,७१,०८,८६४ लाख योजन	२८	अरुणोपपातवरावभाससमुद्र	१३,४२,१७,७२८ लाख योजन
२९	कुंडलद्वीप	२६,८४,३५,४५६ लाख योजन	३०	कुंडलसमुद्र	५३,६८,७०,९१२ लाख योजन
३१	कुंडलवरद्वीप	१,०७,३७,४१,८२४ लाख योजन	३२	कुंडलवरसमुद्र	२,१४,७४,८३,६४८ लाख योजन
३३	कुंडलवरावभासद्वीप	४,२९,४९,६७,२९६ लाख योजन	३४	कुंडलवरावभाससमुद्र	८,५८,९९,३४,५९२ लाख योजन
३५	शंखद्वीप	१७,१७,९८,६९,१८४ लाख योजन	३६	शंखसमुद्र	३४,३५,९७,३८,३६८ लाख योजन
३७	शंखवरद्वीप	६८,७१,९४,७६,७३६ लाख योजन	३८	शंखवरसमुद्र	१,३७,४३,८९,५३,४७२ लाख योजन
३९	शंखवरावभासद्वीप	२,७४,८७,७९,०६,९४४ लाख योजन	४०	शंखवरावभाससमुद्र	५,५४,९७,५५,८१,३८८ लाख योजन
४१	रुचकद्वीप•	१०,९९,५१,१६,२७,७७६ लाख योजन	४२	रुचकसमुद्र	२१,९९,०२,३२,५५,५५२ लाख योजन
४३	रुचकवरद्वीप	४३,९८,०४,६५,११,१०४ लाख योजन	४४	रुचकवरसमुद्र	८७,९६,०९,३०,२२,२०८ लाख योजन
४५	रुचकवरावभासद्वीप	१,७५,९२,१८,६०,४४,४१६ लाख योजन	४६	रुचकवरावभाससमुद्र	३,५१,८४,३७,२०,८८,८३२ लाख योजन
४७	भुजगद्वीप	७,०३,६८,७४,४१,७७,६६४ लाख योजन	४८	भुजगसमुद्र	१४,०७,३७,४८,८३,५५,३२८ लाख योजन
४९	भुजगवरद्वीप	२८,१४,७४,९७,६७,१०,६५६ लाख योजन	५०	भुजगवरसमुद्र	५६,२९,४९,९५,३४,२१,३१२ लाख योजन
५१	भुजगवरावभासद्वीप	१,१२,५८,९९,९०,६८,४२,६२४ लाख योजन	५२	भुजगवरावभाससमुद्र	२२,५१,१७,९९,८१,३६,८५,२४८ लाख योजन

इसके बाद इसी तरह असंख्य* द्वीप-समुद्र जाने के बाद सूर्य-सूर्यवर-सूर्यवरावभास नामक द्वीप-समुद्र आते हैं। तथा उसके बाद अनुक्रम से देवद्वीप-देवसमुद्र, नागद्वीप-नागसमुद्र, यक्षद्वीप-यक्षसमुद्र, भूतद्वीप-भूतसमुद्र और अंत में स्वयंभूरमण द्वीप एवं स्वयंभूरमण समुद्र आता है। • तथा यहाँ तक जंघाचारण मुनि जा सकते हैं।

★ यहाँ असंख्य की संख्या अर्थात् २ १/२ सूक्ष्म उद्धार सागरोपम के जितने समय होते हैं उतने सर्व द्वीप समुद्र जानने चाहिए।[१]

(१) (A) बृहत्क्षेत्रसमास-३, (B) त्रैलोक्यदीपिका-८५ (C) चैत्यवंदन महाभाष्य-६५३

Shorter studies in the science of Contemporary Religion P242. (Cj) P.18 "There also existed throughout upper India an ancient and highly organized religion, philosophical, ethical and severely ascetical viz. Jainsim, out of which clearly developed the early ascetical features of Brahiminism and Buddhism. Long before the Aryans reached the Ganges or even the saraswati, Jains had been taught by some 22 prominent Bodhas, saints or Teerthankaras, Prior to the 23rd Teerthankar parshwa of the 8th or 9th Century B.C."

- Major JGR Forlong

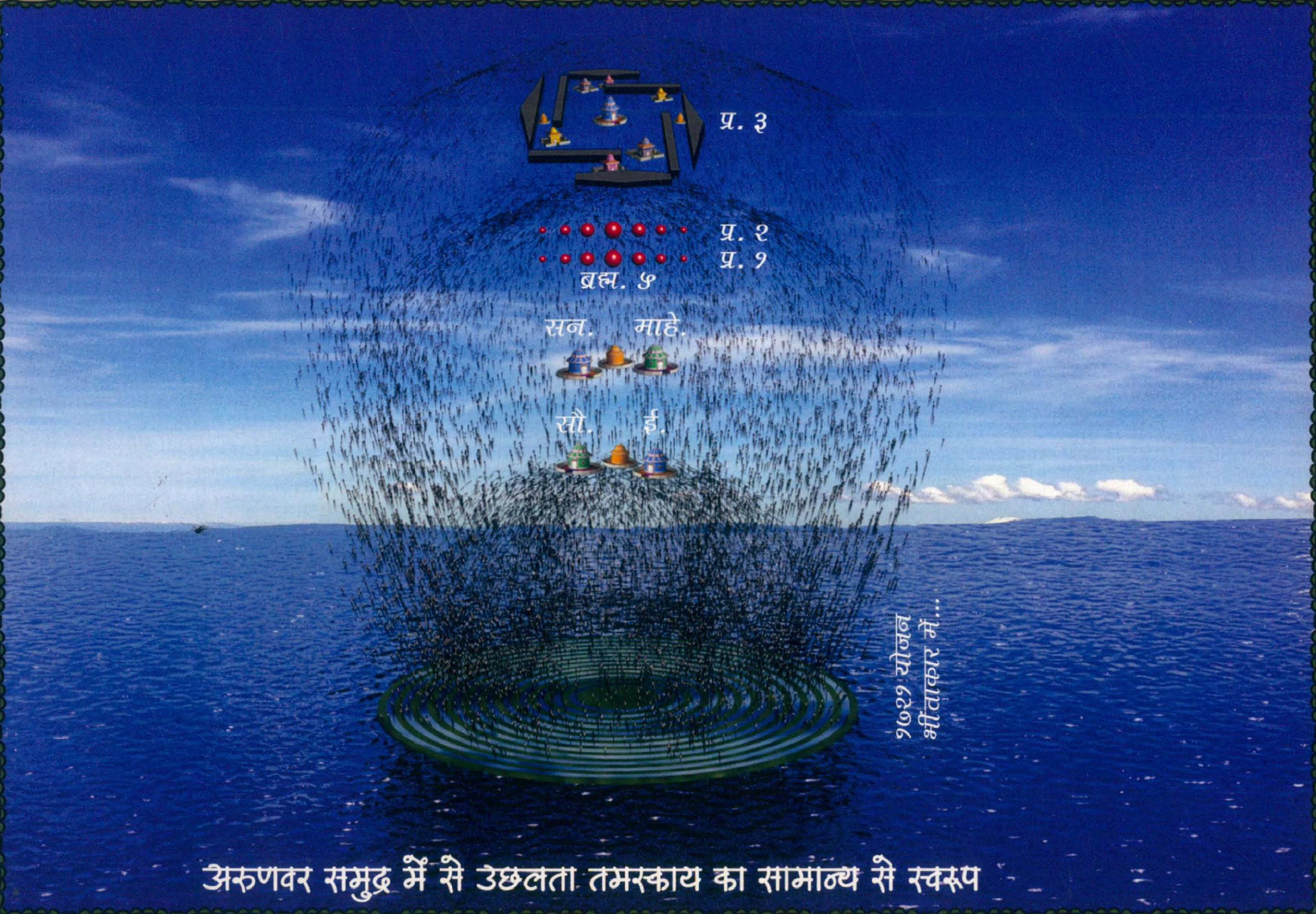

अरुणवर समुद्र में से उछलता तमस्काय का सामान्य से स्वरूप

तमस्काय का स्वरूप.....

इस जंबूद्वीप से लेकर तिर्च्छे असंख्य द्वीप-समुद्र में जाने के बाद अरुणवर नाम का द्वीप आता है, क्रमशः द्विगुण-द्विगुण विस्तारवाले द्वीप-समुद्र होने से असंख्य योजन के विस्तारवाले ये द्वीप है कि जो उससे भी द्विगुण विस्तार को धारण करते असंख्य योजन का अरुणवर समुद्र से घिरा हुआ है। अब इस बाह्य वेदिका के अंतिम विभाग से लेकर अरुणवर नाम के समुद्र में ४२,००० योजन के बाद जल के ऊपर के तल में ऊँचे महान अप्काय का विकार होता हैं और यह विकार तमस्काय* के नाम से महाघोर अंधकार के रूप में चारों और इस समुद्र की वलयाकृति से घिरा रहा हुआ है।

यह तमस्काय १,७२१ योजन ऊँचे भीत के आकार से रहता है। वहाँ से तिर्च्छा विस्तारवाला वह तमस्काय (अंधकार) का घेराव असंख्यात योजन का होता है। चतुर यह तमस्काय सौधर्मादि देवलोक को मानों अपनी कुक्षि में समा देता है तथा लगातार ऊँचा घुस रहा हो इस तरह मानों थक गया न हो इसलिए ब्रह्मलोक के तीसरे रिष्ट प्रतर पर जाकर रुक जाता है। नीचे से समभित्ती के आकार का होने के कारण वह तमस्काय वलयाकृति है, बीच में शरावसंपूट (उल्टा-सीधा कोड़िया) हैं। तथा ऊपर कुकड़े के पिंजरे के समान आकृति बनती है। श्री जिनेश्वर परमात्माने इसके आगमों में १३ नाम कहे हैं जो इस प्रकार से जाने (१) तमः (२) तमस्काय (३) अंधकार (४) महांधकार (५) लोकांधकार (६) लोकतमिस्त्र (७) देवांधकार (८) देवतमिस्त्र (९) देवारण्य (१०) देवव्यूह (११) देवपरिध (१२) देवप्रतिक्षोभ और (१३) अरुणोद वारिधि[१]।

सिद्धांत के पारगामी पुरुषोंने इस तमस्काय की विशालता का वर्णन कुछ इस तरह से किया है कि... कोई महर्द्धिक देव इस जम्बूद्वीप को मात्र ३ चपटी में २१ वार परिक्रमा (प्रदक्षिणा) लगा दे, तब उस ही गति से कोई तमस्काय को छः महिने में पार सकता है, जबकि कोई पार नहीं भी कर सकता है। इस तरह विशाल तमस्काय के अंदर विलास करते देव-असुर और नागकुमार देवों से रचित बिजली सहित के मेघ प्रगट करते है, गर्जना करते है और बिजली चमकती है। यद्यपि मनुष्यक्षेत्र के बाहर मेघ-गर्जनादि और वृष्टि आदि शास्त्रों में नहीं कहा, फिर भी वहाँ देवता द्वारा रचना समझना। जिस तरह से मनुष्य अपनी सहज शक्ति से मानुषोत्तर पर्वत को पार नहीं कर सकता परंतु विद्यालब्धि अथवा देवसहाय से पार कर सकता है ठीक उसी तरह से बादलों में अग्नि के अभाव होने से वहाँ बिजली अथवा देदीप्यमान तेजस्वी पुद्गल केवल दैवी प्रभाव से समझ लेना।[२]

इस तमस्काय में देश, गांव, पुरादि नहीं है, और चंद्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारादि भी नहीं है। तथा जो सूर्य - चन्द्र की किरण यहां आती हैं वे भी इस अंधकार रूप दुर्जन में रहे सद्गुणों के समान निस्तेज व नहीवत् बन जाते हैं। इससे ही अत्यंत काला, अगाध, भयंकर यह तमस्काय अति रौद्र होने से देखने मात्र से ही रोम खड़े कर देता है, अन्य की बात तो जाने दो परंतु देव भी इसे प्रथमबार तो देखकर कंपायमान हो उठता है, फिर स्वस्थ होकर शीघ्र गति से इसे पार कर देता है अर्थात् इसमें से बाहर निकल जाता हैं।[३]

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, गाथा-१८९ से १९५ (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२७, गाथा-१८१ से १८४ (३) भगवती सूत्र, शतक-६, उद्देश ५, सूत्र - १ से १६

ईसाई पादरियों की दलील थी कि बाइबल में लिखा है कि आकाश में सात ग्रह है, इसलिए गुरु के उपग्रह नहीं हो सकते है। अपनी दूरबीन के द्वारा गैलीलियो लोगों को गुरु के उपग्रह बताता था और तब चर्च के पादरी दलील करते थे कि ये उपग्रह तो शैतान द्वारा सृजित मायाजाल है। फिर गैलीलियो ने दूरबीन से चन्द्र की सतह पर दाग देखे। उसने घोषित किया कि ये पहाड व गड्ढे है। उसने यह भी बताया कि चन्द्र स्वयं प्रकाशित नहीं है वह तो सूर्य के प्रकाश को ही परावर्तित करता है। गैलीलियो के पास उसकी इस मान्यता के लिए कोई तर्क या आधार नहीं था। किसी प्रयोग अथवा किसी सांयोगिक प्रमाण के द्वारा उसने इसे सिद्ध नहीं किया था। यह बाइबल की उस पंक्ति के विरुद्ध था कि "चन्द्र एक बड़ा प्रकाश है।" गैलीलियो की इस बात को वैज्ञानिक नहीं बल्कि धार्मिक आधार पर ही चुनौती दी गई थी।

ज्योतिषचक्र का स्वरूप
शनि
मंगल
गुरु
शुक्र
बुध
नक्षत्र
चंद्र
सूर्य
तारा
९०० योजन
८९७ योजन
८९४ योजन
८९१ योजन
८८८ योजन
८८४ योजन
८८० योजन
८०० योजन
७९० योजन

ज्योतिष चक्र का स्वरूप.....

अब इस तिर्यंग् लोक में हमेशा प्रतिष्ठित होकर रहनेवाले चराचर ज्योतिष चक्र का मैं वर्णन कर रहा हूँ। मेरुपर्वत के मध्य आठप्रदेश स्वरूप-समभूतल से ऊँचे ७९० योजन के बाद ज्योतिष चक्र प्रारम्भ होता है। तथा ऊपर ११० योजन में संपूर्ण होता है अर्थात् समभूतल से ९०० योजन पर समाप्त होता है।

यह ज्योतिष चक्र मेरुपर्वत से १,१२१ योजन दूर रहकर संपूर्ण गोलाकार रूप में परिभ्रमण करता है। तथा इसी तरह अलोक से भीतर (अंदर) भी १,१११ योजन दूर ज्योतिष चक्र स्थिर रहा हुआ है।

ज्योतिष चक्र में सबसे नीचे तारामंडल होता है जो कि समतल भूमि से ७९० योजन ऊँचा होता है। इससे १० योजन उपर सूर्य मंडल है, अर्थात् वह समतलभूमि से ८०० योजन ऊँचा होता है। सूर्यमंडल से ८० योजन उपर चंद्र मंडल आता है जो समतल भूमि से ८८० योजन ऊँचा होता है। नीचे के तारा मंडल से ९० योजन ऊपर चंद्र का मंडल है और उससे २० योजन ऊपर, ऊपर का तारा मंडल है। ये ऊंचे तारामंडल समतल भूमि से ९०० योजन है और नीचे तारा मंडल से ११० योजन में हैं। इस विषय में संग्रहणी की वृत्ति आदि में इसके अनुसार विशेषता है... कि...चन्द्र से ४ योजन दूर नक्षत्र मंडल है, नक्षत्र मंडल से ४ योजन दूर बुध का मंडल है, बुध के मंडल से ३ योजन दूर शुक्र मंडल है, शुक्र मंडल से ३ योजन दूर गुरु का मंडल है, गुरु के मंडल से ३ योजन दूर मंगल का मंडल है और मंगल के मंडल से ३ योजन दूर शनि का मंडल है। अर्थात् संपूर्ण ज्योतिष चक्र का भ्रमण का विस्तार ११० योजन में फैला हुआ है।[१]

इस ज्योतिष चक्र में चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा ये पांच प्रकार के ज्योतिष देवता अपने अपने विमान में भ्रमण करते हैं।[२]

ज्योतिष चक्र में सबसे मंद गतिवाला चन्द्र का विमान होता है, उससे शीघ्र गतिवाला सूर्य का विमान है। उससे भी तेज गतिवाले ग्रह के विमान हैं, उसमें विशेष यह है कि ग्रहों में बुध ग्रह सबसे अल्प गतिवाला है, उससे शीघ्र गतिवाला शुक्र ग्रह हैं। उससे शीघ्र गति मंगल की है और इससे शीघ्र गति बृहस्पति की है और इससे भी शीघ्र गति शनैश्चर (शनि) की है। इन नक्षत्रों की गति से भी अधिक गति तारा के विमानों की कही गई हैं।

इन ज्योतिष देवों के विमान उद्योतशील हैं। उन विमानों में जो रहे हुए है, उनको ज्योतिष या ज्योतिष्क देव भी कहते हैं। ज्योतिष्क और ज्योतिष शब्द का अर्थ एक ही है। इन ज्योतिष्क देवों के मुकुटों में जो जो चिह्न रहा करते है, वे मस्तक के मुगुटों से समलंकृत तथा प्रभामण्डल के समान एवं उज्ज्वल वर्ण के होते हैं। तथा वे यथायोग्य सूर्यमण्डल, चंद्रमण्डल और तारामण्डल के रूप में हैं।

ज्योतिष देवगण इन चिह्नों से युक्त प्रकाशमान हैं। उनके मस्तक पर जो मुकुट है उनमें उज्ज्वल देदीप्यमान सूर्यमंडल के सदृश सूर्य के तथा चन्द्रादि, एवं ताराओं के मंडल रूप अपने-अपने चिह्न यथाक्रम से चिह्नित हैं। तथा इनका अस्तित्व समस्त द्वीप-समुद्रों में हैं।

(१) बृहत्संग्रहणी सूत्र-५०/५१ (२) (A) स्थानांगसूत्र, स्थान-५, उद्देशा-१ (B) तत्त्वार्थ सूत्र-४/१३ (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२५ श्लोक-१ से २८ (D) त्रिलोकसार-३०३ (E) त्रिलोकप्रज्ञप्ति-७/७

पृथ्वी को गेंद जैसी गोल माननेवाले वैज्ञानिक, पृथ्वी के गोले पर उत्तरध्रुव के एक ओर साईबीरीया ओर दुसरी ओर केनेडा का प्रदेश बताते है। यह मान्यता भ्रम उत्पन्न करती है। वास्तव में रुस का साइबीरीया भाग, अलास्का, ग्रीनलैंड, केनेडा, नार्वे, आईसलैंड प्रदेश, उत्तरध्रुव की दक्षिण, पूर्व व पश्चिम दिशा में स्थित है। इसमें से कोई भी प्रदेश उत्तरध्रुव के उत्तर में नहीं है। यदि वास्तव में ऐसा होता तो विमान में बैठकर उत्तरध्रुव की उत्तरी दिशा में प्रवास कर रुस से केनेडा और युरोप से अमेरिका की यात्रा की जा सकती थी, लेकिन आज तक कोई भी इस प्रकार की मुसाफिरी नहीं कर सका है। इससे मालुम होता है कि आज भी कोई भी मनुष्य उत्तरध्रुव की उत्तर दिशा में नहीं जा सकता है।

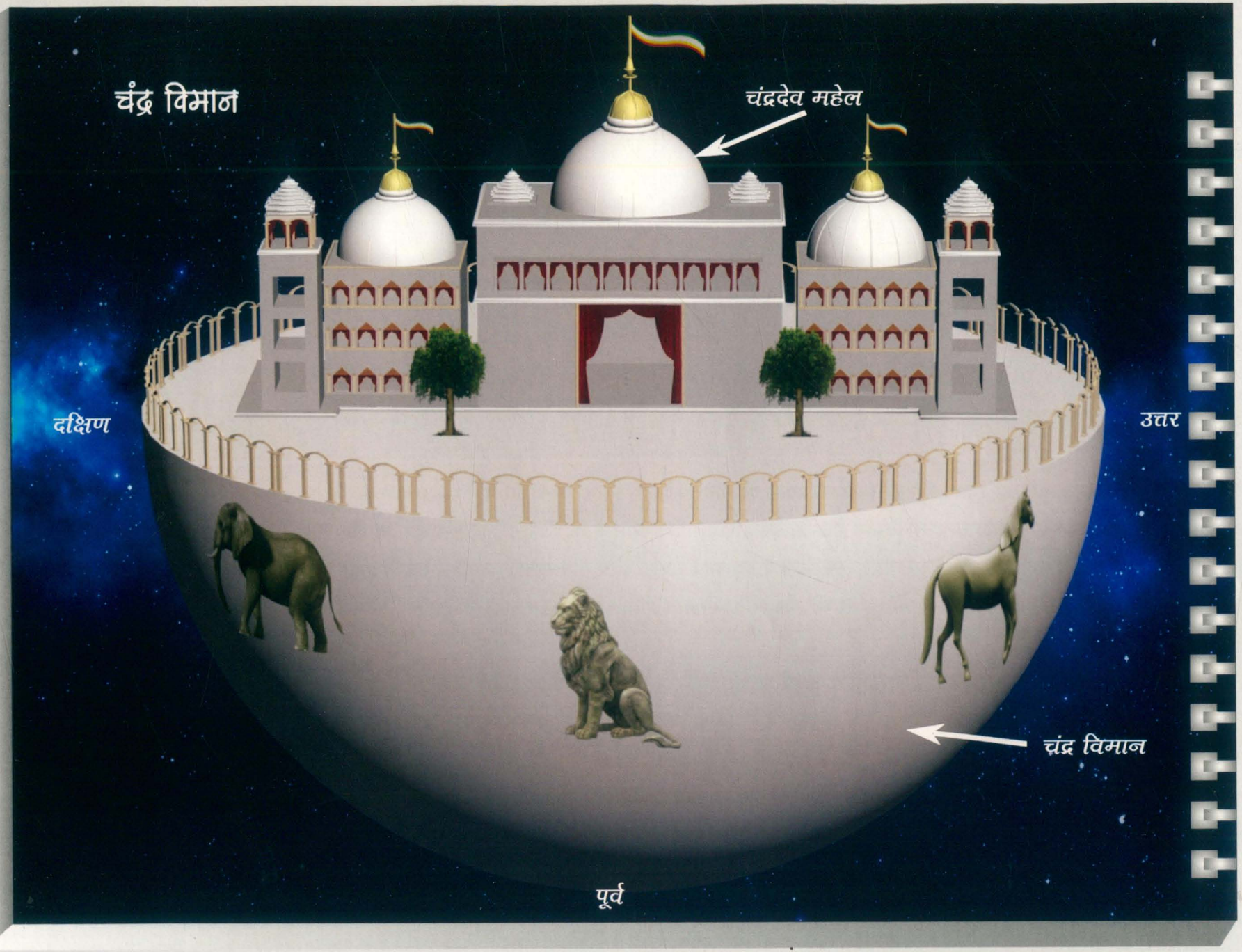
चंद्र विमान
चंद्रदेव महेल
दक्षिण
उत्तर
चंद्र विमान
पूर्व

ज्योतिष चक्र के विमानों का आकारादि....

ज्योतिष चक्र में रहे हुए चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारा के विमान ऊर्ध्वमुखी कोठा के आधे फल के समान आकार वाले होते हैं। यहां कोई शंका करता है कि... ज्योतिष्क के विमान आधा कोठा की आकृतिवाले कहते हैं उसमें जैसे कपित्थ (कैथ वृक्ष का फल) का आधा फल ऊंचा दूर रखने में आये तो ऊपर का भाग नहीं दिखने से अधोवर्ति लोगों को गोलाकार दिखता है, वैसे अति स्थूल भी सूर्य, चंद्र के विमान जब मस्तक के ऊपर के भाग में आते हैं तब और दूर अधोवर्ती लोगों को गोलाकार दिखता है, वह सम्यग् प्रकार से हैं, परंतु उदय और अस्त के समय में तो उसका संक्रमण तिर्च्छा होता हैं तो उस समय क्यों गोलाकार दिखता है ? यहाँ इस शंका का समाधान इस प्रकार का जानना... ये सूर्य-चंद्र के विमान संपूर्ण रूप में अर्ध कपित्थ (कैथ) फलाकार नहीं हैं, परन्तु इन विमानों की पीठ उस आकार से होती है। इन पीठ उपर रहे जो प्रासाद देव विमान हैं वह इस तरह रहे हुए हैं जिसके कारण से भूमि ऊपर से देखते पीठ साथ में वे प्रासाद गोलाकार दिखते हैं अनुभव होते हैं, अतः दूर रहनेवाले लोगों को चन्द्रादि के मंडल के आकार एकान्त में गोल ही दिखते हैं।

ये चन्द्रादि विमान आलम्बन रहित-आधार रहित और विश्राम रहित रूप स्वयमेव लगातार चलते रहते हैं। फिर भी कहे हुए आभियोग्य (नौकर) नामकर्म के प्रभाव से स्कंध-मस्तक के विस्तार को सिंहादि आकार को धारण करनेवाले, अपने सजातीय और हीन जातिवाले देवताओं में अपनी विशेषता प्रगट करने से अत्यन्त प्रसन्न होते हुए विमानो के नीचे नीचे रहकर आभियोगिक देवता हमेशा इन विमानों को वहन-उठाया करते हैं और अपना यह कार्य करने का अधिकार है, इससे वे सर्वदा प्रसन्न मनवाले रहते हैं।

ऐसा अनुभव प्रत्यक्ष रूप में दिखता है इसलिए असंगत नहीं है..... जैसे कि इस मनुष्य जगत में भी किसी का ऐसा नौकर तथा उस प्रकार के कर्माधीन दासत्व करता है फिर भी अपने सजातीय व अन्य लोग में अपना सुख वैभव आदि को दिखाया करता है कि "ऐसा विख्यात और बड़े मनुष्यों का जो स्वामी है और यह इसका माननीय है" ऐसा प्रभाव डालकर आनंदित बना नौकर रथादि वाहनों को जोडकर, उसके मालिक की सेवा करता है, फिर भी आनंद व गौरव का अनुभव करता हैं।

चलो मित्रो ! अब हम देखते हैं ये आभियोगिक विमान वाहक देव कैसे और कितने वहन करते है ?...

सुभग अग्रभागवाले, गाय का दूध, फेन, चन्द्र, दही, शंखादि पदार्थों के समान अत्यंत उज्ज्वल, तिक्ष्ण, गोलाकार, स्थिर, स्थापित दाढाओं से अंकुरित मुखवाले, रक्तकमल दल के आकारवाली जीभवाले, लालित्यसभर तालु प्रदेशवाले, मधु के पिंड समान पीली आंखोंवाले, पूर्ण पृष्ठस्कंध से शोभते, सुलक्षणोपेत स्वच्छ केसरावाले, दीर्घ पूंछ की शोभा से युक्त, सुवर्णमय विशिष्ट से जुडा हुआ, लीला सहित गति करनेवाला, उछलते वीर्य-बल-पराक्रमवाले, आनंददायक सिंहनाद द्वारा दशों दिशाओं को भरनेवाले सिंहरूपी चार हजार (४०००) देवता पूर्व दिशा में चन्द्रविमान का वहन (उठाने का) कार्य कर रहे हैं।[१]

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२५, श्लोक-३२ से ६५

अमेरिका की "फ्लेट अर्थ सोसायटी" पृथ्वी, सूर्य व चंद्र के बारे में जो भी मान्यता रखती है, उसके मूल में ईसाइयों का पवित्र ग्रंथ बाईबल है। ओल्ड टेस्टामेन्ट के कई उद्धरण यही दर्शाते है कि पृथ्वी सपाट है। चार्ल्स जोन्सन का कहना है कि कोपरनिकस का पृथ्वी को गेंद जैसा मानने का सिद्धांत ईसा मसीह का अपमान है। यदि यह सच है तो फिर पूरी बाईबल ही एक बड़ा मजाक है। फिर भी चार्ल्स जान्सन कहते है कि बाईबल नहीं, बल्कि मैने स्वयं की सामान्य बुद्धि से यह जाना है कि पृथ्वी समतल है। जब में विद्यालय में अध्ययन करता था, तब भी मुझे यह विचार आया था। आज भी दुनिया के कई प्रखर व्यक्ति यही मानते है कि पृथ्वी सपाट है, इसलिए इस सोसायटी (फ्लेट अर्थ सोसायटी) की तरफ से "फ्लेट अर्थ न्युझ" नामक पत्रिका भी प्रकाशित होती है। जीसे आप GOOGLE में सर्च कर देख सकते है।

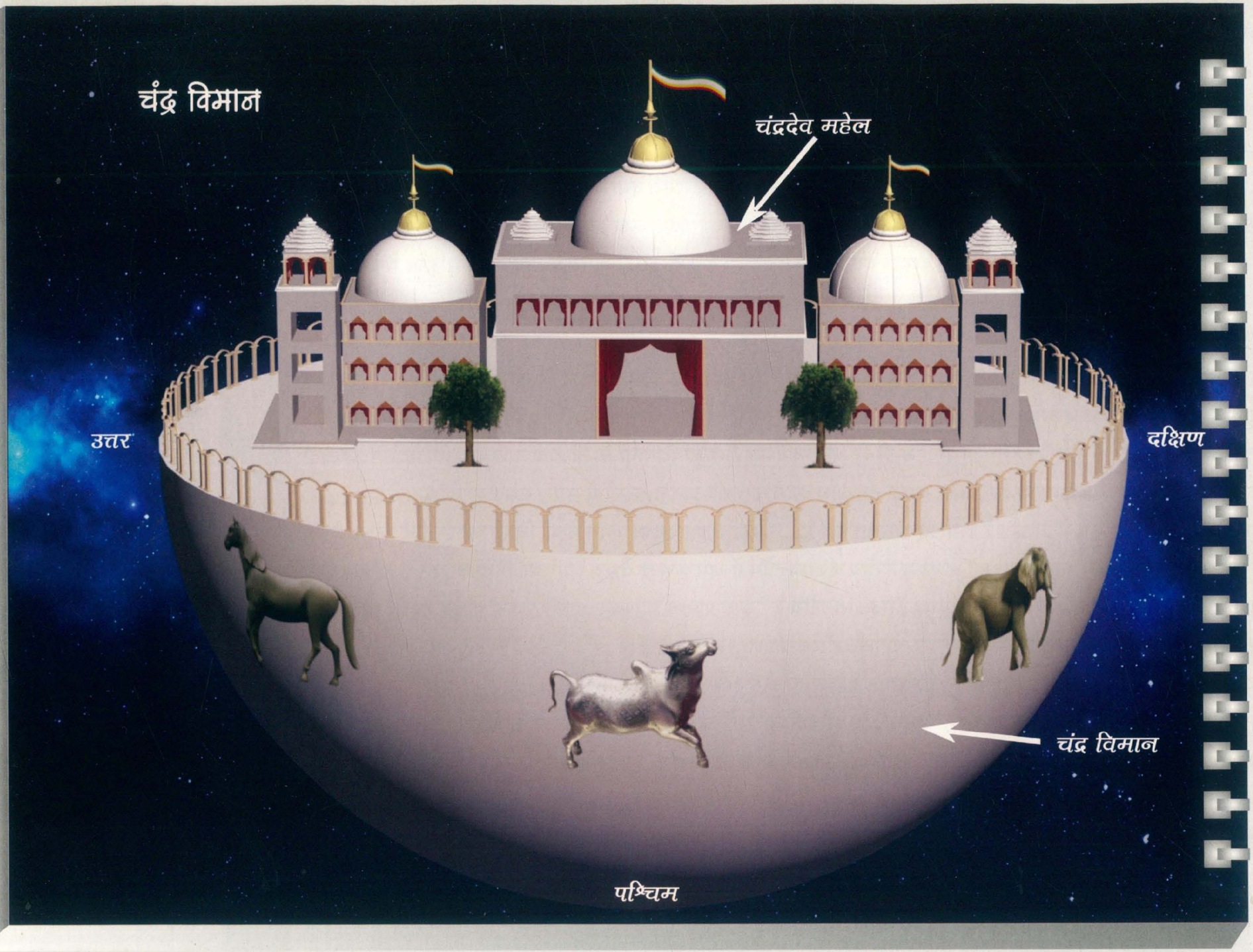
चंद्र विमान
चंद्रदेव महेल
उत्तर
दक्षिण
चंद्र विमान
पश्चिम

सूर्य-चंद्रादिक के आभियोगिक विमान-वाहक देव.....

विशाल वज्रमय कुंभस्थल से बहुत शोभायमान, इच्छानुसार कुंडलाकार से मरोडी हुई ऊँची सुंढ से मंडित, सुवर्ण विभूषित कर्ण के प्रांत विभाग से सुशोभित, कांचन स्वर्ण से सजाया हुआ दंतशूल के अंत विभाग से शोभायमान, अति सिंदुर से जिसका कपाल विभाग रंगा गया है ऐसे चलायमान चामर से शोभावाले, सुवर्ण की घूंघरुयुक्त मणिमय कंठ भूषण से शोभायमान, चांदी की रस्सी में लटकते घंट युगल के ध्वनि से सुंदर दिखते वैडुर्यमय दंड उपर स्थापित हुए, अत्यंत तेजस्वी वज्र रत्नमय अंकुश धारण करनेवाले, बारंबार चलती फिरती पूंछडी से शोभते, पुष्ट, महाउन्नत कछुए के समान पैर वाले, लालित्यपूर्ण गतिवाले अत्यंत पराक्रम से सहित ४००० की संख्या में गजस्वरूपी देवता मेघ के समान गर्जना करते दक्षिण दिशा में रहकर चन्द्र के विमान को वहन करते हैं।

पश्चिम दिशा में वृषभरूपी देवता चन्द्र के विमान को वहन करते हैं जो सुभग है मजबूत स्कंध से सुंदर है तथा लोहे के घन समान स्थूल शरीरवाले हैं, पूर्ण लक्षण युक्त हैं, अत्यंत सुंदर होठ धारण किए है। कमनीय और कुछ नमे हुए मुखवाले है उनकी रोमराजी अत्यन्त स्निग्ध और तेजस्वी हैं, उनकी कमर ओर पृष्ट गोलाकृति है, उनका कटीप्रदेश देखने योग्य है, उनका स्कंध मांस युक्त है, लम्बे पूच्छ से दर्शनीय है, उनके सींग के अग्रभाग एक समान और अति तिक्ष्ण है, अनेक तरह की गति में विशारद है। सुवर्ण सदृश जीभ और तालुवाले हैं, वज्र को भी जीते ऐसे कठोर खुरवाले हैं, उनके दांत स्फटिक के समान उज्ज्वल है, गंभीर और भेदन करनेवाली गर्जना है, सोने के आभूषण तथा रत्न की घुंघरुवाली माला उन्होंने धारण किए हुए है एसे ४००० वृषभ (बैल रूप) देवता होते हैं।

चन्द्र के विमान की उत्तर दिशा की ओर ४००० अश्वरूप में धारण करते देवता विमान को वहन करते है। जो अत्यंत प्रभायुक्त हैं, श्वेत वर्णवाले है, युवान देहवाले हैं, पुष्ट और उन्नत है, मल्लिका (एक प्रकार की चमेली) के पुष्प के समान शुभ आंखोंवाले, साक्षात् मानों गरुड के बड़े भाई समान विशालकाय और बलिष्ठ है। अलग-अलग प्रकार की गति के अभ्यासवाले है तथा पवन जैसी वेग गतिवाले हैं, दौड़ना-कुदना-उल्लंघन करना-क्रीडा करना आदि में श्रम को जीत गये हैं, उनके सर्व अंग लक्षणों से युक्त हैं, उनकी केसर प्रशस्त और फैली हुई है, चलते पूच्छ रूपी चमर से घोडे में अपने राजरूप-अग्रिमता-विशिष्टता को दिखाता है, उनके खुर, जीभ और तालु स्वर्णमय है, रत्नमय अलंकार और मुख के ललाट के आभूषण द्वारा वे रमणीय हैं, मस्तक पर रही कलगी को गुच्छा से मानों शिखर वाला हो ऐसा आभास होता है और हर्ष पूर्वक किया हुआ हिनहिनाट शब्द द्वारा चारों तरफ आकाश को पूर्ण करते उत्तर दिशा के अश्वरूप देवता होते हैं।

इस तरह से सिंहादि की आकृति १६,००० देव हमेशा चन्द्र के विमानों को वहन करते (उठाते) हैं। इसी दिशाओं के क्रम से सिंहादि आकृति को धारण करनेवाले उतने ही १६,००० देव सूर्य के विमान को वहन करते हैं। ग्रह के विमानों को उसी प्रकार की आकृतिवाले देवता प्रत्येक दिशा में २,०००-२,००० कुल मिलाकर ८,००० देवता वहन करते हैं। नक्षत्रों के विमानों को भी उसी प्रकार के आकृतिवाले प्रत्येक दिशा में १,०००-१,००० देवता वहन करते है, इस तरह कुल मिलाकर चार दिशा में ४,००० देवता वहन करते है। तथा प्रत्येक दिशा में ५००-५०० देवता सिंहादि की आकृतिवाले तारा के विमानों को वहन करते हैं। चारों दिशा में कुल मिलाकर २,००० देवता वहन करते हैं।[१]

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२५, श्लोक-६६ से ९०

सामान्य रूप से हवा में जो विमान उडाए जाते है, वे ४२०० से ४५०० फूट की ऊंचाई पर उड़ते है। अत्याधुनिक बिजनेस जेट के उत्पादनों का दावा है कि उनका विमान ५०,००० फूट की ऊँचाई पर उड़ सकता है। आज तक कोई भी विमान ८५००० फूट अथवा २५ कि.मी. ऊंचाई तक नहीं पहुंच सका है। यह ८५,००० फूट का रिकार्ड एस.आर.-७१ ब्लेकवर्ड विमान के नाम पर है नासा का हेलीयस नामक मानव रहित विमान भी इस ऊंचाई तक पहुंच सका है। संक्षेप में हम यह कह सकते है कि अधिकांश विमान पृथ्वी के सबसे नीचे के आवरण ट्रोपोस्फेयर में उड़ते हैं। कुछ ही विमान स्ट्रेटो स्फेयर तक जा पाते है, लेकिन उसके ऊपर कोई विमान नहीं जा सकता है, इस बात से एक बात विचारणीय है की कोई भी देशवाले यदि युँ कहे की हमारा यान चन्द्रमां पर गया है, तो वह बात अत्यंत संदिग्ध है।

सूर्य - चंद्र की तीन पर्षदाएँ

सूर्य-चंद्र की तीन पर्षदाएँ.....

ज्योतिष चक्र के अधिपति चंद्र और सूर्य नामक बड़े पुण्यशाली दो देवता हैं। उनके ४००० सामानिक देव, १६,००० आत्मरक्षक देव होते है तथा ३ प्रकार की पर्षदाएं तथा ७ प्रकार की सेना और ७ सेनापति, परिवार युक्त ४ अग्रमहिषीयाँ और ज्योतिषी के करोड़ों विमानों का अनुशासन करते हैं।

इस चन्द्र और सूर्य की जो तीन पर्षदाएँ हैं वो ३ प्रकार (१) बाह्य (२) मध्यम और (३) अभ्यंतर पर्षदा उसमें जो अभ्यंतर पर्षदा है उसमें ८,००० देव है, जो आधे पल्योपम आयुष्य की स्थितिवाले होते हैं। मध्यम पर्षदा में १०,००० देव है, जो कुछ कम पल्योपम स्थितिवाले होते हैं, और बाह्य पर्षदा में १२,००० देव है वे साधिक पल्योपम का चौथा भाग आयुष्य धारण करते हैं।

इन तीनों पर्षदा (सभा) के नाम अनुक्रम से (१) तुम्बा (२) त्रुटिता और (३) पर्वा हैं। इन तीन सभा का वर्णन शास्त्रों में इस प्रकार से मिलता है... कोई विशेष कार्य आ जाये उस समय इन्द्र महाराज जिस सभा के साथ शुद्ध रूप में गहन-गहरा-गंभीर मंत्रणा-चिंतन-विचार करते है, वह गौरव संपन्न सभा को "अभ्यंतर पर्षदा" कहते है।

जो मध्यम पर्षदा होती है वह बहुत गौरवशाली नहीं होती क्योंकि मध्यम पर्षदा के साथ इन्द्र महाराजा जो अभ्यंतर पर्षदा के साथ निर्णय किया होता है उसे बताकर यह कार्य करने से गुण है, यह कार्य करने जैसा नहीं है अथवा यह कार्य करने से नुकसान है इस तरह पूर्व में विचारी हुई बातों को फिर से विचारणा करना वह "मध्यम पर्षदा" कहलाती हैं।

जिसको विचारणा और गौरव से दूर किया जाता है उन्हें "बाह्य पर्षदा" कहते है। जहाँ इन्द्र महाराजा द्वारा "तुम्हें ऐसा कार्य करना है" ऐसी एक मात्र आज्ञा ही होती है। इस प्रकार भिन्न रूप से तीन सभा का वर्णन कहा।[१]

दूसरी रीति से विचारें तो अभ्यंतर पर्षदा अर्थात् जब इन्द्र महाराजा उन्हें बुलाते हैं तभी वह हाजीर होते हैं अन्यथा नहीं होते। मध्यम पर्षदा अर्थात् इन्द्र जब बुलाते अथवा न भी बुलाते तो भी चली आती है। बाह्य पर्षदा अर्थात् जो इन्द्र के बुलाए बिना भी चली आती है।

अढाईद्वीप में आये हुए चन्द्रादि-५ का संग्रह... यंत्र...

क्रम	नाम	चन्द्र	सूर्य	ग्रह	नक्षत्र	तारा
१	जम्बूद्वीप में	२	२	१७६	५६	१३,३९,५०,००,००,००,००,००,००,०००
२	लवणसमुद्र में	४	४	३५२	११२	२६,७९,००,००,००,००,००,००,००,०००
३	धातकीखण्ड में	१२	१२	१,०५६	३३६	८,०३,७०,००,००,००,००,००,००,००,०००
४	कालोदधिसमुद्र में	४२	४२	३,६९६	१,१७६	२,८१,२९,५०,००,००,००,००,००,००,०००
५	पुष्करवरद्वीप में	१४४	१४४	१२,६७२	४,०३२	९६,४४,४०,००,००,००,००,००,००,००,०००
	सर्वसंख्या =	२०४	२०४	१७,९५२	५,७१२	९,७५,६९,१८,००,००,००,००,००,००,००,०००

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२५, श्लोक-११८ से १३४

वैज्ञानिक हमें बताते है कि चन्द्रमां व पृथ्वी की दुरी लगभग ३,८४,००० कि.मी. है इसका अर्थ हम यही लगाते है कि पृथ्वी की सतह से चन्द्रमां ३,८४,००० कि.मी. की ऊंचाई पर है। यह आंकडा यदि सत्य है तो चन्द्रमा पर किसी भी अंतरिक्षयान को भेजने के लिए हमें उसे आकाश में ३,८४,००० कि.मी. की ऊंचाई तक पहुँचाना होगा। परंतु वास्तविकता कुछ अलग ही है। वैज्ञानिक यह मानते है कि पृथ्वी गैंद जैसी गोल है और चन्द्रमां उसके चारों बाजु प्रदक्षिणा करता है इसलिए वे जो भी अंतरिक्षयान छोड़ते है, वह आकाश की ऊर्ध्व दिशा में मात्र १०० कि.मी. तक ही ऊपर जाता है और फिर क्षैतिजिक समानान्तर (होरिजेन्टल) दिशा में ३,८४,००० कि.मी. भेज कर मान लिया जाता है वह चन्द्रमां के आकाश में पहुँच गया है जो एक गंभीर भूल है।

चंद्रप्रभा
ज्योत्सनाभा
अर्चिमाली
प्रभंकरा
सूर्यप्रभा
आतपाभा
अर्चिमाली
प्रभंकरा

ज्योतिष चक्र के चन्द्रादि की अग्रमहिषियाँ (पट्टराणियाँ).....

चन्द्र की ४ अग्रमहिषी होती है। उसके नाम अनुक्रम से (१) चंद्रप्रभा (२) ज्योत्स्नाभा (३) अर्चिमाली और (४) प्रभंकरा है। वर्तमान काल में चंद्र की जो उपरोक्त बताई गई ४ अग्रमहिषी है उनका पूर्व जन्म का वृतांत कुछ इस प्रकार है... अपने नाम के अनुरूप चन्द्रप्रभा आदि नामवाली पिता की बड़ी पुत्रियां अरक्षुपुरी में रहती थीं। उनके माता का नाम चन्द्रश्री आदि अपने नामानुसार था। उन्होंने पुष्पचूला साध्वीजी के पास में और श्री पार्श्वनाथ भगवान के हाथ से दीक्षा ली थी। परंतु चारित्र की कुछ विराधनाएं कर पाक्षिक आलोचना किए बिना और अंत में संलेखना करके वहाँ से मरकर चन्द्र नामक विमान में चन्द्र की अग्रमहिषी रूप में उत्पन्न हुई है। जो अपने नाम के अनुसार नामवाले सिंहासन पर शोभते हैं और उनका आयुष्य चंद्र से आधा होता है। सूर्य की अग्रमहिषियों का भी चरित्र कुछ इसी प्रकार है, परंतु पूर्व जन्म में ये मथुरापुरी में रहनेवाली थीं। शेष सब पूर्व के समान हैं।

ये प्रत्येक पट्ट देवियों का अलग-अलग ४,००० देवियों का परिवार होता है, जो ये देवियाँ अति तेजस्वीनी होती है। ये पट्टरानियों (देवियों) के ४,०००-४,००० का कुल जोड़ १६,००० होता है, अतः चंद्र की १६,००० देवियां-पत्नियां होती है। तथा चन्द्र की जो पहली चार अग्रमहिषी देवियां कही है वे एक-एक भी अपने स्वामी की तथाप्रकार की इच्छा को देखकर रत समय में हास्य के लालित्य सभर, लीलापूर्वक अत्यंत विभ्रम को धारण करती अपने समान ४,००० देवियों को बनाती हैं (अर्थात् बना सकती है।)

इस प्रकार से चंद्रदेव के अंतपुर को आगम-सिद्धांत की परिभाषा में "त्रुटिक" कहते हैं।

ज्योतिष्केन्द्र सूर्य के अंतपुर की स्थिति भी इसी तरह है, देवी का परिवार तथा रूप बनाने की संख्या भी समान जानना।

सूर्य की अग्रमहिषी के नाम (१) सूर्यप्रभा (२) आतपाभा (३) अर्चिमाली और (४) प्रभंकरा है। अंतःपुर तथा उसके परिवार से नित्य घिरा हुआ ये सूर्य और चन्द्र अपने-अपने विमान के अन्दर सुखपूर्वक सुधर्म सभा में सूर्य और चन्द्र नाम के सिंहासन पर बैठकर सुन्दर बाजों के नाद से मिश्रित गीत सुनते हुए और सुंदर नाटक को देखते हैं इस प्रकार दिव्य दिव्य उपभोग को भोगते भाग्य से तेजस्वी उनके सैंकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाते है, उसे वे जान भी नहीं सकते हैं।

वहाँ नजदीक में रहे हुए श्री जिनेश्वर भगवान के अस्थि की आशातना के भय से ये सूर्य और चंद्र के इन्द्र सुधर्मा सभा के अंदर भोग नहीं भोगते हैं। यहाँ इस सुधर्मा सभा के अन्दर माणवक चैत्यस्तंभ में वज्रमय डब्बे में मोक्ष में गए हुए स्वयंभू श्री जिनेश्वरों की हड्डियाँ होती हैं। ये मोक्ष गये परमात्मा के अस्थि हैं वह सूर्य चंद्र और अन्य भी देवताओं को जिनेश्वरों के चैत्य के जैसे वंदनीय-पूजनीय और स्तवनीय होती हैं।

इसी तरह से ग्रह, नक्षत्र और ताराओं के भी ४-४ अग्रमहिषियाँ होती हैं, उनके नाम इस प्रकार से हैं (१) विजया (२) वैजयन्ती (३) जयंती और (४) अपराजीता। इसी नाम की इनकी ये अग्रमहिषियाँ होती हैं।[१]

(१) (A)क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२५, श्लोक-१४७ से १६७ (B) ज्ञाताधर्मकथांग-द्वीतीय श्रुतस्कंध

एक छोटा सा तिनका भी जो बिना सहारे आकाश में अद्धर नहीं रह सकता तो पत्थर का टुकडा अद्धर रहे ऐसी तो कल्पना भी गुरुत्वाकर्षण सिद्धांत को पढ़नेवाले तो कर ही नहीं सकते।

लेकिन देव-दैवी की ताकत क्या नहीं कर सकती ? वो सबकुछ कर सकती है। ३६ ईंच यानी की ३ फूट ऊंची आरस की जैन मूर्ति लगभग हजारों नहीं परंतु लाखों वर्षों से किसी भी प्रकार के आधार बिना अद्धर रही हुई है। शरु में यह मूर्ति जमीन से सैकडों फीट ऊंची थी। दशो दिसा में कोई भी आधार बिना आज भी यह मूर्ति - अंतरीक्ष पार्श्वनाथ भगवान की प्रतिमा, महाराष्ट्र राज्य के आकोला जिल्ले में शीरपुर गाँव में १ अंगुल ऊंची है। अंगलुछना (शरीर पोंछने का कपड़ा) आज भी भगवान के नीचे से आरपार निकल जाता है।

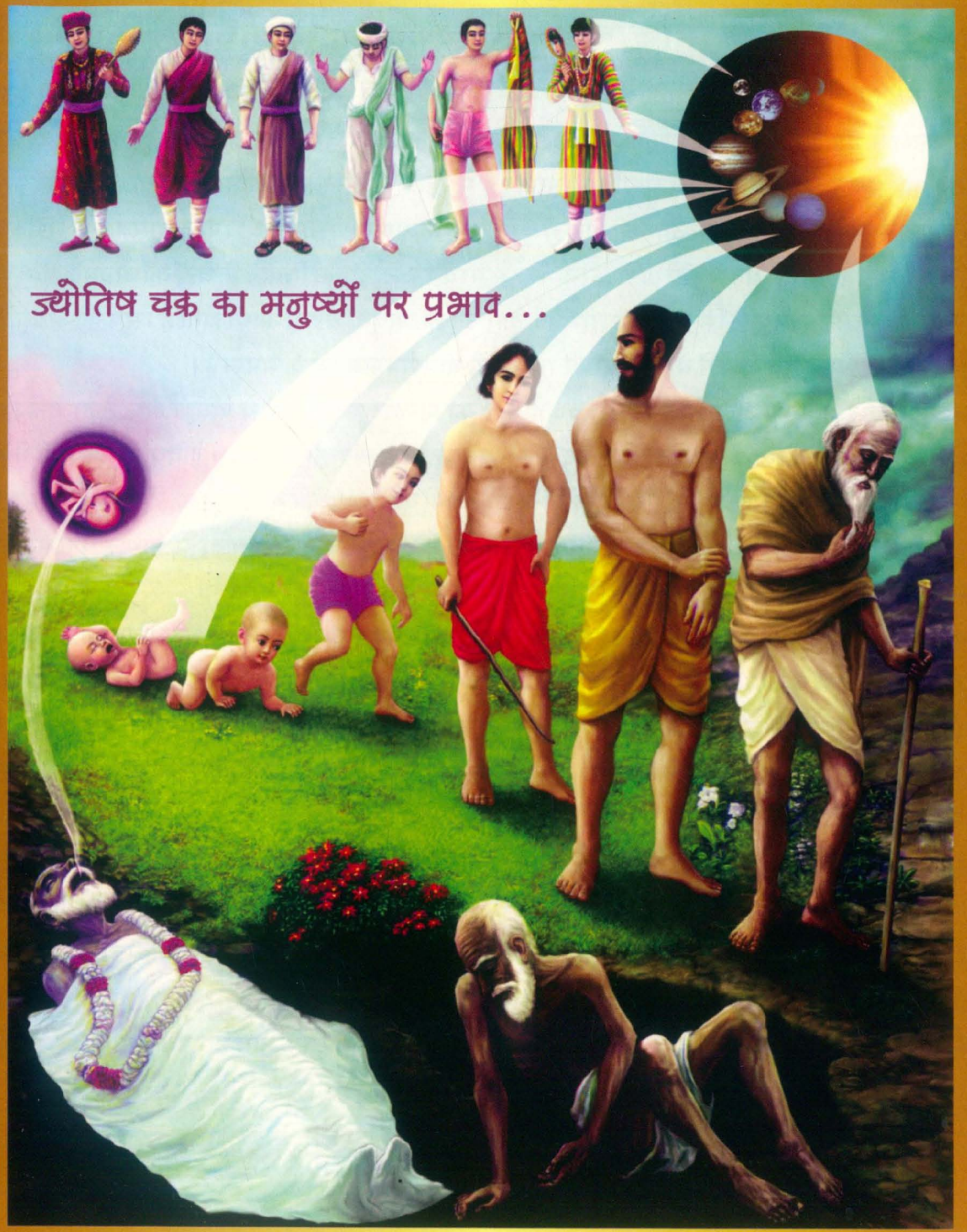
ज्योतिष चक्र का मनुष्यों पर प्रभाव...

ज्योतिष चक्र का प्रभाव मनुष्यों पर.....

चन्द्रादि ये ज्योतिषी प्राणी के जन्म समय में व कार्य के प्रारंभ में अथवा तो वर्ष-मासादि के प्रारंभ में जो अनुकूल हो तो उस उस राशी में गये प्राणियों को प्राय: सुख देता है और प्रतिकुल हो तो पीडा का कारण बनता है। यहाँ एक प्रश्न विचारणीय है कि... प्राणी को होनेवाले सुख-दु:ख तो सब कर्माधीन हैं, ऐसी श्रेष्ठ मान्यता जैनशासन में है, फिर यहाँ सुख-दु:खादि के निमित्त में ज्योतिषी को क्यों गिनने में आया है? इस मननीय प्रश्न का उत्तर ग्रंथकार (शास्त्रकार) स्वयं अनेक सुंदर मार्गदर्शन से देते है।

यहाँ शंका करते हैं कि - प्राणियों को तो सुख और दु:ख कर्म के कारण आता है, तो फिर उसके अनुकूल-प्रतिकूल सूर्य-चन्द्र का क्या प्रयोजन है ? अर्थात् अनुकूल अथवा प्रतिकूल चन्द्रादि सुख-दु:ख के कारण कैसे बन सकते हैं ? अनुकूलता अथवा प्रतिकूलता को प्राप्त करनेवाले भी चन्द्रादि से शुभ-अशुभ कर्म को लांघकर क्या सुख-दु:ख देने की शक्ति धारण कर सकते है ? अरे ! दूसरों की बात तो छोड़ो, खुद निर्ग्रंथ और निस्पृह मुनिराज भी ज्योतिषशास्त्र के अनुसार तो मुहूर्त देखने में तत्पर बनकर शुभाशयवाले वे दीक्षादि कार्यो में प्रवृत्ति करते है, तो क्या भगवान श्री महावीर प्रभु ने मेघकुमार की दीक्षा देने में मुहूर्त देखा था ? इस शंका का समाधान इस तरह से होगा की - सर्व प्रथम तो श्रुत के रहस्य को जो नहीं जानता हैं और गुरुपरम्परा की जिसको गंध (जानकारी) न हो ऐसे व्यक्तियों के ही ऐसे विपरीत वाक्य हो सकते हैं। यहाँ अनुत्तरवासी देवों के भी आराध्य देव श्री सर्वज्ञ जिनेश्वर परमात्मा की ऐसी परंपरा से प्राप्त अमृत व शीतल रहस्य रूप आगम-सिद्धांत को सुनते शुभ और अशुभ कर्मों के विपाक-फल के पांच हेतु (कारण) होते हैं - (१) द्रव्य (२) क्षेत्र (३) काल (४) भाव और (५) भव (जन्म)। जैसे कि-साता (सुख) द्रव्य के आश्रयी हैं, पुष्पमाला-चंदनादि रूप द्रव्य के कारण, अनुकूल घर या घर का उद्यानादि रूप क्षेत्र के कारण, वर्षाऋतु-वसंतऋतु आदि काल के कारण, सुख देनेवाले वर्ण-गंधादि भाव के कारण, एवं मनुष्य-देव भव (जन्म) के कारण जीव शाता वेदनीय नामक कर्म का फल भोगता है। इससे विपरीत अशाता वेदनीय के दृष्टांत समझना... जैसे कि तलवार-विष-क्रुर राजादि द्रव्य, क्रुर राजा से त्रसित देश-केदखानादि क्षेत्र, दुष्काल-प्रतिकूल ऋतु-ग्रहादि काल, अप्रशस्त वर्ण, राजा वगेरे शासकों के निर्ध्वंस परिणाम रूप भाव तथा तिर्यंच-नरकादि भव (जन्म) से अशाता विपाकोदय भोगता है।

उसमें शुभ कर्म के विपाक का हेतु द्रव्य, क्षेत्रादि गिने जाते हैं तथा अशुभ कर्म के विपाक का हेतु अशुभ द्रव्यादि गिने जाते हैं। इसमें जब जिन जीवों का जन्म नक्षत्रादि के विरोधी ज्योतिष शास्त्र में कहे अनुसार सूर्य-चंद्र गोचर होते हैं तब प्राय: उनका अशुभ कर्म उस प्रकार की सामग्री प्राप्त कर उसके अनुसार फल दिखाता है। तथा उस विपाक को प्राप्तकर आधि-व्याधि-द्रव्यहानि, कलह आदि उत्पन्न करके जीवात्मा को दु:ख देता है। जब प्राणियों के जन्म नक्षत्रादि ग्रहों का ग्रहाचार (गोचर) अनुकूल होता है, तब शुभ कर्म का उदय होता है, और वह जब अनुकूल होता है तो धन, स्त्री, आरोग्यता, तुष्टि-पुष्टि, मान, सन्मान, इष्ट समागमादि द्वारा जीवों को सुख (शाता) देता है। इस तरह शुभाशुभ कार्य के लग्नमुहूर्त में उस उस भाव को प्राप्त करनेवाले ग्रह सुख-दु:ख के फल में हेतु (कारण) बनते हैं।[१] अथवा तो सबसे बड़ी बात तो यह है कि जीव का जैसा कर्म होता है उसी अनुसार ग्रहादि में उसका जन्म होता हैं। अत: तीर्थंकर भगवंत के जन्मादिक समय में सर्व ग्रह (अर्थात् सातों सात ग्रह) उच्च स्थान में आ जाते हैं।

(१) (A) सूर्यप्रज्ञप्ति ग्रंथ, प्राभृत-१९ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-२५, श्लोक-१८४ से २०४

कृत्रिम उपग्रह ५०० कि.मी. से ऊपर नहीं जाते... अंतरिक्ष में जो कृत्रिम उपग्रह (सेटेलाईट) तैरते हुए छोड़ दिए जाते है, वे पृथ्वी की सतह से २०० से ५०० कि.मी. की ऊंचाईयों के बीच रहकर प्रदक्षिणा करते है। स्पूतनिक - १ नामक सबसे पहला कृत्रिम उपग्रह तत्कालिन सोवियत संघने सन् १९५७ में अंतरिक्ष में भेजा था। यह कृत्रिम उपग्रह वातावरण में पृथ्वी की सतह से २२३ कि.मी. की ऊंचाई तक पहुंचा था। इस समय भारत सहित विश्व के १० देशो के पास अंतरिक्ष में कृत्रिम उपग्रह भेजने की क्षमता हैं। इस समय लगभग २४५६ कृत्रिम उपग्रह पृथ्वी के वातावरण में भ्रमण कर रहे है। कृत्रिम उपग्रह का उपयोग जलवायु की जानकारी, संदेश व्यवस्था तथा जासूसी के लिए किया जाता हैं।

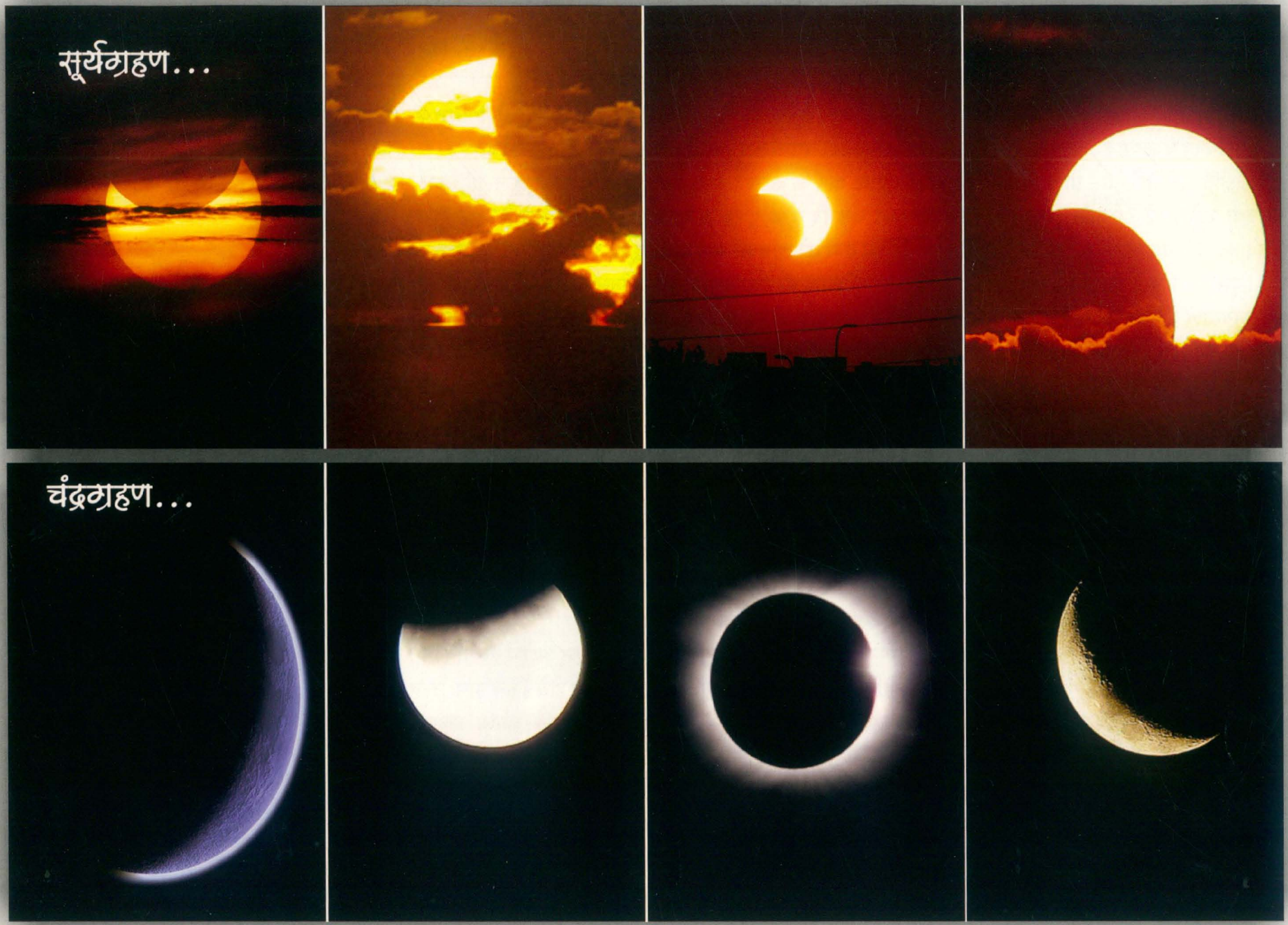
सूर्यग्रहण...
चंद्रग्रहण...

सूर्यग्रहण-चंद्रग्रहणादि का स्वरूप क्या है ?.....

- राहु दो प्रकार के बताये गये हैं.....(१) नित्यराहु(२) पर्वराहु। जिसमें ग्रहण की उत्पत्ति पर्वराहु के ही संयोग पर आधार रखती है।
- **चन्द्रग्रहण-** पर्वराहु अपनी गति में चलता-चलता चन्द्रमां की कान्ति को आच्छादित करता यथोक्त काल में चन्द्र के नीचे जब संपूर्ण आ जाए तब चन्द्र को वह यथायोग्य आवृत्त करता है, तब लोक में ग्रहण हुआ है ऐसा कहा जाता है।
- **सूर्यग्रहण-** पूर्वोक्त रीति से पर्वराहु जब सूर्य की लेश्या को यथोक्त काल में आच्छादित करता है तब सूर्य का उपराग होने से सूर्यग्रहण होता है। यह सूर्यग्रहण जघन्य से छः मास पर और उत्कृष्ट से अडतालिस वर्ष पर होता है, ऐसा जैनशास्त्र कहता है।
- चन्द्रग्रहण पूर्णिमा के दिन होता है इससे और सूर्यग्रहण को अमावस्या को होने से पर्वराहु से होते आच्छादन में किसी भी प्रकार का विरोध दिखता नहीं है। जबकी ग्रहण संयोग अमुक प्रमाण में अमुक रीति से होता है तब उसे ''खग्रास''(खण्ड-ग्रह) आदि नाम दिये जाते हैं।
- **शंका =** जम्बूद्वीप में जब ग्रहण होता है तब एक साथ दोनों सूर्यों का होता है या नहीं ? अगर होता हो तो समग्र क्षेत्रों का चन्द्रादि का ग्रहण भी एक साथ हो सके या नहीं ?
- **समाधान=** जब हमारे जम्बूद्वीप में ग्रहण होता है तब जम्बूद्वीप में तो क्या लेकिन समग्र मनुष्य क्षेत्रों में स्थित १३२ चन्द्रों का और १३२ सूर्यों का भी ग्रहण एक साथ ही होता है क्योंकि मनुष्यक्षेत्र★ में अमुक नक्षत्र का योग होता है तब ग्रहण होता है। अतः सकल चलित चन्द्र-सूर्य का एक ही नक्षत्र के साथ का योग सर्व स्थानों में समश्रेणी में व्यवस्थित होने से चर ज्योतिषीयों का चर क्रम व्यवस्थित रीति से ही आता हैं, अतः सब का ग्रहण भी शुभाशुभ स्थिति पर लोकों में भी सुखासुख कैसा होगा ? इस सम्बन्ध में भविष्य का बहुत आधार रखता हैं।
- **शंका=** युगलिकक्षेत्र में ग्रहण होता हो और वहाँ अशुभ ग्रहण हो तब शुभभाववाले क्षेत्रों में भी क्या अशुभपणा प्राप्त होता है ?
- **समाधान=** यद्यपि उन क्षेत्रों में चन्द्रादि की गति होने से ग्रहण होना संभव तो है, परंतु उनके महान् पुण्य से तथाप्रकार के क्षेत्रप्रभाव से अथवा कभी कभी ग्रहण दर्शन के अमावस से उन्हें किसी भी उपद्रव का कारण नहीं होता है, इस तरह ''श्री जीवाजीवाभिगम सूत्र'' में स्पष्ट कहा गया हैं।

★ चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र और तारों के सम्बन्ध में होता विपर्यास क्रम, तिथि की वध-घट, अधिकमास आदि का कारण वगैरह ''काललोकप्रकाशादि'' ग्रन्थों में से अथवा इस ज्योतिषादि विषय के ज्ञाता-विद्वानों से जान लें...।

वैज्ञानिकों के मंतव्य के अनुसार पृथ्वी का आकार चन्द्रमां के आकार का ८७ गुना हैं । इसलिए पृथ्वी का आकर्षण बल चन्द्रमां के आकर्षण बल कि तुलना में अधिक होना चाहिए । यदि चन्द्रमां का गुरुत्वाकर्षण बल पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल का ८७ वां भाग ही हो तो चन्द्रमां किस प्रकार समुद्र के पानी को अपनी और खींचने मे सफल हो सकता है ? रस्सी खींचने के खेल मे जिस पक्ष में अधिक बल होता है, उस ओर ही रस्सी खिंची जाती हैं । पृथ्वी में यदि गुरुत्वाकर्षण बल अधिक हो तो समुद्र का पानी पृथ्वी के साथ ही रहना चाहिए और चन्द्रमां की और नहीं खींचना चाहिए।

मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहे हुए सूर्य-चंद्रादि....

मनुष्य क्षेत्र के बाहर रहे हुए सूर्य-चन्द्रादि.....

मनुष्य क्षेत्र की मर्यादा को बनानेवाले, मानुषोत्तरपर्वत के बाहर विद्यमान चन्द्र-सूर्य और तारे आदि सर्व ज्योतिषीयों के विमान तथाविध जगत स्वभाव से अचल (स्थिर) रहकर सदा प्रकाश देते हैं। इन सूर्य और चन्द्रादिक के विमानों का चरपणा न होने से परस्पर राहु आदि का संयोग उन्हें नहीं होता है। अतः ग्रहण की उत्पत्ति का अभाव होने से किसी दिन भी उसके तेज में और वर्ण में विकृति-परिवर्तन नहीं होता हैं। अतः सदैव उन विमानों में से सूर्यविमानों का प्रकाश अग्नि के वर्ण सदृश दिखता है, जब कि चंद्र का प्रकाश बहुत ही उज्ज्वल होता है, और चर तथा स्थिर तारे आदि के विमान तो पांचो प्रकार के वर्णवाले होते हैं। इस तरह मनुष्य क्षेत्र के बाहर स्थित स्थिर चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिषी का परस्पर अन्तर (गेप) ५०,००० (पचास हजार) योजन का है। ऐसा श्री जिनेश्वर सर्वज्ञ देव ने कहा है।

चर और स्थिर दोनों प्रकार के विमानों में सुन्दर कमलगर्भ समान, गौरवर्ण के, विशिष्ट प्रकार के वस्त्राभूषणों को धारण करनेवाले, चन्द्रमा के मुकुट के अग्रभाग में प्रभामण्डल स्थानीय चन्द्रमण्डल का चिह्न होता है, सूर्य को सूर्यमण्डल का चिह्न, ग्रह को ग्रहमण्डलाकार का, नक्षत्र को नक्षत्रमण्डलाकार का और तारा को तारामण्डलाकार का चिह्न होता है।

ये सब विमान ही होते हैं। परन्तु कुछ लोग कहते है कि..... प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाले सूर्यादि पांच स्वतः देवस्वरूप ही हैं, तो यह समझ अज्ञान रूप है। साथ ही चन्द्र के विमान के नीचे विद्यमान चित्र रूप मृगचिह्न का भी लोग अनेक प्रकार की कल्पनाएँ करके अनेक रूप में परिचय देते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष रूप में दिखते जिन ज्योतिषियों को आकाश में हम देखते है, वे सब तो विमान ही हैं। उनके तथाविध कर्म से तेजस्वी होने के कारण हम उन्हें दूर से देख सकते हैं। सूर्य-चन्द्रादि देव और उनका अन्य देव-देवी परिवार तो उन विमानों में स्थित हैं। सर्वज्ञ भगवन्त का शासन तो यही प्रतिपादन करता है चन्द्रमां के विमान की पिठिका के नीचे स्फटिकमय ''मृग'' का ही चिह्न बना हुआ है, अतः हम भी उस मृगाकार को देख सकते हैं।

विशेष- मानुषोत्तर पर्वत से बाहर अवस्थित चन्द्र तथा सूर्यादि स्थिर प्रकाशवाले होते हैं, अर्थात् एक स्थल में स्थिर रहकर प्रकाश देते हैं। तथा चन्द्र अभिजित् नक्षत्र से युक्त होते हैं और सूर्य पुष्यनक्षत्र से युक्त होते हैं।

पूर्वोक्त १४ राजलोक का संपूर्ण वर्णन आत्मसात् कर लेने के उपरांत ज्ञात होता है कि उसके प्रत्येक आकाश प्रदेश में हमारी आत्मा अज्ञान-मिथ्यात्वादि के कारण अनंतानंत बार जन्म-मरण के चक्कर काट चुकी हैं। यह तथ्य लोकस्वभाव एवं लोकभावना के अध्ययन-मनन से परिलक्षित करके, सम्यग्दर्शन के प्रगटीकरण हेतु सुगुरु भगवंत के सांनिध्य में रहकर उक्त तत्त्वज्ञान का जिज्ञासापूर्वक अभ्यास अत्यावश्यक हैं। परिणाम स्वरूप पर-परिणति का छेद करनेवाली निर्मल आत्मदृष्टि - आत्मपरिणति प्राप्त होती हैं। और उस आत्मपरिणति को प्राप्त करने के लिए... जैसे शक्कर चाहनेवाला व्यक्ति इक्षु यष्टियों की पूजा नहीं करता, परंतु उन्हें कोल्हु में पीलता है, उसका रस संचित करता है, रस को कहाडों में डालकर आग में खुब तपाता हैं और औढाता हैं, उसमें अन्य कुछ पदार्थ मिलाकर उसे शुद्ध, शुद्धतर एवं शुद्धतम बनाने की प्रत्येक प्रक्रिया करता हैं। तब वह अंततः ईक्षु से शक्कर को पाता हैं। ठीक वैसे ही तत्त्वज्ञान के पदार्थों को पाने का इच्छुक व्यक्ति सत्यदृष्टा-सर्वज्ञ परमात्मा के ज्ञानसूत्रों की पूजा ही नहीं करता रहता, बल्कि उनका अध्ययन करता है, स्वयं तथा दुसरों से चर्चा-विचारणा, ऊहापोह और गहन चिंतन-मनन करता हैं तब वह अंततः उन तत्त्वज्ञान के पदार्थों को जान पाता हैं।

"The whole world is today striken with the fear of war, and this more especially due to the invention of atomic weapons. Under these circumstances it is only the message of peace and Ahimsa which can save humanity from sure destruction. No effort should therefore be spared to carry this message to the heart of every human being."

-Brij Mohanlal Sharma

"Modern philosophers are taken aback to note the way in which the jain philosophers have dealt with matter to its minutest form. According to them Lord Mahavira was the founder of modern science."

- Pt. Madhev Acharya

मनुष्य क्षेत्र में सूर्य - चंद्र की ६६-६६ पंक्तियाँ...

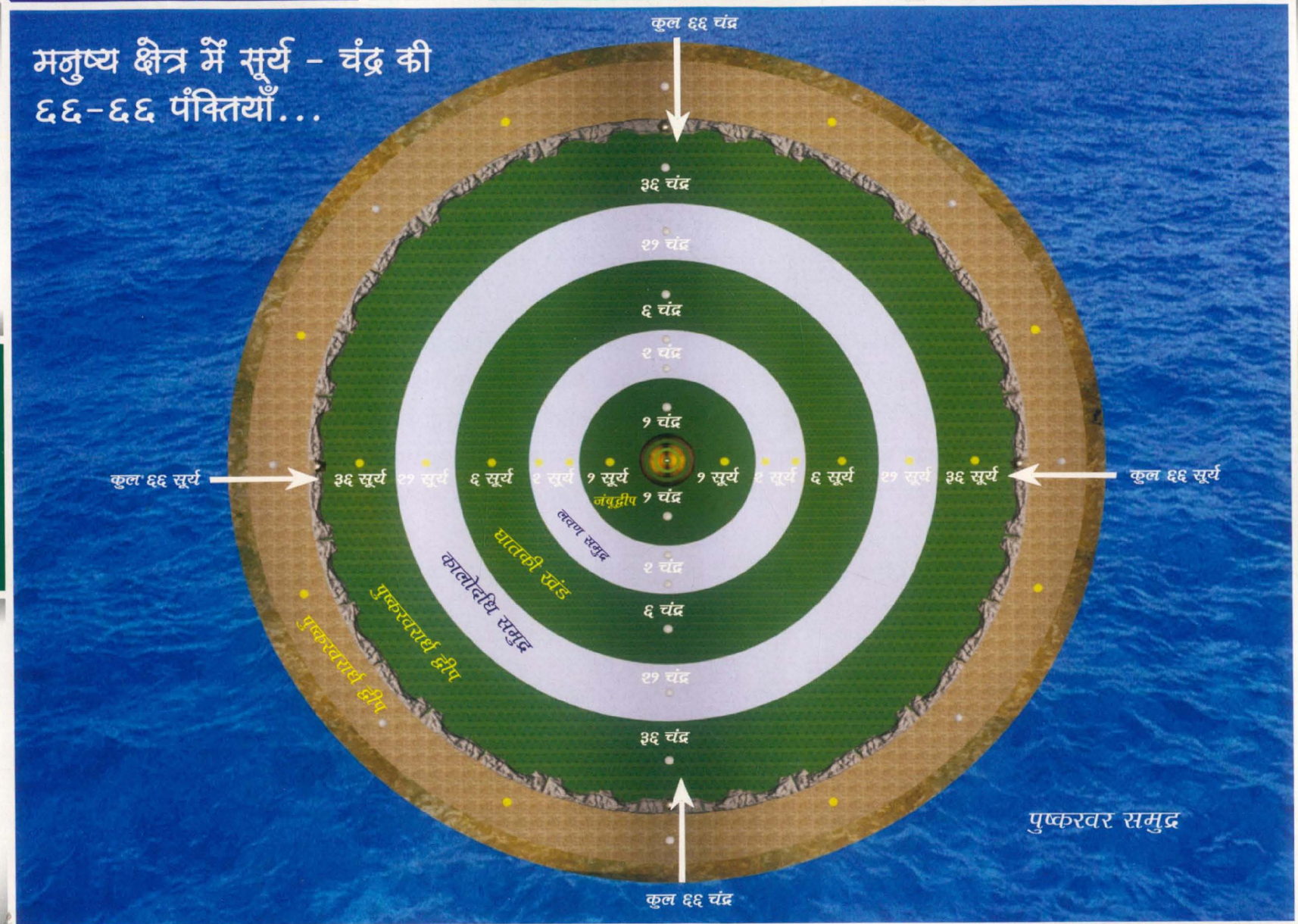

मनुष्य क्षेत्र में सूर्य-चन्द्र की ६६-६६ पंक्तियाँ.....

इस मनुष्य क्षेत्र में समश्रेणिगत १३२ चन्द्र और १३२ सूर्यो की संख्या प्रथम बताई गई हैं, अब वह किस तरह व्यवस्थित है ? वह बताया जा रहा है। जंबूद्वीप के मध्यभाग में रहे मेरु की दक्षिणोत्तर दिशा में रही हुई दोनों समश्रेणी के सूर्य १३२ गिनने के हैं और उसी मेरुपर्वत के समश्रेणी के होकर १३२ चन्द्र लेने के हैं। उनमें मेरु की दक्षिण दिशा में एक सूर्यपंक्ति और उत्तर दिशा में एक सूर्यपंक्ति होकर कुल दो सूर्यपंक्तियाँ और मेरु की पश्चिम तथा पूर्व में भी एक-एक चन्द्र पंक्तियाँ होती हैं। इन चन्द्र-सूर्य की प्रत्येक पंक्ति के दोनों बाजु पर विभाग होने के कारण बीच में मेरुपर्वत आया है। प्रत्येक पंक्ति में ६६ सूर्य और ६६ चन्द्र होते हैं वे इस तरह होते हैं....

जब जंबूद्वीप का एक सूर्य मेरु के दक्षिण भाग में हो तब इसी सूर्य की समश्रेणी पर दक्षिण दिशा में लवणसमुद्र के-२, धातकीखंड के-६, कालोदधि समुद्र के-२१ और पुष्करवरार्ध के ३६ इस तरह कुल ६६ सूर्य (दक्षिण दिशा में) होते हैं। इसी तरह उत्तर दिशा में भी जंबूद्वीप में-१ आदि करके कुल २ $^{1}/_{2}$ द्वीप में (मनुष्य क्षेत्र में) ६६ सूर्य होते हैं.... और इस तरह दक्षिण-उत्तर दिशा के मिलाकर कुल १३२ सूर्य होते हैं और इसी तरह मेरु की पूर्व-पश्चिम दिशा में ६६-६६ चन्द्र की पंक्ति व्यवस्था भी पूर्वोक्त रीति से बराबर समझ लेनी चाहिए। यहाँ इतना ख्याल रखना कि सूर्य पंक्ति दक्षिणोत्तर दिशा में और चन्द्र पंक्ति पूर्व-पश्चिम दिशा में कही हैं वह हमेशा के लिए वही रहकर प्रकाश करे वैसा न समझे। परन्तु २ $^{1}/_{2}$ द्वीप के चन्द्र-सूर्यादि ज्योतिषी विमान चर होने से जब पंक्तिगत सूर्य दक्षिणोत्तर दिशा में हो तब पंक्तिगत चंद्र पूर्व-पश्चिम दिशा में होते हैं और सूर्य घूमते घूमते जब पूर्व दिशा में आते हैं, तब चन्द्र घूमते घूमते दक्षिण दिशा में है। इस तरह कुल १३२ चन्द्र और १३२ सूर्य रात्रि-दिवस के विभाग करते पूर्वक मनुष्य क्षेत्र में हमेशा परिभ्रमण करते हैं। इस पंक्ति में रहे हुए सूर्य-चंद्र कभी भी क्षण मात्र भी स्थिर नहीं रहते, सतत परिभ्रमण करते अहोरात्री रचते हैं, और स्वपंक्ति में से एक भी सूर्य-चन्द्र आगे पीछे सरकता नहीं है।

६६-६६ चन्द्र-सूर्यो की दो दो पंक्तियाँ ही इस मनुष्य क्षेत्र में मेरु की प्रदक्षिणा करती है, तदुपरांत एक चंद्र का जो २८ नक्षत्र, ८८ ग्रह और ६६,९७५ कोडाकोडी तारों जितना परिवार कहा है उसके अनुसार १३२ चंद्रों का अपना अपना परिवार भी परिभ्रमण करता है, अर्थात् ३,१९६ नक्षत्र विमान, ११,६१६ ग्रह परिवार तथा ८,८४,०७,००,००,००,००,००,००,००० कोडाकोडी (ध्रुव तारे के सिवाय) तारों का परिवार मनुष्य क्षेत्र में सदाकाल मेरु को प्रदक्षिणावर्त मंडल द्वारा परिभ्रमण करता है तथा स्वप्रकाश्य क्षेत्र में प्रकाश करता है। यहाँ इतना विशेष समझना की, सूर्य-चन्द्र और ग्रह पृथक्-पृथक् मण्डल में परिभ्रमण करनेवाले होने से अनवस्थित योग से परिभ्रमण करते हैं। जबकी नक्षत्र और तारे स्व-स्वमण्डलों में ही परिभ्रमण करनेवाले होने से उनका परिभ्रमण अवस्थित योग से होता है ऐसा जानना...।[१]

(१) बृहत्संग्रहणी, गाथा-८०

जैनों की आद्य-संपत्ति संयम और अहिंसा है, वहाँ द्वेषभाव नहीं रह सकता। आज अथवा कल यह पाठ विश्व को सीखाने की जिम्मेदारी अहिंसात्मक संस्कृति के उत्तराधिकारी बननेवाले जैनियों को ही लेनी चाहिए।

भूतपूर्व गृहमंत्री भारत सरकार
स्व. सरदार वल्लभभाई पटेल

It has accordingly appear-ed to more that a study of Indian Philosophy is not complete with out study of the Jains contributions to it.

मुझे यह सचमुच प्रतीत होता है कि भारतीय दर्शनशास्त्र ज्ञान जैनदर्शन के अभ्यास बिना अधुरा ही रहेगा।

डॉ. हरिसत्य भट्टाचार्य

सूर्योदय...
सूर्यास्त...
सूर्योदय
सूर्यास्त

चर ज्योतिष देवों के द्वारा मनुष्यलोक में काल का विभाग.....

चर ज्योतिषदेव विमानों की गति विशेष के द्वारा मनुष्यलोक में काल का विभाग होता हैं। जैसे कि "वर्तनापरिणामक्रियापरत्वा-परत्वलक्षणकालः" अर्थात् वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व, और अपरत्व ये कालद्रव्य के लक्षण हैं। ऐसा कालद्रव्य अनंत समयों के समुह रूप हैं। उस काल का विभाग इन ज्योतिष्क देवों के विमानों की गति विशेष के द्वारा होता है।

मुख्य और औपचारिक अर्थात् निश्चय तथा व्यवहार इस तरह काल दो प्रकार का है। मुख्य काल अनंत समयात्मक है। यह काल एक स्वरूप है अर्थात् भेद रहित है। इसलिए भेद रहित मुख्य काल के ज्योतिष विमानों की गति से दिवस और रात्रि इत्यादिक के भेद होते हैं। पूर्व दिशा के अमुक नियत स्थान से सूर्य की गति के प्रारंभ को सूर्योदय कहते हैं। तथा पश्चिम दिशा के अमुक नियत स्थान में सूर्य के पहुँचने को सूर्यास्त कहते हैं। सूर्योदय से प्रारंभ होकर सूर्यास्त तक का काल दिन कहा जाता है तथा सूर्यास्त से प्रारंभ होकर सूर्योदय तक का काल रात कही जाती है। पन्द्रह दिन का एक पक्ष होता है। शुक्ल और कृष्ण रूप दो पक्ष का एक मास (महिना) होता है। दो मास की एक ऋतु होती है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है। दो अयनों का एक संवत्सर यानी "वर्ष" होता है तथा पांच वर्षो का एक युग होता है। इसमें कुछ विशेष बातें भी जान लीजिए...

पांच वर्ष के समुह को युग कहते हैं। युग के भी पांच प्रकार हैं। वे पांचों नाम कुछ इस प्रकार हैं- चन्द्र, सूर्य, अभिवर्द्धित, सवन तथा नक्षत्र। पांच वर्ष के युग में मध्य में और अंत में मिलकर दो अधिक मास आते है। पांच प्रकार के संवत्सरों में से अभिवर्द्धित संवत्सर में अधिक मास होता है, तथा अन्त में अभिवर्द्धित संवत्सर ही हुआ करता हैं। ★ "चन्द्र" संवत्सर में मास का प्रमाण २९ $^{३२}/_{६२}$ दिन का होता है। इसलिए इस हिसाब से १२ महिनों के ३५४ $^{१२}/_{६२}$ दिन होता है। यही चंद्र संवत्सर का प्रमाण हैं। ★ "सूर्य" संवत्सर में महिने का प्रमाण ३० $^{१}/_{२}$ दिन का होता हैं। इसलिए इस हिसाब से १२ महिनों के ३६६ दिन होते है। यही सूर्य संवत्सर का प्रमाण है। ★ "अभिवर्द्धित" संवत्सर महिने का प्रमाण ३० $^{१२१}/_{१२४}$ दिनों का होता है। इस हिसाब से १२ महिनों के ३८३ $^{४४}/_{६२}$ दिन होते हैं ★ "सवन" संवत्सर में मास का प्रमाण ३० दिन का होता है। इस हिसाब से १२ महिनों के ३६० दिन होते है। ★ "नक्षत्र" संवत्सर में महिने का प्रमाण २७ $^{२१}/_{६७}$ दिन का होता है, इस हिसाब से १२ मास के कुल ३२७ $^{५१}/_{६७}$ दिन होते हैं। इस तरह पांचों संवत्सर एक साथ प्रवृत्त रहा करते हैं, तथा अपने-अपने समय पर वे पूर्ण होते हैं। पांच वर्ष के युग में पाँचों ही प्रकार के संवत्सर आ जाते हैं।

वर्ष के अनुसार ही युग के भी पांच नाम समझना। ८४,००,००० वर्ष का एक पूर्वांग होता हैं। तथा पूर्वांग को पूर्वांग से गुणा करने पर अर्थात् ८४,००,००० x ८४,००,०००= एक पूर्व काल होता है। ये समस्त काल ज्योतिष गति की अपेक्षा से स्थूल है। समयादिक सूक्ष्म काल है। ज्योतिष्क की गति से स्थूल काल की ही गिनती होती है, किन्तु समयादिक सूक्ष्मकाल की नहीं...।

आज के विज्ञान की समस्त सिद्धियाँ वह तो जिनशासन के सर्वज्ञ के ज्ञान के आगे बिंदु तुल्य भी नहीं है। जिस तरह खिचडी चूले पर चढ़ी हो तो उसका मात्र एक दाना ही दबाने से संपूर्ण खिचडी पक गई है उसका ख्याल आ जाता है ठीक उसी तरह आज के विज्ञान की सिद्धि से मध्यस्थ नास्तिक को भी जैनशासन की सर्व बाते सर्वज्ञ प्रणित है एसे कहे बिना छूटका नहीं... अब तक सर्वज्ञ बातें अशक्य लगती थी परंतु अब तो वह भी बुद्धि रूपी चोकठे में बैठने लग गई है।

सूर्य से सूर्य का परस्पर अंतरमान.....
मेरु
जंबूद्वीप
सर्व बाह्यमंडल

सर्व बाह्यमंडल से सर्वाभ्यंतर मंडल में पश्चिम सूर्य का पुनः आगमन.....
पश्चिम
पूर्व
उत्तर
मेरु
जंबूद्वीप

सर्व बाह्यमंडल
सर्व बाह्यमंडल
मेरु
जंबूद्वीप
लवण समुद्र

जंबूद्वीप के सूर्य तथा चंद्र के मंडलादि का प्रमाण-अंतर इत्यादि....

क्रम	विषय	सूर्य
१	सर्व मंडल	१८४
२	मंडल क्षेत्र का विष्कंभ	५१० ४८/६१ योजन
३	जंबूद्वीप में मंडल क्षेत्र	६५ योजन
४	जंबूद्वीप में मंडल संख्या	१८० योजन
५	लवणसमुद्र में मंडल संख्या	११९ योजन
६	लवणसमुद्र में मंडल क्षेत्र	३३० ४८/६१ योजन
७	मेरु से दूर अभ्यंतर मंडल	४४,८२० योजन
८	मेरु से दूर बाह्य मंडल	४५,३३० योजन
९	बाह्य मंडल में परस्पर अंतर	१,००,६६० योजन
१०	मंडल से मंडल का अंतर	२ योजन
११	मंडल रेखा का विस्तार	४८/६१ योजन
१२	अभ्यंतर मंडल में दिनमान	१८ मुहूर्त-दिन
१३	बाह्य मंडल में दिनमान	१२ मुहूर्त-दिन
१४	बाह्य मंडल में उदय-अस्त का अंतर	६३,६६३ योजन
१५	अभ्यंतर मंडल में परस्पर अंतर	९९,६४० योजन
१६	अभ्यंतर मंडल परिधि	३,१५,०८९ योजन
१७	प्रतिमंडल में परस्पर की अंतरवृद्धि	५ ३५/६१ योजन
१८	परिधि की हानि-वृद्धि	प्रायः १८ योजन
१९	बाह्य मंडल परिधि	३,१८,३१५ योजन
२०	अभ्यंतर मंडल में मुहूर्तगति	५,२५१ २१/६० योजन
२१	प्रतिमंडल में मुहूर्तगति की हानि-वृद्धि	१८/६० योजन
२२	बाह्य मंडल में मुहूर्तगति	५,३०५ १/४ योजन
२३	अभ्यंतर मंडल में दृष्टिगोचर	४७,२६३ २१/६० योजन
२४	अभ्यं. मंडल में उदय-अस्त का अंतर	९४,५२६ ४२/६० योजन
२५	बाह्यमंडल में दृष्टिगोचर	३१,८३१ १/२ योजन
२६	प्रतिमंडल में दिनमान की वृद्धि-हानि	२/६१ मुहूर्त रात्रि की

क्रम	विषय	चंद्र
१	सर्व मंडल	१५
२	मंडल रेखा विस्तार	५६/६१ योजन
३	मंडल से मंडल का अंतर	३५ ३०/६१ ४/७ योजन
४	जंबूद्वीप में मंडल क्षेत्र	१८० योजन
५	मंडल क्षेत्र का विष्कंभ	५१० ४८/६१ योजन
६	मंडलक्षेत्र की संख्या	५
७	लवणसमुद्र में मंडल संख्या	१० योजन
८	लवणसमुद्र में मंडल क्षेत्र	३३० ४८/६१ योजन
९	मेरु से दूर अभ्यंतर मंडल	४४,८२० योजन
१०	मेरु से दूर बाह्य मंडल	४५,३२९ ५३/६१ योजन
११	अभ्यंतर मंडल में परस्पर अंतर	९९,६४० योजन
१२	प्रतिमंडल में परस्पर अंतरवृद्धि	७२ ५५/६१ १/७ योजन
१३	अभ्यंतर मंडल में दिनमान	१२ मुहूर्त रात्रि
१४	बाह्य मंडल में दिनमान	१८ मुहूर्त रात्रि
१५	बाह्य मंडल में उदय-अस्त का अंतर	६३,६६३ योजन
१६	बाह्य मंडल में परस्पर अंतर	१,००,६५९ ४५/६१ योजन
१७	अभ्यंतर मंडल परिधि	३,१५,०८९ योजन
१८	बाह्य मंडल परिधि	३,१८,३१५ योजन
१९	परिधि की हानि-वृद्धि	२३० योजन
२०	अभ्यंतर मंडल में मुहूर्तगति	५,०७३ ७७४/१३७२५ योजन
२१	प्रतिमंडल में मुहूर्तगति की वृद्धि-हानि	३ १५२५/१३७२५ योजन
२२	बाह्य मंडल में मुहूर्तगति	५,१२५ ६९९०/१३७२५ योजन
२३	अभ्यंतर मंडल में दृष्टिगोचर	४७,२६३ ७/२० योजन
२४	अभ्यंतर मंडल में उदयास्त का अंतर	९४,५२६ ४२/६० योजन
२५	बाह्यमंडल में दृष्टिगोचर	३१,८३१ योजन
२६	प्रतिमंडल में दिनमान की वृद्धि-हानि	२/६१ मुहूर्त रात्रि की

मेरे मत में जैन तत्त्वज्ञानी दुराग्रहवादीता से हंमेशा मुक्त थे । वे स्पष्ट वास्तविकतावादी थे । अन्य वास्तविकता वादियों से भी उनका मेल था । उन्होंने अगली पीढी (Generation) के लिए विरासत में संपन्न तत्त्वज्ञान दिया है जो अति मौलिक खजाना हैं ।

This Jain philosopher as I know is free from dogmatism, frankly realistic and stands in close to other realistic school of thought they have left for the postriety a full fledged philosophy which is indeed in valuable heirloom.

मोहम्मद अब्दुल वहीदखान
डायरेक्टर ऑफ आर्कियोलोजी
(पू. ११) ए.पी.

।। जीव और पुद्‌गलों की रंगभूमि.....।।

रंगस्थानं पुद्‌गलानां नटानां, नानारूपैर्नृत्यतामात्मनां च ।
कालोद्योगस्व-स्वभावादिभावैः कर्मातोद्यैर्नर्तितानां नियत्या ।।

अर्थ : नियति, काल, उद्यम और स्वभावादि भावो से तथा कर्मरूपी वाद्ययंत्र की सहायता से अनेक रूपधारी नट की तरह जीव और पुद्‌गलों की यह रंगभूमि हैं ।

विवेचन : इस १४ राजलोक में यह जीव नट की भांति अनादि काल से नाच कर रहा हैं । नाना प्रकार के पुद्‌गलो के संग में आकर यह जीव अनेकविध नाटक खेल रहा हैं । यह १४ राजलोक जीव और पुद्‌गल के नाच की रंगभूमि हैं । पुद्‌गल द्रव्य में भी प्रतिसमय परिवर्तन चालु है । कर्म के वशीभूत जीव में भी विविध प्रकार के परिवर्तन चालु ही हैं । कभी यह आत्मा राजा बनकर सब पर अपना हुकम चलाती हैं तो कभी रंक बनकर सबके सामने दीनता प्रगट करती है । कभी दानवीर बनती है तो कभी भिखारी बनती है । राजा-रंक, अमीर-गरीब, शक्तिशाली-शक्तिहीन तथा पंडित-मूर्खादि के अनेक पात्र यह आत्मा इस संसार रूपी रंगभूमि पर भजती रहती हैं ।

इस नाटक में काल, स्वभाव, कर्म, नियति और पुरुषार्थ काम करते हैं । तथा पुद्‌गल द्रव्य अचेतन होते हुए भी उसमें अत्यधिक शक्ति रही हुई हैं ।

द्वार-३

अधोलोक

WEL COME
TO HELL

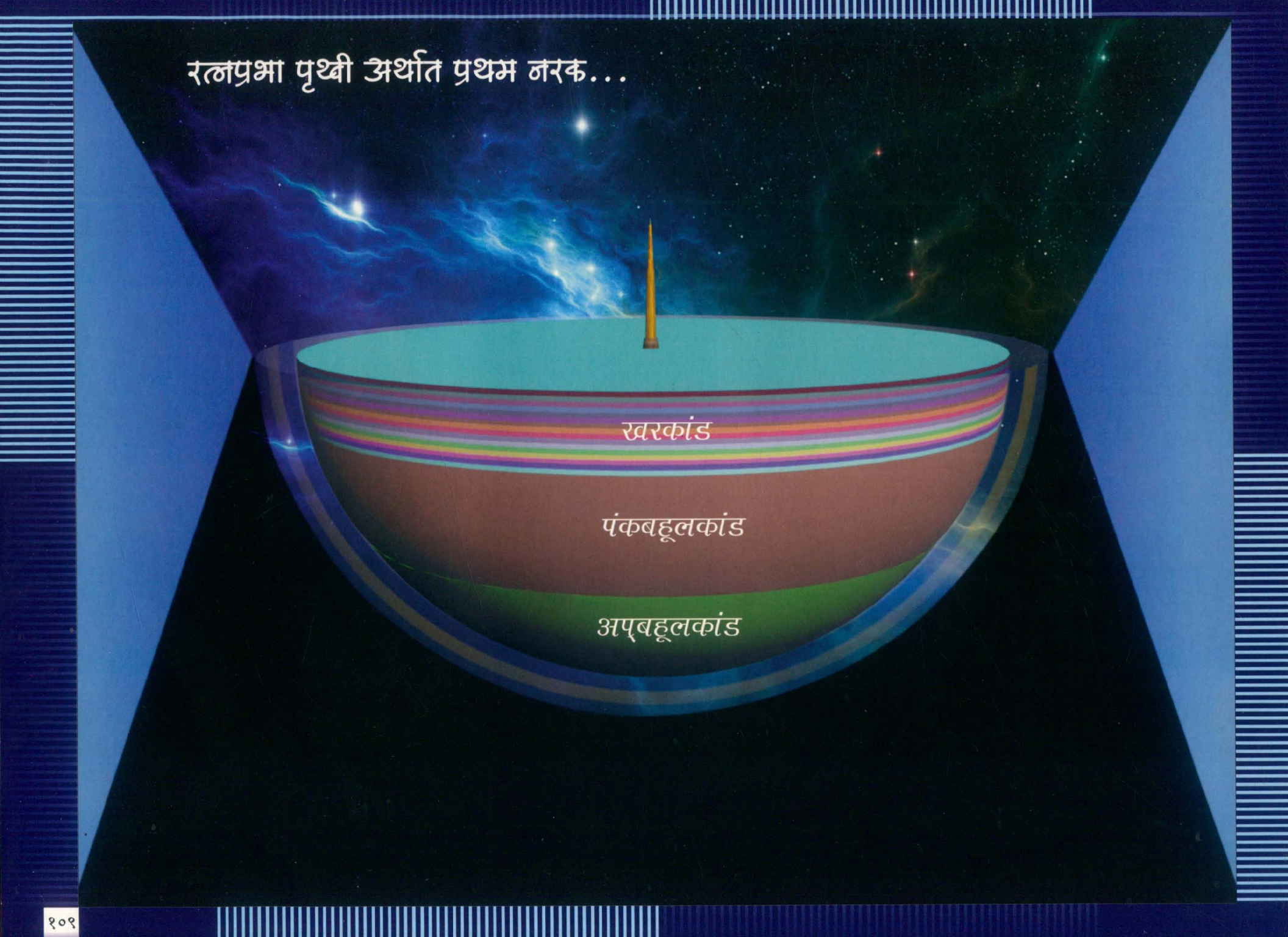
रत्नप्रभा पृथ्वी अर्थात प्रथम नरक...
खरकांड
पंकबहूलकांड
अप्बहूलकांड

रत्नप्रभा पृथ्वी अर्थात् प्रथम नरक.....

- अधोलोक में ७ पृथ्वियां कही गई हैं जिनके गौत्र से ७ नाम (१) रत्नप्रभा (२) शर्कराप्रभा (३) वालुकाप्रभा (४) पंकप्रभा (५) धूमप्रभा (६) तमःप्रभा और (७) तमस्तमःप्रभा[1] आदि हैं। रूढी से ७ नाम (१) घम्मा (२) वंशा (३) शैला (४) अंजना (५) रिष्टा (६) मघा और (७) माघवती (इन रूढी नामों के कोई अर्थ नहीं होते।)
- यह ७ प्रकार की ७ नरक भूमि..... नीचे एक बड़ा छत्र हैं इसके उपर उससे छोटा, इससे उपर और छोटा इस तरह करते ७ छत्र एक दूसरे पर न हो वैसा इसका आकार हैं।
- इस रत्नप्रभा पृथ्वी की चौड़ाई १ राजलोक प्रमाण है तथा लम्बाई १,८०,००० योजन बताई गई है।
- रत्नों की बाहुल्यता से सान्वर्थ नामवाली यह रत्नप्रभा पृथ्वी ३ कांडों में विभक्त है। प्रथम खरकांड १६,००० योजन का है, द्वितीय पंकबहूलकांड ८४,००० योजन का है और तृतीय अप्बहूलकांड ८०,००० योजन प्रमाण का कहा गया हैं अतः समग्र मिलाकर १,८०,००० योजन प्रथम नरक का पृथ्वीपिंड है।[2]
- सबसे उपर के खरकांड में १६ प्रकार के रत्नों की अपेक्षाएं १,०००-१,००० योजन के १६ विभाग आये हुए है, वह इस प्रकार जानना..... (१) रत्नकांड (२) वज्रकांड (३) वैडुर्यकांड (४) लोहितकांड (५) मसारगल्लकांड (६) हंसगर्भकांड (७) पुलककांड (८) सौगन्धिककांड (९) ज्योतिरसकांड (१०) अंजनकांड (११) अंजनपुलककांड (१९) रजतकांड (१३) सुवर्णकांड (१४) अंककांड (१५) स्फटिककांड और (१६) रिष्टकांड।[3]
- इस प्रकार कांडों की व्यवस्था मात्र प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी में ही है। तथा इस रत्नप्रभा पृथ्वी में ३,०००-३,००० योजन की चौड़ाईवाले कुल १३ प्रतर आये हुए हैं और उस १३ प्रतरों में कुल मिलाकर ३०,००,००० (तीस लाख) नरकावास है। जिसकी रचना में सबसे बीच में (मध्य में) इन्द्रक, दिशा-विदिशा में श्रेणिबद्ध और अन्य पुष्पावकीर्ण नरकावास हैं। यह रचना सातों नारकी के सर्व प्रतरों में जाननी।
- रत्नप्रभा पृथ्वी के पर्यन्त भाग में उपर के स्थान में घनोदधि (६ योजन) घनवात (४ १/२ योजन) और तनवात (१ १/२ योजन) इस तरह कुल मिलाकर १२ योजन होता है। और नीचे के स्थान में घनोदधि २०,००० योजन तथा घनवात और तनवात असंख्य योजनात्मक है। उसके बाद असंख्य योजन आकाश और बाद में दूसरी पृथ्वी इस तरह अनुक्रम से सातों पृथ्वियों में जानना। (घनोदधि की चौड़ाई में जो फर्क आता है, उसकी जानकारी हम आगे देंगें।)
- ऐसा कहा जाता है कि- मिथ्यादृष्टि, महाआरंभी, महापरिग्रही, मांसाहारी, पंचेन्द्रियादि प्राणीयों का वध करनेवाले, तीव्र क्रोधादि को करनेवाले, रौद्रध्यानी (क्रूर परिणामवाले) आदि प्रकार के जीव नरक का आयु बाँधकर इस नरक में उत्पन्न होते हैं।
- इस नरकगति में उत्पन्न हुए जीव फिर से नरक में उत्पन्न नहीं होते, कारण की..... महा-आरंभ, महा-परिग्रह आदि नरक बंध के कारण यहाँ उपलब्ध नहीं हैं तथा सरागसंयमादि जो देवगति के बंध के कारणों का भी वहाँ पर अभाव होने से नारक मरकर देवगति में जन्मते नहीं, परंतु मनुष्य अथवा तिर्यंचगति में ही जन्मते हैं।
- इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्पन्न होते नारक जीवों का सर्व जघन्य आयुष्य १०,००० वर्ष का होता है तो उत्कृष्ट आयुष्य १ सागरोपम का होता है। १०,००० वर्ष से ऊपर और १ सागरोपम के नीचे का सर्व आयुष्य मध्यम जाने...।

(१) (A) तत्त्वार्थसूत्र-३/१ (B) तिलोय पण्णत्ति-१/१५२ (C) हरिवंशपुराण-४/४३-४५ (D) महापुराण-१०/३१ (E) त्रिलोकसार-१४४ (F) जंबूद्वीपपण्णत्ति-११/११३ (G) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-१६१ से १७४ (२) (A) जीवाजीवाभिगम सूत्र, पडि.-३, उद्देशा-१, सूत्र-७२, (B) ठाणांग सूत्र-१०, सूत्र-७७८ (C) समवायांग सूत्र-७ सूत्र-७/सूत्र-५ (३) जीवाजीवाभिगम सूत्र, पडि.- ३, उद्देशा-१, सूत्र-६९

जैनधर्म पूरे तौर से स्वतंत्र धर्म है। इस धर्मने दूसरे किसी धर्म का अनुकरण या नकल नहीं की है।

- डॉ. हर्मन याकोबी
(M.M.P.H.D.) जर्मनी

जिस तरह पवित्र गंगा का संग पाकर गन्दा नाला भी गंगा की तरह पवित्र बन जाता है, जलती ज्वाला का संग पाकर काला कोयला भी ज्वाला की तरह चमकने - दमकने लग जाता है, बस ! उसी तरह ऐसे अनमोल तत्त्वज्ञान के ग्रंथ पाकर पतित एवं संस्कारहीन आत्माएँ भी पवित्र और उच्च बन जाती है।

रत्नप्रभा पृथ्वी के १३ प्रतर...
सीमन्तक
भ्रान्त
संभ्रान्त
विभ्रान्त
शीत
अवक्रांत
रोरुक
रौरक
उद्भ्रान्त
असंभ्रान्त
तप्त
वक्रांत
विक्रांत

सातों नरकों में रहें हुए प्रतरों के नामादि....

देवलोक की तरह सातों नरकों में भी प्रतर आये हुए हैं। इनमें प्रथम रत्नप्रभा (घम्मा) नरक पृथ्वी में १३ प्रतर, (इसके बाद दो-दो की संख्या कम करते जाने से) दूसरी शर्कराप्रभा (वंशा) में ११ प्रतर, तीसरी वालुकाप्रभा (शैला) में ९ प्रतर, चौथी पंकप्रभा (अंजना) में ७ प्रतर, पांचमी धूमप्रभा (रिष्टा) में ५ प्रतर, छट्ठी तमःप्रभा (मघा) में ३ प्रतर और सातवीं तमस्तमःप्रभा (माघवती) में १ प्रतर आया हुआ है, इस प्रकार कुल मिलाकर ४९ प्रतरों सातों नरक में होते हैं।

अब क्रमसर सातों नरकों की ४९ प्रतरों के इन्द्रक नरकावासों की नामावली बता रहे हैं।

रत्नप्रभा पृथ्वी के पहले नरक के प्रथम प्रतर मध्य में दिशा-विदिशागत नरकावासों की सर्व पंक्तियों के बीच मुख्य "सीमन्तक" नामक नरकावास आया हुआ है, दूसरे प्रतर पर "रोरक", तीसरे प्रतर पर "भ्रान्त", चौथे प्रतर पर "उद्भ्रान्त", पांचवें प्रतर पर "संभ्रान्त", छट्ठे प्रतर पर "असंभ्रान्त", सातवें प्रतर पर "विभ्रान्त", आठवें प्रतर पर "तप्त", नवमें प्रतर पर "शीत", दशवें प्रतर पर "वक्रान्त", ग्यारहवें प्रतर पर "अवक्रान्त", बारहवें प्रतर पर "विक्रान्त" और तेरहवें प्रतर पर "रोरुक"...।

द्वितीय शर्कराप्रभा पृथ्वी के प्रतरों के बीच में अनुक्रम से (१) स्तनिध (२) स्तनक (३) मनक (४) वनक (५) घट्ट (६) संघट्ट (७) जिह्व (८) अपजिह्व (९) लोल (१०) लोलावर्त और (११) स्तनलोलुप नरकेन्द्र जाने।

तृतीय वालुकाप्रभा पृथ्वी के प्रतरों के बीच में अनुक्रम से (१) तप्त (२) तपित (३) तपन (४) तापन (५) निदाघ (६) प्रज्वलित (७) उज्ज्वलित (८) संज्वलित (९) प्रसंज्वलित नामक नरकेन्द्रावास जाने।

चौथी पंकप्रभा पृथ्वी के प्रतरों के बीच क्रमशः (१) आर (२) तार (३) मार (४) वर्चस् (५) तमक (६) खाडखड और (७) खडखड नामक नरकेन्द्र आवास हैं।

पांचवी पंकप्रभा पृथ्वी के प्रतरों के बीच क्रमशः (१) खात (२) तम (३) भ्रम (४) अंध (५) अंधतम (तमिस्र) नामक नरकावास है।

छठवीं तमःप्रभा प्रतरों के मध्य में अनुक्रम से (१) हिम (२) वार्दल (३) लल्लक.. नरकेन्द्रावास आये हुए हैं।

सातवीं तमस्तमःप्रभा पृथ्वी के प्रतर के बीच में एक मात्र "अप्रतिष्ठान" नामक नरकेन्द्रावास आया है। इस तरह कुल मिलाकर १३ + ११ + ९ + ७ + ५ + ३ + १ = ४९ प्रतर हुए हैं।[१]

इन सभी प्रतरों के मध्य में गोल बाद में त्रिकोण बाद में चतुष्कोण फिर से गोल इस तरह अलग-अलग उसके अनुक्रम से नरकावास की श्रेणियाँ आयी हुई हैं। पुष्पावकीर्ण नरकावास अलग-अलग आये हुए हैं। उसमें कितने ही संख्यात योजन के तो कितने ही असंख्यात योजन के हैं। प्रथम पृथ्वी के प्रथम प्रतर के इन्द्रक नरकावास के चारों बाजु (१) पूर्व में "कांक्ष" (२) पश्चिम में "महाकांक्ष" (३) दक्षिण में "पिपास" और उत्तर में "अतिपिपास" नाम के चार प्रसिद्ध नरकावास हैं। उसी तरह दूसरी पृथ्वी के पहले प्रतर में उपर के जैसे (१) अनिच्छ (२) महाअनिच्छ (३) विन्ध्य (४) महाविन्ध्य। तीसरी पृथ्वी के प्रथम प्रतर में अनुक्रम से (१) दुःख (२) महादुःख (३) वेदना (४) महावेदना। चौथी नरक के प्रथम प्रतर में (१) निसृष्ट (२) अतिनिसृष्ट (३) निरोध (४) महानिरोध। पांचमी नरक के प्रथम प्रतर में (१) निरुद्ध (२) अनिरुद्ध (३) विमर्दन (४) महाविमर्दन। छट्ठी नरक के प्रथम प्रतर में (१) नील (२) महानील (३) पंक (४) महापंक तथा सातवीं नरक के प्रतर में (१) काल (२) महाकाल (३) रौरव और (४) महारौरव नामक नरकावास चारों दिशा में हैं।

(१) (A) बृहत्संग्रहणी (प्रक्षेप गाथा)-४७ से ५६ (B) त्रैलोक्यदीपिका-३५५ से.... (C) देवेन्द्रनरकेन्द्र प्रकरणम्...

"Many people might be led to Jainism through Buddhism. It is a stage before Jainism. The matter of knowledge obscuring karmas is important in this context. The Buddhists are on the right path. If they remove the knowedge obscuring karmas by holy acts they will see truth of Jainism in short time.

Jainism was first, Buddhism came from it. If we wish to have right understanding of Buddha or mahatma Jesus, we must be grounded in jainism.

- Noel Relting Jain
Emerson College, Boston Jan 7, 1967

८ व्यंतर देव

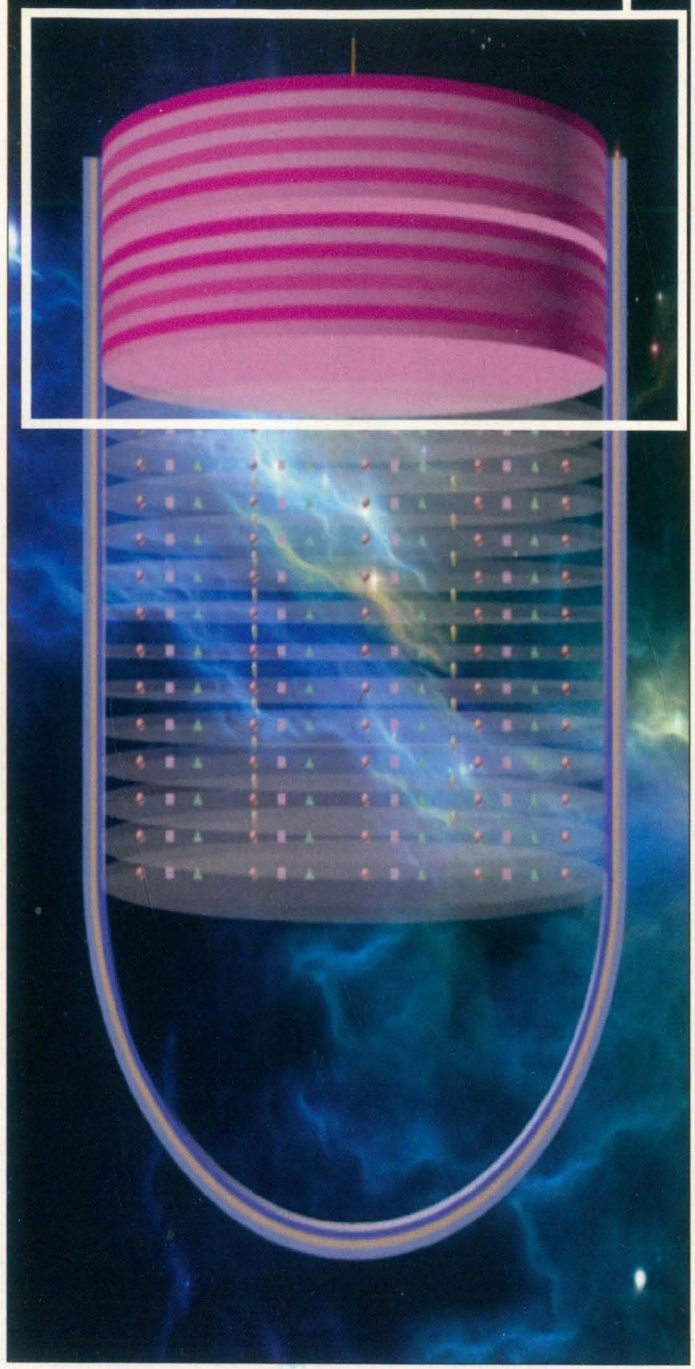

८ व्यंतर देव.....

रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक भूमि में जो प्रथम खरकांड के १६,००० योजन में सबसे उपर रहा हुआ १,००० योजन प्रमाण जो रत्न कांड है। उस रत्नकांड में ऊपर और नीचे १००-१०० योजन छोड़कर बीच के ८०० योजन में असंख्य भूमि नगर है वे बाहर से गोल है, और अन्दर से चौकोर (चतुष्कोण) तथा नीचे के भाग में कमल की कर्णिका के समान हैं। इनके आस-पास गहरी खाई और सुंदर किला शोभ रहा है तथा शतघ्नी अर्थात् तोपादि महायंत्रों से युक्त हैं, दुष्प्रवेश्य हैं, अयोध्य हैं, गुप्त हैं एवं समृद्धिपूर्ण हैं। इन नगरों में चमकते पूर्ण कलश और तोरणवाले दरवाजे लगे हुए हैं और दंडधारी देव किंकर निशदिन इनका रक्षण किया करते हैं। वहाँ पंचरंगी पुष्पों की सुगंध, अगुरु और किंदरू वगैरह धूप की सुवास भी फैली हुई ही होती हैं।

ये जो नगर होते हैं वे उत्कृष्ट से (बड़े में बड़े) जंबूद्वीप के समान होते हैं। मध्य नगर महाविदेह के समान होते हैं और जो छोटे नगर होते हैं वह भी भरत क्षेत्र के समान होते हैं।

इस नगर के अन्दर पिशाच, भूत, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग और गांधर्व आदि आठ[१] प्रकार के अत्यंत समृद्धिवान् व्यंतर देव रहते हैं। इनके दक्षिण और उत्तर दिशावाले दो भेद होते हैं।

ये आठों व्यंतर देव अति सुभग-स्वरूपवान् देखने में सौम्य होते है, हाथ-गलादि रत्नमय अलंकारों से विभूषित होते हैं, ये सुंदर वनमाला, मुकुट, कुंडलादि उत्पन्न करके धारण करनेवाले, इच्छानुसार आलाप-संलाप करनेवाले इच्छित रूप करनेवाले व स्वेच्छाचारी होते हैं इत्यादि...।

चलो मित्रो ! इन ८ व्यंतर देवो की कुछ विशिष्टताएं नीचे दिए गए कोष्टक से देखते हैं।

क्रम	व्यंतरों के नाम	वर्ण	चिह्न	दक्षिणेन्द्र के नाम	उत्तरेन्द्र के नाम	अग्र महिषी	सामानिकदेव	पर्षदा	कटक	आत्मरक्षकदेव
१	पिशाच	श्याम	कदंबवृक्ष	काल	महाकाल	४	४,०००	३	७	१६,०००
२	भूत	श्याम	सुलस वृक्ष	सुरूप	प्रतिरूप	४	४,०००	३	७	१६,०००
३	यक्ष	श्याम	वड वृक्ष	पूर्णभद्र	माणिभद्र	४	४,०००	३	७	१६,०००
४	राक्षस	श्वेत	खट्वांग वृक्ष	भीम	महाभीम	४	४,०००	३	७	१६,०००
५	किन्नर	नील	अशोक वृक्ष	किन्नर	किंपुरुष	४	४,०००	३	७	१६,०००
६	किंपुरुष	श्वेत	चंपक वृक्ष	सत्पुरुष	महापुरुष	४	४,०००	३	७	१६,०००
७	महोरग	श्याम	नाग वृक्ष	अतिकाय	महाकाय	४	४,०००	३	७	१६,०००
८	गांधर्व	श्याम	तुंबरु वृक्ष	गीतरति	गीतयश	४	४,०००	३	७	१६,०००

८ व्यंतरों की जानने जैसी कुछ विशेष बातें... (१) उत्कृष्ट आयु = १ पल्योपम। (२) देवियों की उत्कृष्ट आयु = अर्ध पल्योपम (३) व्यंतर देव-देवी दोनों की जघन्य आयु = १०,००० वर्ष (४) शरीर की उत्कृष्ट ऊंचाई = ७ हाथ (५) जघन्य ऊंचाई = अंगुल का असंख्यातवा भाग (उत्पत्ति-जन्म के प्रथम समय) (६) लेश्या = प्रथम तीन, (७) उत्कृष्ट आयुवाले को श्वासोश्वास = ७ स्तोक (८) उत्कृष्ट आयुवालों को आहार-३ दिन बाद (९) जघन्य आयुवाले को आहार = एकांतरा (१ दिन के बाद...) वगैरह।

(१) (A) तत्त्वार्थ सूत्र, चतुर्थ अध्ययन सूत्र-१२ (B) बृहत्संग्रहणी, गाथा-३५ (C) तिलोयपण्णत्ति-६/२५ (D) त्रिलोकसार-३५१ (E) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-१९६ से २०४

वेदांत दर्शन के पहले भी जैन दर्शन (जैनधर्म) प्रचार में था इसके बारें में मुझे तनिक भी शक नहीं है। सृष्टि के आरंभ से ही जैनधर्म प्रचार में है। जैनधर्म और सृष्टि इनकी शरुआत एक साथ ही हुई है।

- डॉ. सतीशचंद्र विद्याभूषण (M.A.P.H.D.) संस्कृत कोलेज, प्रिन्सिपाल, कलकत्ता

"The Jain Sadhu leads a life which is praised by all. He practises the Vrats and the rites strictly and shows to the world the way one has to go in order to realise the soul (the Atma). Even the life of a Jain householder is so faultless that India should be proud of him."

Dr. Satischandra Vidyabushan

नोंध :- यहां पर ३२ चित्र के जगह के अभाव पर २८ चित्र दिये गये है।

१.कमला

१.रुपवती

१.पूर्णा

१.वसन्तिका

१.रोहिणी

१.भुजगा

१.सुघोषा

२.कमलप्रभा

२.बहुरुपा

२.बहुपुत्रिका

३.केतुमति

२.नवमिका

२.भुजगावती

२.विमला

३.उत्पला

३.सुरुपा

३.उत्तमा

३.रतिसेना

३.ह्री

३.महाकच्छा

३.सुस्वरा

४.सुदर्शना

४.सुभगा

४.तारका

४.रतिप्रिया

४.पुष्पवती

४.स्फूटा

४.सरस्वती

८ व्यंतर देवों की अग्रमहिषी.....

हमने पीछे के ही प्रकरण में पढ़ा कि पिशाचादि ८ इन्द्र होते है तथा उनके ही दक्षिणेन्द्र और उत्तरेन्द्र के दो-दो विभाग से १६ इन्द्र हो जाते हैं। वह १६ इन्द्र महाबलीष्ट-बलवान् होते है तथा बहुत ही समृद्धशाली, अत्यंत सुखी, संपूर्ण उत्साही और अपूर्व सामर्थ्यवाले कहे जाते हैं। जिस तरह पृथ्वीलोक के राजाओं की रानियाँ होती हैं उसी प्रकार इन देवों की भी रानियां (देवियाँ) होती हैं। वे कौन हैं? कैसी हैं? कितनी मुख्य हैं अर्थात् पट्टरानी (अग्रमहिषी) और दूसरी भी कितनी हो सकती हैं? इत्यादि नीचे दिये गये कोष्टक से देखते हैं! इन ८ व्यंतर देवों की मुख्य अग्रमहिषीयाँ.....

१	पिशाचेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) कमला	(२) कमलप्रभा	(३) उत्पला	(४) सुदर्शना
२	भूतेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) रूपवती	(२) बहुरूपा	(३) सुरूपा	(४) सुभगा
३	यक्षेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) पूर्णा	(२) बहुपुत्रिका	(३) उत्तमा	(४) तारका
४	राक्षसेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) पद्मा	(२) वसुमती	(३) कणका	(४) कनकप्रभा
५	किन्नरेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) वसन्तिका	(२) केतुमति	(३) रतिसेना	(४) रतिप्रिया
६	किंपुरुषेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) रोहिणी	(२) नवमिका	(३) ह्री	(४) पुष्पवती
७	महोरगेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) भुजगा	(२) भुजगावती	(३) महाकच्छा	(४) स्फूटा
८	गांधर्वेन्द्र की ४ अग्रमहिषी =	(१) सुघोषा	(२) विमला	(३) सुस्वरा	(४) सरस्वती

सोलह इन्द्रों में से जो दक्षिण भाग के कालादि ८ इन्द्र हैं उनकी कमलादि ३२ (बत्तीस) इन्द्राणी पूर्व जन्म में नागपुरवासी वृद्ध कन्या थी (अर्थात् बड़ी उम्र होने पर भी कन्या ही रही थी) और उत्तर दिशा के महाकालादि इन्द्र की कमलादि ३२ (बत्तीस) इन्द्राणी है वे साकेतपुरवासी वृद्ध कन्या थी। ये सभी ६४ (चोंसठ) बड़े श्रेष्ठियों की उमरलायक कन्याएं थी। इनके माता-पिता के नाम भी इनके अपने नाम के अनुसार ही थे। ये सभी पुष्पचूला नाम की आर्या (साध्वीजी) की शिष्या बनी थीं। इन्होंने भगवान श्री पार्श्वनाथ के पास में दीक्षा स्वीकार की थी। इनका चारित्र अतिचार वाला था। अंत में पासखमण (१५ उपवास) का अनशन किया। जब इनकी मृत्यु हुई तब वे आलोचना किए बिना और प्रतिक्रमण रह जाने से यहां कालादि व्यंतरेन्द्रों की इन्द्राणियां हुई है।

इन ६४ (चौंसठ) इन्द्राणियों में से प्रत्येक को १,०००-१,००० देवियों का परिवार होता है। तथा इनमें १,०००-१,००० नयी देवियों को उत्पन्न करने की सामर्थ्यता भी होती है। अतः इस गिनती के अनुसार प्रत्येक इन्द्र के अन्तःपुर में ४,००० लावण्य-अत्यंत सुंदरतावाली देवियाँ होती हैं।[१]

वर्तमान में देव-देवियों की जो आराधना होती है, उसमें से अधिकांश देव-देवियों भवनपति-व्यंतरनिकाय के होते हैं। यक्ष-यक्षिणियां, दिक्कुमारीका, विद्यादेवियां, श्री ह्री आदि षट् देवियां, सरस्वती, माणिभद्र, काला-गोरा भैरू, घंटाकर्ण, नाकोडा भैरुजी, ५२ वीर, ६४ योगिनी (जोगिनी) क्षेत्रपालादि सभी इसी निकाय के गिने जाते हैं।

५२ वीर के नाम : वीर, क्षेत्रपाल, कपिल, बटुक, नारसिंह, गोपाल, भैरव, गरुड, रक्तसुवर्ण, देवसेन, रुद्रवरुणा, भद्र, वज्र, वज्रजंघ, स्कंध, कुरु, प्रियंकर, प्रियमित्र, वह्नि, कंदर्प, हंस, एकजंघ, घंटापथ, दत्तक, काल, महाकाल, मेघनाद, भीम, महाभीम, तुंगभद्र, विद्याधर, वसुमित्र, विश्वसेन, नाग, नागहस्त, प्रद्युम्न, कपिल, नकल, आह्लाद, त्रिमुख, पिशाच, भूतभैरव, महापिशाच, कालमुख, शुनक, अस्थिमुख, रतोवेध, श्मशानचार, कलिकल, भृंग, कंटक, बिभिषण...इत्यादि।

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-२२३ से २३६

६४ योगिनी

वाराही, वामनी, गरुडा, इन्द्राणी, आगनिही, वाम्या, नैऋत्या, वारूणी, वायव्या, सौम्या, ईशानी, ब्रह्माणी, वैष्णवी, माहेश्वरी, वैमानिका, शिवा, शिवदूति, चामुंडा, जया, विजया, अजिता, अपराजिता, हरसिद्धि, कालिका, चंडा, सुचंडा, कनकदंता, सुदंता, उमा, घंटा, सुघंटा, मांसप्रिया, आशापुरी, लोहिता, अंबा, अस्थिभक्षी, नारायणी, नारसिंही, कौमारा, वानरति, अंगा, वंगा, दीर्घदृष्टा, यमदृष्टा, प्रभा, सुप्रभा, लंबा, लंबोष्टि, भद्रा, सुभद्रा, काति, रौद्री, रौद्रमुखी, कराला, विकराला, साक्षी, विकटाक्षी, तारा, सुतारा, रंजनीकरी, रंजना, श्वेता, भद्रकाली, क्षमाकरी.....

(कनक जैन विविध संग्रह.... भाग १/१२६)

पिशाच
भूत
यक्ष
राक्षस
किन्नर
किंम्पुरुष
महोरग
गांधर्व

व्यंतर देवों की ८७ जाति.....

चलो मित्रो ! अभी हमने जो पीछे ८ प्रकार के व्यंतर देवों की बातें की, उनके और भी कुछ भेद-प्रभेद हम आपको बताना चाहते हैं, तो चलिए देखते हैं व्यंतर देवों की ८७ जातियाँ....!!!

पिशाच के १६ प्रकार : (१) कुष्माण्ड (२) पटक (३) जोष (४) अह्निक (५) काल (६) चोक्ष (७) अचोक्ष (८) महाकाल (९) वनपिशाच (१०) तृष्णिक (११) तालमुखर (१२) देह (१३) विदेह (१४) महादेव (१५) पिशाच (१६) अधस्तारक। यह स्वाभाविक सुंदर रूपवाले, सौम्य आकृतिवाले तथा कंठ और हाथ में रत्नों के आभूषण को धारण करते हैं।

भूत के ९ प्रकार : (१) सूक्ष्म (२) प्रतिरूप (३) अतिरूप (४) भूतोत्तम (५) स्कन्दिकाक्ष (६) महावेग (७) महास्कन्दिक (८) आकाशक (९) प्रतिछन्न। सुंदराकृति और उत्तम रूपवाले ये देव अपने अंगों पर विविध प्रकार के विलेपन करते हैं।

यक्ष के १३ प्रकार : (१) पूर्णभद्र (२) माणिभद्र (३) श्वेतभद्र (४) हरिभद्र (५) सुमतभद्र (६) व्यतिपाकभद्र (७) सर्वतोभद्र (८) सुभद्र (९) यक्षोत्तम (१०) रूपयक्ष (११) धनाहार (१२) धनातिप (१३) मनुष्ययक्ष। इनका शरीर मानोन्मान के प्रमाण वाला होता हैं। इनके हाथ-पैर के तलिये, तालवा, जीभ, ओष्ठ और नाखुन लाल वर्ण के होते हैं। इनके मस्तक पर मुकुट और अंगों पर विविध आभूषण होते हैं। वह स्वभाव से गंभीर और मनोहर दर्शनीय होते हैं।[१]

राक्षस के ७ प्रकार : (१) विघ्न (२) भीम (३) महाभीम (४) राक्षस-राक्षस (५) विनायक (६) ब्रह्मराक्षस (७) जलराक्षस। इनके विकराल लटकते होठ होते हैं, तथा यह सुवर्ण के आभरण पहनते हैं, और इनकी आकृति बड़ी ही भयंकर होती हैं।

किन्नर के १० प्रकार : (१) किन्नर (२) रूपशाली (३) हृदयसंगम (४) रतिप्रिय (५) रतिश्रेष्ठ (६) किंपुरुष (७) मनोरम (८) अनिन्दित (९) किंपुरुषोत्तम (१०) किन्नरोत्तम। इन देवों के मुख अधिक सौंदर्यवान होते हैं और तेज से झलहलता मुगुट भी धारण करते हैं।

किंपुरुष के १० प्रकार : (१) सत्पुरुष (२) पुरुषोत्तम (३) यशस्वान (४) महादेव (५) मरुत (६) मेरुप्रभ (७) महापुरुष (८) अतिपुरुष (९) पुरुष (१०) पुरुषऋषभ। ये देव अति रूपवान् तथा हाथ और मुख मनोहर (रम्य दृष्टिवाले) होते है। विचित्र प्रकार के पुष्पों की माला को धारण करते है तथा जात जात के विलेपन अंगों पर करते है।

महोरग के १० प्रकार : (१) भूजग (२) भोगशाली (३) महाकाय (४) अतिकाय (५) भास्वंत (६) स्कन्धशाली (७) महेश्वक्ष (८) मेरुकान्त (९) महावेग (१०) महोरम। यह सभी देव महावेगवाले होते है और बड़े शरीर को धारण करते है। तथा शरीर पर चित्र-विचित्र आभूषण को भी धारण करते हैं।

गांधर्व के १२ प्रकार : (१) हाहा (२) हूहू (३) तुम्बरु (४) नारद (५) ऋषिवादक (६) भूतवादक (७) कादम्ब (८) महाकादम्ब (९) रैवत (१०) विश्वासु (११) गीतरति[२] और (१२) सद्गीतयश। इन देवों का स्वर बहुत ही मधुर होता है, वो प्रियदर्शनी तथा उत्तमरूपवाले होते हैं। इस प्रकार से ८७ जाति भेद-प्रभेद से व्यंतर देवों की होती है।

---

(१) २४ तीर्थंकरों के यक्ष-यक्षिणियाँ भी यक्ष निकाय के होने से व्यंतर जाति के होते हैं।

(२) श्री सरस्वती देवी इस (गीतरति) इन्द्र की अग्रमहिषी (मुख्य पट्टरानी) हैं। इस तरह "क्षेत्रसमास" तथा "भगवती सूत्र" और "स्थानांग सूत्र" की टीका में कहा गया है। तथा "सेनप्रश्नोत्तर-२३६" में भी यहीं बात पुरवार की गई हैं।

अमेरीका के प्रख्यात खगोल - वैज्ञानिक डॉ. कार्ल-सागान अन्य ग्रहों पर जीवन का अस्तित्व अनिवार्य मानते हैं । उनकी यह मान्यता अनेक वैज्ञानिक तथ्यों पर आधारित हैं।

जो मेरा है वहीं सत्य है ऐसा आग्रह नहीं, बल्कि जो सत्य है वहीं मेरा है... ऐसा आग्रह रखनेवाला ही सत्यग्राही और सत्याग्राही होता है।

अणपन्नी

पणपन्नी

ऋषिवादी

भूतवादी

क्रंदित

महाक्रंदित

कोहंड

पतंग

८ प्रकार के वाणव्यंतर देव.....

प्रिय मित्रो ! पूर्व के प्रकरण में हमने व्यंतर देवों की बात की, अभी हम आपको वाणव्यंतरों के बारे में भी कुछ नयी जानकारी देंगे... तो चलिए... हो जाओ तैयार... !

रत्नप्रभा नामक प्रथम नरक की पृथ्वी में प्रथम खरकांड के अंतर्गत रहे हुए १,००० योजन प्रमाण प्रथम रत्नकांड के जो उपर-नीचे १००-१०० योजन छोड़ दिए थे उसमें ऊपर के १०० योजन में भी ऊपर-नीचे के १०-१० योजन को छोड़कर बीच में रहे हुए ८० योजन के विभाग में ८ प्रकार के वाणव्यंतर देवों का निवास (रहेवास) है। अर्थात् अपनी पृथ्वी की सपाटी से १० योजन नीचे जाने के बाद तुरंत ही ८० योजन में ८ वाणव्यंतर देवों का निवासस्थान है। अब इन ८ प्रकार के वाणव्यंतर देवों संबंधी विशेष जानकारी प्राप्त करते हैं... नीचे के कोष्ठक द्वारा.....

क्रम	वाणव्यंतर के नाम[1]	दक्षिणेन्द्र के नाम	उत्तरेन्द्र के नाम
१	अणपन्नी	सन्निहित	सामानिक
२	पणपन्नी	धाता	विधाता
३	ऋषिवादी	ऋषि	ऋषिपालित
४	भूतवादी	ईश्वर	महेश्वर
५	क्रंदित	सुवत्स	विशाल
६	महाक्रंदित	हास्य	हास्यरति
७	कोहंड	श्रेयांस	महाश्रेयांस
८	पतंग	पतंग	पतंगपति....

तथा इनके वर्ण, चिह्न, अग्रमहिषी, सामानिक देव, पर्षदा, कटक, आत्मरक्षक वगेरे सर्व ८ व्यंतर की तरह जानना...

यह ८ जाति के वाणव्यंतर देव पूर्व जन्म में अज्ञान कष्टपूर्वक तपस्या करने से इस भूमि-नगर में व्यंतर के रूप में उत्पन्न होते हैं। तथा पास-गले में फांसा, विषपान, अग्नि प्रवेश, ऊपर से गिरकर तथा भूख और प्यास सहन करने से भी जो मृत्यु अंगीकार करता है और उस समय उस मनुष्य का जो शुभ भाव हो तो वह यहां वाणव्यंतर देव बनता हैं।

इन देवों की जातियों में जिनका उत्कृष्ट आयुष्य होता है वे चार मुहूर्त में श्वासोश्वास लेते हैं तथा चार दिन बाद क्षुधातुर होते हैं। आहार की इच्छा होते ही संकल्प मात्र से ही सार-सार पुद्गल इनके सर्व अंगों में व्याप्त हो जाता है। इसलिए देवों में कभी भी कवलाहार नहीं होता। और जो वीर, चंडिका, कालिका आदि हिंसक देव तृप्त होते हैं तो वे मद्य-मांसादि की आहुति से तुष्टमान होते है। वे मिथ्यात्व मोहित देव पूर्व जन्म की आदत होने से इन वस्तुओं को देखकर ही सन्तुष्ट होते हैं परन्तु इनका आहार नहीं करते।[2]

(१) बृहत्संग्रहणी, गाथा-४० (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१२, श्लोक-२४९ से २६७

"Jainism is an old religion of India with great doctrines. It sets the highest store by the principles of truth and Ahimsa which were also the motive force behind every activity of Mahatma Gandhi is his long public career."

- G. B. Pant

"Lord Mahavira conquered over death. His teachings were for the salvation of the whole humanity. Had they been conceived in a narrow spirit, they would have lost their universal appeal and not travelled to foreign countries like Arabia."

- Acharya Narendra Deva

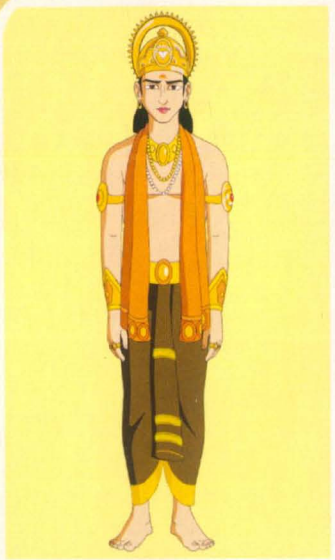

असुरकुमार

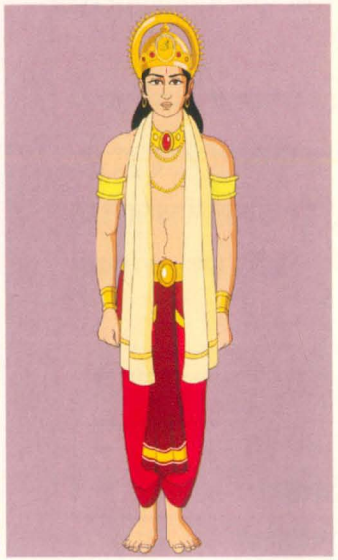

नागकुमार

सुपर्णकुमार

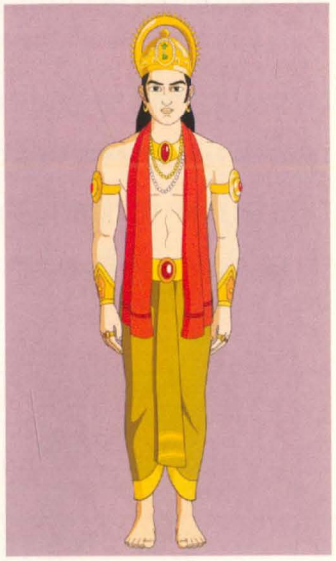

विद्युतकुमार

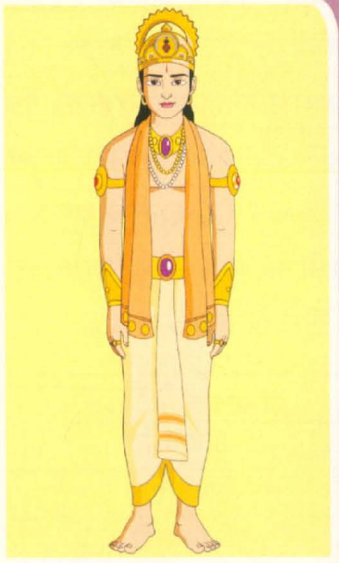

अग्निकुमार

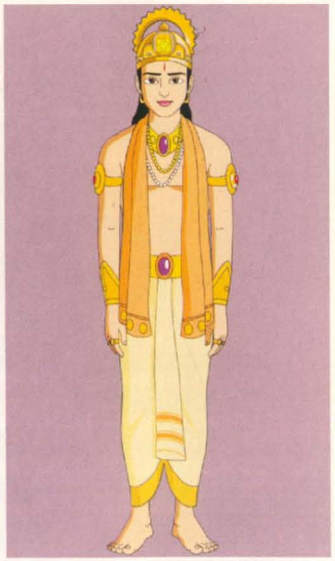

द्वीपकुमार

उदधिकुमार

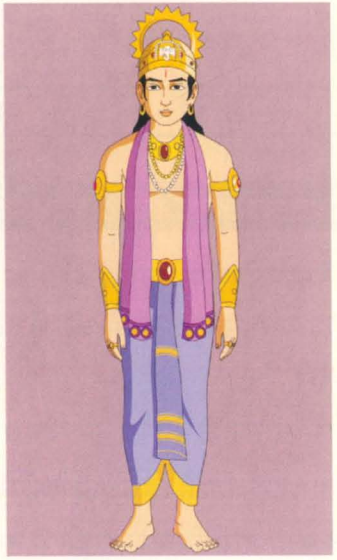

दिशिकुमार

वायुकुमार

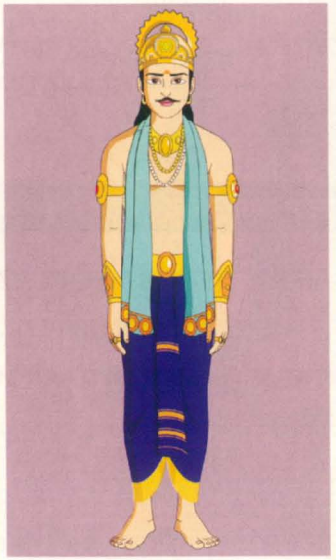

स्तनितकुमार

१० प्रकार के भवनपति देव.....

प्रथम नरक के जीवों के रहने के स्थान को रत्नप्रभा नामक पृथ्वी कहते हैं, और उसी की सपाटी पर हम सब बस रहे हैं। वह रत्नप्रभा नरक की पृथ्वी १,८०,००० (एक लाख अस्सी हजार) योजन जाड़ी (चौड़ी) है। अब उसमें ऊपर-नीचे के १,०००-१,००० योजन को छोड़कर बीच के १,७८,००० (एक लाख अट्ठोत्तर हजार) योजन में उतनी ही ऊंचाई वाले २५ माले के बिल्डींग की कल्पना कीजिए... अभी इसी बिल्डींग के १, ३, ५, ७, ९, ११, १३, १५, १७, १९, २१, २३, २५ (एक संख्या के) नंबर वाले माले में प्रथम नरक के जीवों का रहवास है। क्योंकि वहीं पर वें उत्पन्न होते है तथा अपने पापों को भुगतते हुए दुःखमय जीवन पूर्ण करते हैं।

अब रहे हुए २, ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०, २२, २४ नंबर के माले है, उसमें २ तथा २४ नंबर के माले संपूर्ण खाली है। अर्थात् वहाँ किसी भी प्रकार के देव तथा नारक का वसवाट ही नहीं हैं। इसलिए २ तथा २४ के बीच में रहे हुए ४, ६, ८, १०, १२, १४, १६, १८, २०, २२ नंबर के मालों में अर्थात् यह बताए गए १० मालों में १० प्रकार के भवनपति देवों का निवासस्थल है। अब चलिए आपको इन १० प्रकार के भवनपति की विशेष बातें बताते हैं कोष्टक के द्वारा...

क्रम	भवनपति के नाम [1]	दक्षिणेन्द्र के नाम [2]	उत्तरेन्द्र के नाम [2]	दक्षिणेन्द्र भवन संख्या	उत्तरेन्द्र भवन संख्या	दोनो श्रेणी के भवन	निकाय चिह्न [4]	देह वर्ण [5]	वस्त्र वर्ण [6]	दक्षिण सामानिक देव	उत्तर सामानिक देव	दक्षिण आत्मरक्षक देव	उत्तर आत्मरक्षक देव
१	असुरकुमार	चमरेन्द्र	बलीन्द्र	३४ लाख	३० लाख	६४ लाख	चूडामणि	कृष्ण	रक्त	६४,०००	६०,०००	२,५६,०००	२,४०,०००
२	नागकुमार	धरणेन्द्र	भूतानेन्द्र	४४ लाख	४० लाख	८४ लाख	फणी	श्वेत	नील	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
३	सुपर्णकुमार	वेणुदेवेन्द्र	वेणुदालीन्द्र	३८ लाख	३४ लाख	७२ लाख	गरुड	सुवर्ण	श्वेत	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
४	विद्युतकुमार	हरिकान्तेन्द्र	हरिसहेन्द्र	४० लाख	३६ लाख	७६ लाख	वज्र	रक्त	नील	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
५	अग्निकुमार	अग्निशिखेन्द्र	अग्निमानवेन्द्र	४० लाख	३६ लाख	७६ लाख	कलश	रक्त	नील	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
६	द्वीपकुमार	पूर्णेन्द्र	विशिष्टेन्द्र	४० लाख	३६ लाख	७६ लाख	सिंह	रक्त	नील	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
७	उदधिकुमार	जलकान्तेंद्र	जलप्रभेन्द्र	४० लाख	३६ लाख	७६ लाख	अश्व	श्वेत	नील	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
८	दिशिकुमार	अमीतगतीन्द्र	अमीतवाहनेन्द्र	४० लाख	३६ लाख	७६ लाख	हाथी	सुवर्ण	श्वेत	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
९	वायुकुमार	वेलंबेन्द्र	प्रभंजनेन्द्र	५० लाख	४६ लाख	९६ लाख	मगर	नील	रक्त	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
१०	स्तनितकुमार	घोषेन्द्र	महाघोषेन्द्र	४० लाख	३६ लाख	७६ लाख	सराव	सुवर्ण	श्वेत	६,०००	६,०००	२४,०००	२४,०००
कुल				४ क्रोड ६ लाख	३ क्रोड ६६ लाख	७ क्रोड ७२ लाख							

(१) (A) जीवसमास-१७ (B) बृहत्संग्रहणी, गाथा-१९ (C) तत्त्वार्थ सूत्र, अध्ययन-४, सूत्र-१९ (D) पण्णवणा, पद-२, सूत्र-१३७ (E) ठाणांग सूत्र-१०, सूत्र-७३६ (F) भगवती सूत्र, शतक-१३, उद्देशा-२, सूत्र-२ (G) उत्तराध्ययन सूत्र अध्य.-३६ गाथा-२०६/१५६० (२) (A) ठाणांगसूत्र-२, उद्देशा-३, सूत्र-१०५ (B) देवेन्द्रस्तवपयन्ना-३९ (३) समवायांग सूत्र, गाथा-६६/६७, (४) पण्णवणासूत्र, पद-२, सूत्र-१७७ (५) - (६) पण्णवणा सूत्र, पद-२ सूत्र-१८७ (१४६ से १४९)

यह १० प्रकार के भवनपति देवों के कुल मिलाकर रत्नप्रभा पृथ्वी में ७,७२,००,००० (सात क्रोड बहोत्तर लाख) भवन आए हुए हैं तथा सभी भवनों में जिनेश्वर भगवंतों के १-१ जिनालय आए हुए हैं । वह सभी जिनालयों में १८०-१८० भगवान है। इसलिए ७,७२,००,००० जिनालयों में कुल १३,८९,६०,००,००० परमात्मा को रोज सुबह "सकलतीर्थ सूत्र" के द्वारा हम राई प्रतिक्रमण में वंदना करते हैं। इसलिए कहा गया है...

"सात क्रोड ने बहोत्तर लाख,
भवनपतिमां देवल भाख,
एकसो ऐंसी बिंब प्रमाण,
एक-एक चैत्ये संख्या जाण,
तेरसें क्रोड नेव्यासी क्रोड,
साठ लाख वंदु कर जोड ॥"

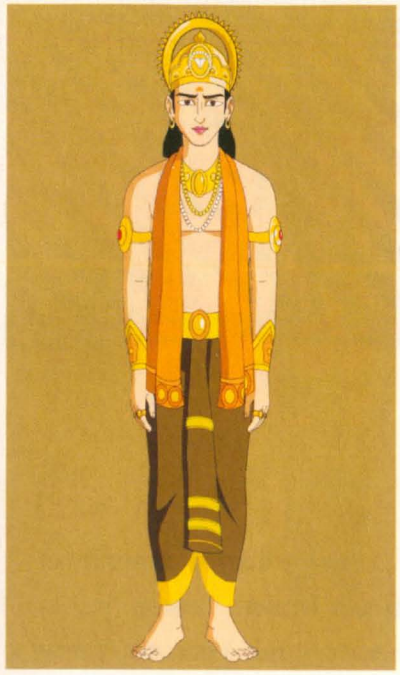

असुरकुमार

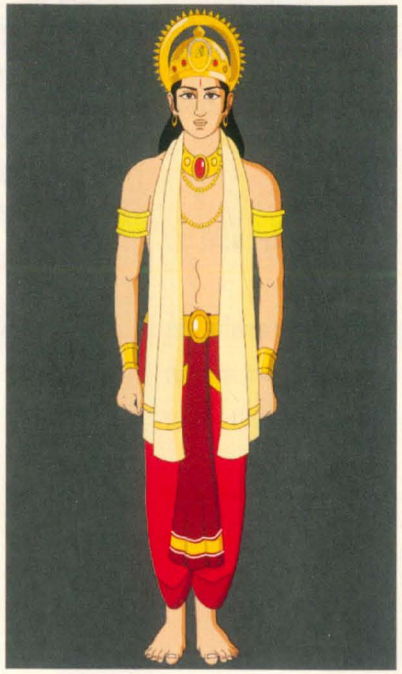

नागकुमार

सुपर्णकुमार

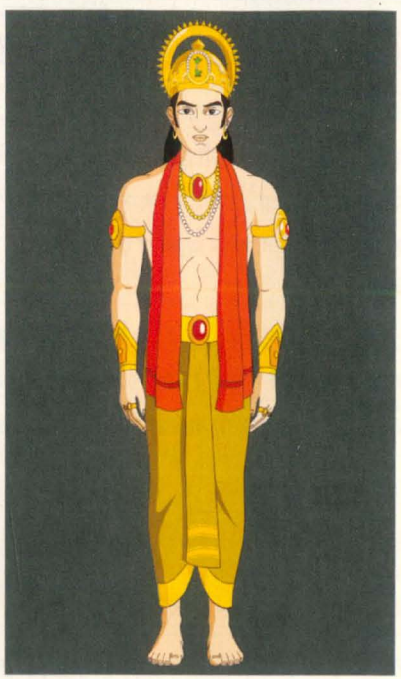

विद्युतकुमार

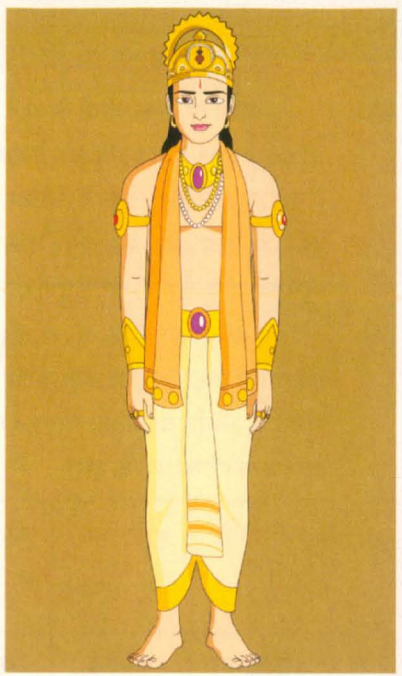

अग्निकुमार

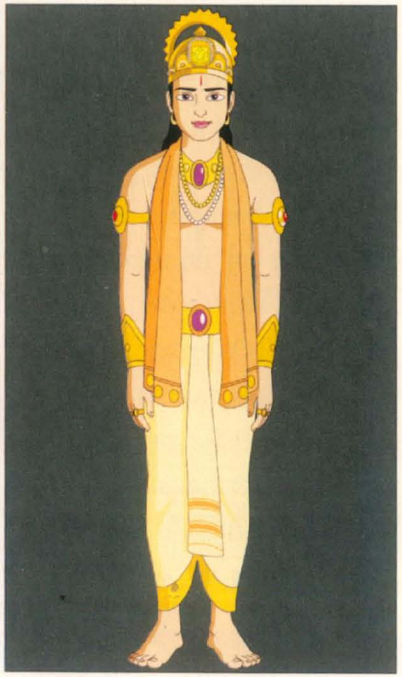

द्वीपकुमार

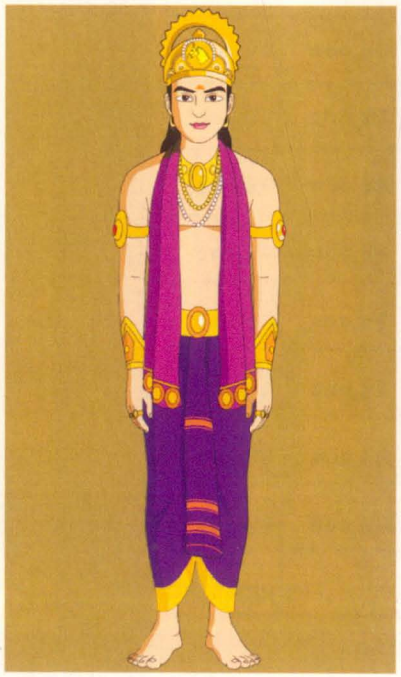

उदधिकुमार

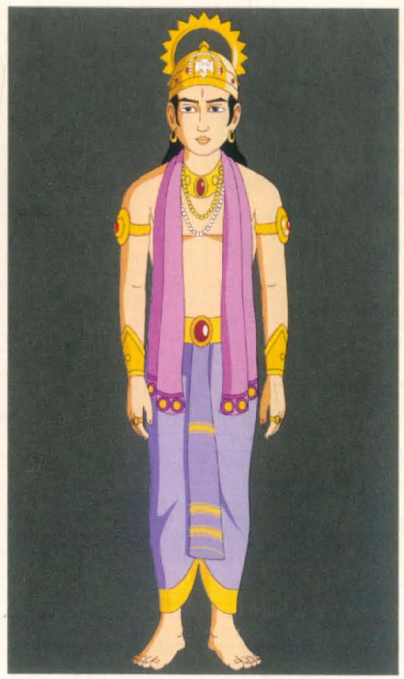

दिशिकुमार

वायुकुमार

स्तनितकुमार

भवनपति निकाय के १० भेद.....

(१) "असुरकुमार" - ये देव सर्वांगोपांगों से परम लावण्यवाले, सुन्दर, देदीप्यमान-झगमगता मुकुट को धारण करनेवाले, बड़ी कायावाले और श्याम कान्तिवाले होते हैं। (२) "नागकुमार" - मस्तक तथा मुख पर अधिक शोभा युक्त, मृदु और ललित गतिवाले, श्वेतवर्णी होते हैं। (३) "सुपर्णकुमार" - गरदन तथा उदर से शोभायमान, कनक गौरवर्णमय होते हैं। (४) "विद्युतकुमार" - स्निग्ध अवयवों से सुशोभित, जित-स्वभावी, तपे हुए सुवर्णमय होते हैं। (५) "अग्निकुमार" - सर्वांगोपांग से मान-उन्मान प्रमाणवाले, विविध प्रकार के आभूषणों को धारण करनेवाले, तप्त सुवर्ण के समान वर्णवाले होते हैं। (६) "द्वीपकुमार" - स्कन्ध और वक्षःस्थल, बाहु और अग्र हस्त में विशेष करके शोभा सहित, उत्तम हेमप्रभा के समान वर्णवाले होते हैं। (७) "उदधिकुमार" - उरु और कटिभाग में अधिक शोभावाले श्वेतवर्णी होते हैं। (८) "दिक्कुमार" - जंघा और पैरों में अत्यंत शोभावाले, स्वर्णसमान गौरवर्णवाले होते हैं। (९) "वायुकुमार" - स्थिर-पुष्ट-सुन्दर और गोल गात्रोंवालें, गम्भीर और नत (नमा हुआ) उदर युक्त, निर्मल ऐसे प्रियंगु वृक्ष के जैसी श्याम कान्तिवाले होते हैं। (१०) "स्तनितकुमार" - स्निग्धावयवी, अतिगम्भीर नादवाले, जातिमान सुवर्ण के समान कान्तिवाले गौरवर्णी होते हैं। ये भवनवासी देव सदैव विविध प्रकार के आभूषण तथा शस्त्रों से अत्यंत शोभायमान होते हैं।

प्रश्न : भवनपति के १० प्रकार के देवों को "कुमार" शब्द से क्यों संबोधित किया जाता है?

उत्तर : लोक में मौजशोख में, अढखेली में, छेड़छाड़ में, तथा क्रीडा करने में जो आनंद माने उसे "कुमार" अथवा "बालक" कहते हैं। ऐसे बालक रास्ते चलते जानवरों को बिना दोष पत्थर मारे, लकडी मारे, कुत्ते के कान पकड़े, बकरी के सिंग और ढोर के पृच्छों से भी मस्ती की चेष्टाएँ करें। ऐसे कुतूहल से जैसे वे अनेक प्रकार से खेल-कूद करके खुश होते हैं, उसी तरह ये देव भी बाल-विशेषरूप के योग्य चेष्टा अर्थात् खेलना, कूदना, अच्छे अच्छे वस्त्रादि पहनना, साथ ही नारकी के जीवों को मारना-पीटना, छेदन-भेदन करना आदि में आनन्द मानते हैं। क्योंकि ये जन्मान्तर के संस्कार देवगति में साथ ही लेकर आए हैं। अरे ! उसके प्रभाव से ही तो यह स्थान पाते हैं।[१]

- किसी को शंका हो कि यह तो देवता जैसी अत्यन्त समझदारी की अवस्था है फिर भी ऐसी बाल चेष्टाएँ क्यों करते होंगे ? तो राजा का कुत्ता हलका भोजन न करे, किन्तु कुत्ते की जाती है इसलिए जूता तो काटेगा ही। इसी तरह देवत्व मिल जाने पर भी नरक के जो निराधार, निर्बल, और पराधिन तथा दुःखी जीवों पर सत्ता व बल का क्रूर प्रयोग करके क्रीडा-कुतूहल द्वारा मन में आनंद मनाते हैं।

(१) (A) प्रज्ञापना सूत्र, पद-१ (B) प्रवचन सारोद्धार-१९४ द्वार

कोलंबिया विश्वविद्यालय के डॉ. लियोड भोज का कहना है कि - "अपनी आकाशगंगा में १०० अरब तारे हैं, जिनमें २० करोड़ तारे अपने सूर्य के समान है और ६० करोड़ ग्रहों पर सभ्य जीवन है।"

श्रीलंका में जन्मे अमेरीकी वैज्ञानिक डॉ. सोरिल ने अनेक तर्कों द्वारा यह सिद्ध किया है कि - "दुसरे ग्रहों एवं उपग्रहों पर जीवन का अस्तित्व है।"

वह समय अवश्य आयेगा जब विज्ञान द्वारा अज्ञात विषयों का अन्वेषण होगा। विश्व (ब्रह्माण्ड) जैसा कि हम सोचते थे, उससे भी कही अधिक उसका आध्यात्मिक अस्तित्व है। वास्तविकता तो यह है कि हम उस आध्यात्मिक जगत् के मध्य में है जो भौतिक जगत् से ऊपर है।

अरुणोदधि समुद्र में चमरेन्द्र महाराजा का आया हुआ उत्पात पर्वत.....

अरुणोदधि समुद्र

चमरेन्द्र महाराजा की चमरचंचा और उत्पातपर्वत.....

भवनपति के १० भेद से... २० इन्द्र उत्तर और दक्षिण दिशा में होते हैं यह हमने पूर्व के प्रकरण में पढ़ा, अब हम आपको असुरकुमार के जो दक्षिण दिशा में रहे हुए इन्द्र महाराजा चमरेन्द्र हैं, उनके बारे में कुछ जानकारी देते हैं...., तैयार हो ? तो चलो ! चमरेन्द्र महाराजा के जीवन को दृष्टिपात करने...।

इस जंबूद्वीप में सुदर्शन मेरुपर्वत से तिरछी दक्षिण दिशा में असंख्य द्वीप-समुद्रों के जाने के बाद अरुणवर नामक द्वीप आता है। इसकी बाह्य वेदिका के अंत भाग से बियालीस हजार योजन छोड़कर अरुणवर समुद्र के मध्यभाग में "चमर" नामक असुरेन्द्र का "तिगिंछिकूट" नाम का मनोहर, लक्ष्मी से शोभित महान उत्पात पर्वत आया हुआ है। यह १,७२१ योजन ऊँचा है और ऊंचाई के चौथे अंश से पृथ्वी में घुसा हुआ हैं।

इसका विस्तार मूल में १,०२२ योजन है, मध्य में ४२४ योजन है और शिखर के भाग में ७२३ योजन है। अर्थात् जैसे एक बड़ा मुकुंद होता है, वह नीचे ऊपर विस्तारवाला होता है और मध्य में क्षाम अर्थात् पतला होता है। पद्मवर वेदिका और वनखंड के कारण शोभायमान इस सर्वरत्नमय पर्वत के शिखर पर मध्य में सुंदर एक प्रासाद है। उस प्रासाद की ऊंचाई २५० योजन है और विस्तार १२५ योजन है तथा फर्सादि अत्यंत रमणीय है। इसके अन्दर ८ योजनवाली मणिपीठ पर चमरेन्द्र का परिवार युक्त सिंहासन है।

श्री तीर्थंकर जिनेश्वर भगवंतों के जन्म कल्याणकादि प्रसंगों पर चमरेन्द्र को तिर्च्छे लोक में आने का हो तब अपने आवास से निकलकर प्रथम इसी पर्वत पर आता है और फिर जहाँ जाना हो वहां उत्पतन अर्थात् उड़कर जाता है। इसी कारण से यह चमरेन्द्र का उत्पातपर्वत कहलाता है। इस तिगिंछि कूट पर्वत से तिरछे दक्षिण दिशा में ६५५ क्रोड़, ३५ लाख, ५०,००० योजन छोड़ने के बाद अरुणवर समुद्र के मध्यभाग में जो प्रदेश है उसके अधोभाग में रत्नप्रभा पृथ्वी के मध्य में ४०,००० योजन अवगाहनावाली चमरेन्द्र की विशाल मणिरत्नों के कारण प्रकाशमय, लम्बाई-चौड़ाई युक्त परिधि के अन्दर जंबूद्वीप समान "चमरचंचा" नामक राजधानी है। इसका १५० योजन ऊंचा किला है। इस कोट (किले) के मनोहर मणिमय कांगरे हैं, उसकी लम्बाई एक योजन तथा ऊंचाई आधे योजन से कुछ कम तथा चौड़ाई में १ कोश जितना है। और इसकी प्रत्येक दिशा में ५००-५०० सुन्दर दरवाजे बने हुए हैं। सभी दरवाजे २५० योजन ऊंचे तथा १२५ योजन चौड़े हैं। तथा सभी तोरणादि से अलंकृत हैं। इस कोट के मध्यभाग में एक मणिपीठबंध शोभ रही है। वह १६,००० योजन विस्तारवाली तथा चारों दिशाओं सुंदर पद्मवरवेदिका से युक्त है, उसके चारों और बगीचा है। इस प्रकार रमणीय भूमि पर एक उत्तम प्रासाद है जो २ १/२ योजन ऊंचा और १ १/४ योजन चौड़ा है। इस प्रासाद के चारों तरफ १२५ योजन ऊंचे और ६२ १/२ योजन चौड़े अन्य ४ प्रासाद स्थित हैं। इन प्रासादों में भी प्रत्येक की चारों दिशाओं में अन्य ६२ १/२ योजन ऊँचे और ३१ १/४ योजन चौड़े ४-४ प्रासाद हैं। इनके भी प्रत्येक चार दिशाओं में ३१ १/४ योजन ऊँचे और उससे आधे चौड़े चार-चार प्रासाद हैं। इन प्रत्येक के चारों दिशाओं में १५ योजन २ १/२ कोश ऊंचे और इससे आधे चौड़े चार-चार प्रासाद हैं। इस तरह १ मूल प्रासाद और अन्य इसके चारों तरफ सब मिलाकर कुल ३४१ प्रासाद चमरेन्द्र के होते हैं। वायु से प्रेरित ध्वजाएँ उनके उपर लहरा रही हैं। ये सब प्रासाद रत्नमय, सुगन्धमयी, स्वर्ण की रेतीवाले और कोमल स्पर्शवाले होने से वास्तव में देखने योग्य है।

अब इन प्रासादों के ईशान कोणे में अनुक्रम से (१) सुधर्म सभा (२) सिद्धायतन सभा (३) उपपात सभा (४) द्रह सभा (५) अभिषेक सभा (६) अलंकार सभा और (७) व्यवसाय सभा आई हुई हैं। ये सभी ३६ योजन ऊंची, ५० योजन लम्बी-चौड़ी होती है। अत: ये वैमानिक देवों की सभा से प्रमाण में आधी होती हैं।[१]

(१) (A) भगवती सूत्र, शतक-१६ उद्देशा-९ (B) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१३, श्लोक-१६ से ४६

मनुष्यों की तरक्की के लिए जैनधर्म का चारित्र बहुत लाभकारी है, यह धर्म बहुत ही असली, स्वतंत्र, सादा, बहुत मूल्यवान तथा ब्राह्मणों के मतों से भिन्न है तथा यह जैनधर्म बौद्धों के समान नास्तिक नहीं है।

- डॉ. ए. गिरनाट, पेरिस (३/१२)

हिन्दी संस्कृति भारतीय संस्कृति का ही एक अंश है, जैन या बौद्ध संपूर्ण तौर से भारतीय है, लेकिन वे हिन्दु नहीं है।

भूतपूर्व प्रधानमंत्री
पं. जवाहरलाल नेहरु
(Discovery Of India)

"I hope that success should be achieved by propagating the ideal of service and renunciation preached by Lord Mahavira."

- Pt. Jawaharlal Nehru

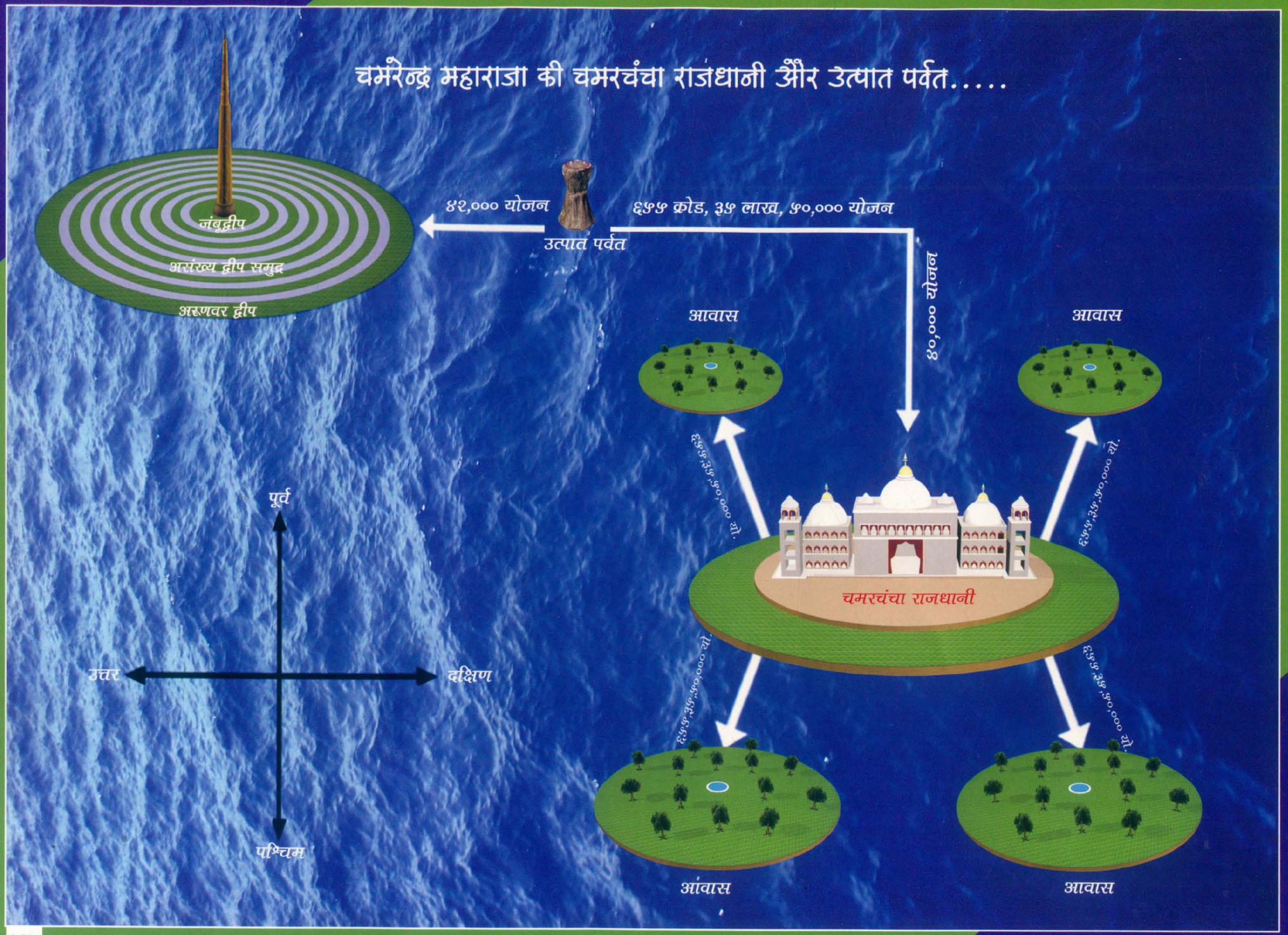
चमरेन्द्र महाराजा की चमरचंचा राजधानी और उत्पात पर्वत.....
जंबूद्वीप
असंख्य द्वीप समुद्र
अरूणवर द्वीप
४१,००० योजन
उत्पात पर्वत
६५५ क्रोड, ३५ लाख, ५०,००० योजन
८४,००० योजन
आवास
आवास
६५५,३५,५०,००० यो.
६५५,३५,५०,००० यो.
चमरचंचा राजधानी
६५५,३५,५०,००० यो.
६५५,३५,५०,००० यो.
आवास
आवास
पूर्व
उत्तर
दक्षिण
पश्चिम

चमरेन्द्र कौन ? व कहाँ से आया ?.....

वर्तमानकाल में जो कोई पुण्यशाली जीव चमरेन्द्र रूप में उत्पन्न होता है वह पीछे कही गई उपपातसभा में देवदुष्य वस्त्रों से आच्छादित शय्या में क्षणभर में उत्पन्न होता है। वहाँ उत्पन्न होने के बाद में शय्या में से उठता है फिर वह चमरेन्द्र "द्रह(सरोवर) सभा" में जाकर स्नान करके "अभिषेक सभा" में आता है। वहाँ उत्साही असुरों से अभिषेक किया जाता है। उसके बाद महोत्सव पूर्वक "अलंकार सभा" में जाकर शरीर पर आभूषण धारण करता है। फिर "व्यवसाय सभा" में जाता है, वहाँ रत्नमय पुस्तक देख-पढ़कर अपने परंपरागत रीति-रिवाज से जानकार बनता है। फिर "नन्दा" नाम की बावड़ी में जाकर पवित्र होकर भक्तिपूर्वक जिनपूजा करता है उसके बाद वहाँ से परिवार सहित "सुधर्मा सभा" में जाकर सिंहासन पर आरूढ़ होकर यथेच्छ रूप में दिव्य भोगों को भोगता है। वहाँ इसको तीव्र कामभोग की इच्छा जागृत होती है तब श्री जिनेश्वर भगवंत के अवशेष-अस्थि की आशातना के भय के कारण से सभा के बाहर मनपसंद स्थान पर जाकर वहाँ विषयोपभोग करता है। वह कई बार अपनी देवियों को लेकर अपनी रमणीय चमरचंचा नगरी के आवास में क्रीड़ार्थे जाता हैं, जिस तरह पृथ्वीपति राजा अपनी रानियों को लेकर क्रीड़ोद्यान में जाता है।

उस आवास का स्वरूप कुछ इस तरह है - वह आवास चमरचंचा नगरी से नैऋत्य कोण में ६५५ क्रोड़, ३५ लाख, ५० हजार योजन छोड़ने के बाद इसी अरुणोदधि समुद्र में आया है। वहाँ शोभायमान लक्ष्मी के निधान स्वरूप होने से चमरेन्द्र को रतिक्रीड़ा करने के योग्य मनोहर स्थान है। इसकी लम्बाई-चौड़ाई ८४,००० योजन की है और इसके चारों तरफ बड़ा किल्ला है। यहां प्रासादादि सारी बातें चमरचंचा नगरी के समान हैं, केवल अन्तर इतना है कि यहाँ सुधर्मादि पांच मनोहर सभा नहीं होती।

वर्तमान काल का चमरेन्द्र इसी ही जंबूद्वीप के दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र में विन्ध्य पर्वत के समीप में बेमेल नामक गांव था, वहाँ पूरण नाम का महा समृद्धशाली गृहस्थ रहता था। एक समय इनके कुटुम्ब में रात्री जागरण था, उस समय इसे वैराग्य उत्पन्न होने से प्रभात होते ही स्वजनों को बुलाकर उनको भोजन वस्त्रादि सत्कार करके ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब-परिवार का भार सौंपकर, चार खानेवाला (भागवाला) लकड़ी का पात्र बनवाकर इसने (पूरणने) अपने से सभी को दान दे सके ऐसी दीक्षा ली थी। दीक्षित अवस्था में आतापना पूर्वक तपस्या प्रारंभ की। छट्ठ-छट्ठ(२-२ उपवास) के पारणे में हाथ में पात्र लेकर वह उसी बेमेल गाँव में भिक्षार्थे घूमता था। पात्र के पहले खाने में जो भिक्षा पड़ती थी उसे वह पथिक जन को दे देता था, दूसरे विभागवाली भिक्षा कौए-भेडियादि को दे देता था। तीसरे खाने में पड़ी भिक्षा मछली-कछुए आदि को दे देता था और चौथे खाने में पड़ी भिक्षा स्वयं खाता था। इस तरह १२ वर्ष तक अति दुष्कर तपस्या की। अन्तिम समय में एक महिने का पादपोपगमन अनशन करके (पादपोपगमन अर्थात् पादप = वृक्ष की तरह जैसे गिरा हो वैसे ही पड़े रहना) इस तरह पड़े रहकर मृत्यु प्राप्त करके वह इस समय की राजधानी में चमरेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ हैं।[१] (अब हम अगले प्रकरण में देखेंगे कि यह पूरण जो अभी चमरेन्द्र के रूप में उत्पन्न हुआ है वह क्या करता है ? चलो ! देखते हैं आगे के प्रकरण में...)

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१३, श्लोक-४७ से ६७

संतों की वाणी सदा श्रवण करनी चाहिए, क्योंकि उससे कई-कई ग्रंथों का सार, कई-कई विषयों का विस्तार, उनके अनुभवों तथा चिन्तन का निचोड़ तुम्हें तुम्हारी रीति से थोड़े समय में ही प्राप्त हो सकता है, हो सकता है कि तुम इतने सारे ग्रंथों को और विषयों का अध्ययन बहुत लम्बे समय तक भी न कर सको, उन ग्रंथों और विषयों को इतनी स्पष्ट रीति से समझ भी न सको, इसलिए संतों का सत्संग-श्रवण नित्य करना चाहिए।

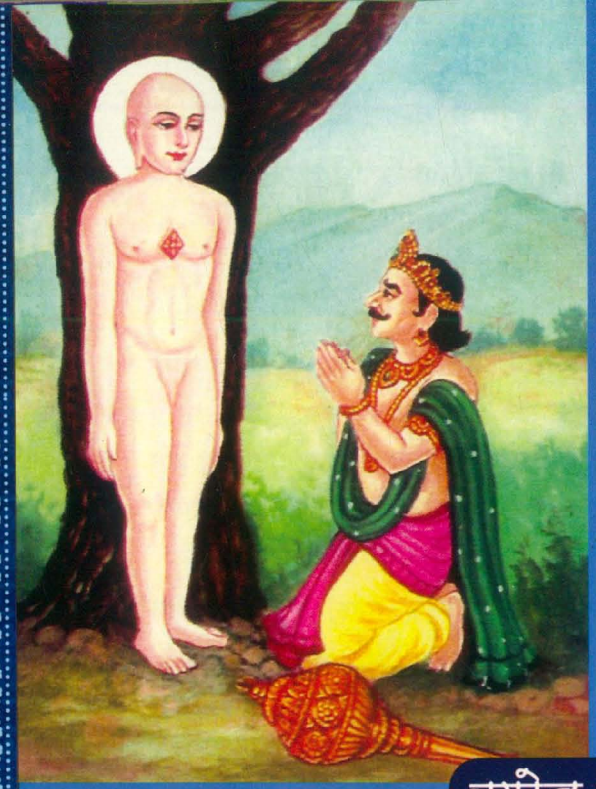

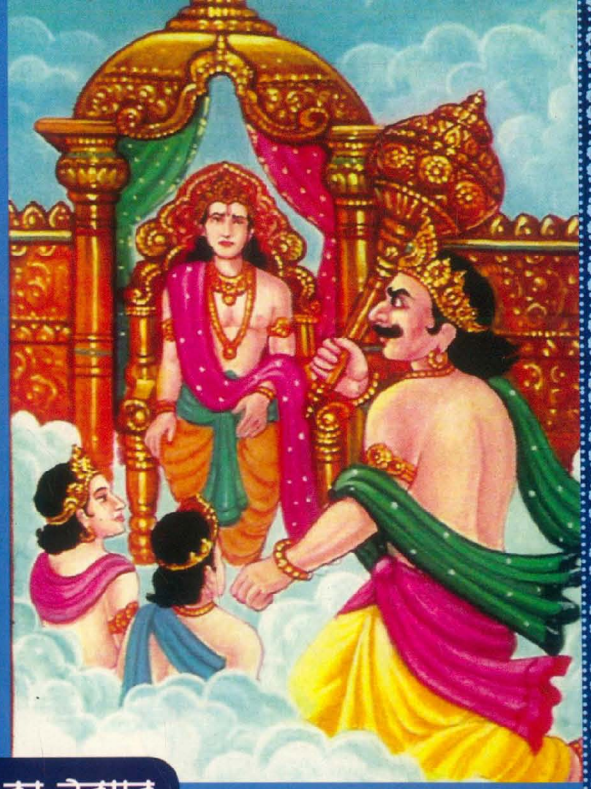

चमरेन्द्र का उत्पात

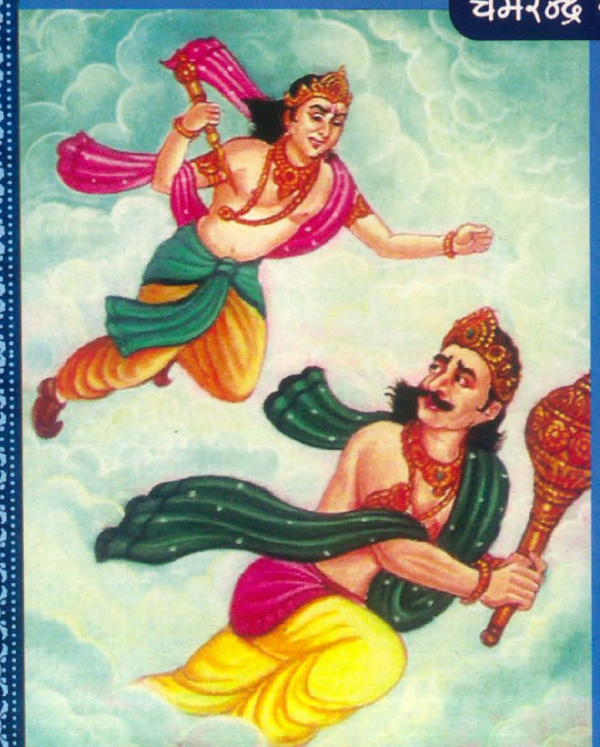

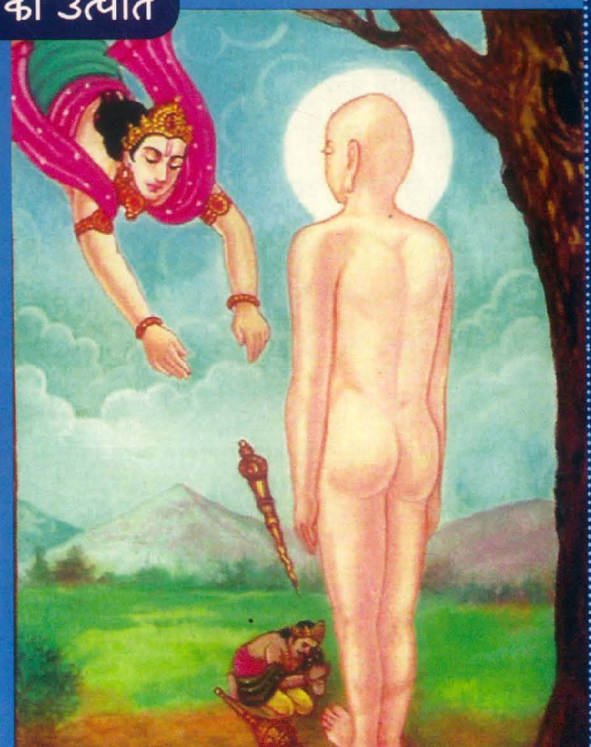

चमरेन्द्र का सौधर्मेन्द्र तरफ प्रयाण.....

जब वह चमरेन्द्र (पूरण तापस का जीव) देवजाति में उत्पन्न हुआ तब सर्व पर्याप्तियों से युक्त उत्पन्न हुआ। साथ में ही स्वाभाविक रूप से ज्ञान चक्षु से आखिर सौधर्म देवलोक तक दृष्टिपात करके शक्र के सिंहासन पर बैठे अत्यंत तेजस्वी और सुख संपत्तिवाले सौधर्मेन्द्र को देखा। उसे देखकर विचार करने लगा कि - मेरे सिर पर वह कौन मौज-आनंद कर रहा है ? क्या यह मौत मांग रहा है ? इस तरह विचार कर उसने अपने सामानिक देवों को बुलाकर पूछा-अरे ! मेरे मस्तक पर यह कौन है ? उस समय उन्होंने भी नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि- हे स्वामिन् ! यह तो सौधर्मेन्द्र है। सौधर्मेन्द्र और असुरेन्द्रों का इसी तरह रहने का रीति-रिवाज पूर्व से चला आ रहा है। वह सुनकर उसने (चमरेन्द्रने) कहा-ऐसे व्यक्तियों को अपने मस्तक पर रहने दे वह कोई और हो सकता हैं परंतु में तो इसे सहन करने वाला नहीं हूँ। मैं तो इसे क्षण में ही नीचे गिरा दुँगा। इस तरह विचारने के बाद यह भी विचारा कि यह इन्द्र तो वज्रधारी है। इससे कभी इसके वज्र द्वारा मेरे मरण का समय आया तो मेरी शरण कौन ? इस तरह चिंतन कर इसने अवधिज्ञान से उपयोग दिया तो सुसुमार नगर के उद्यान में बिराजमान भी महावीर परमात्मा को उसने देखा।

वीर परमात्मा को देखकर उसी समय उसने विचार किया कि आज वीर प्रभु का अट्ठम तप है, और निश्चय रूप से ११ वर्ष की दीक्षा पर्याय वाले कायोत्सर्ग ध्यान में स्थिर प्रभु वीर का मुझे शरण हो। इस प्रकार निश्चय कर अपना परिध नामक प्रहरणरत्न अर्थात् शस्त्र लेकर सत्वर उद्धत रूप में तिर्गिछिकूट नामक उत्पात पर्वत पर आया, और वहाँ से उत्तरवैक्रिय शरीर धारण कर सुसुमार नगर में बिराजमान परमात्मा वीर को नमस्कार कर, आपका आश्रय, मुझे आपका शरण हो ! इस तरह कहकर पुनः उडद की राशि और अमावस्या की रात्रि सम भीषण १ लाख योजन प्रमाण उत्तरवैक्रिय शरीर धारण कर वह आकाश मार्ग में उड़ा। कभी सिंहनाद, तो कभी हस्ती की गर्जना, कभी अश्ववत् हिनहिनाता मानों पाताल को भी क्षोभित न करता हो, पृथ्वी को कम्पायमान करता और आकाशमंडल को फाड देता, इस तरह तिर्च्छालोक को आकुल-व्याकुल करता, चारों दिशाओं में अंधकार फैलाता, ज्योतिषचक्र के भी दो विभाग करता, एक पैर से सौधर्मेन्द्र के विमान की वेदिका पर और दूसरे पैर से सुधर्मसभा पर आक्रमण करके, उसने अपनी परिध (शस्त्र) द्वारा इन्द्रकील पर प्रहार किया और फिर बोला- कहाँ है सौधर्मेन्द्र ? और उसके सामानिक देव ? अभी सबको गिराकर हैरान-परेशान कर देता हुं, इनकी अप्सराओं को भी मेरे वश कर देता हुँ, मेरी आशातना करने का फल क्या आता है, अभी सौधर्मेन्द्र को पता चल जाएगा। ऐसे वचन सुन सौधर्मेन्द्र क्रोध तथा सहास्य से बोले-अरे ! श्याममुखवाले मूढ चमर ! अभी ही नया उत्पन्न हुआ है और मौत माँग रहा है ? अब तुम भी मेरी अवज्ञा का फल देख ले। ऐसा कहकर इन्द्रने अपना भीषण वज्र छोड़ा, चमरेन्द्र वज्र देखकर ही घबरा गया और भागा तथा जहाँ परमात्मा वीर थे वहा उनके दोनों पैरो के बीच ''रक्षा करो रक्षा करो'' कहता हुआ छिप गया। सौधर्मेन्द्रने अवधिज्ञान के उपयोग से देखा तो मालूम हुआ कि यह वीर के शरण में चला गया है अतः तुरंत वह वहां आकर ४ अंगुल के अंतर पर रहे हुए वज्र को ले लिया और उसे अभयदान दिया। बाद में चमरेन्द्रने प्रभु वीर की कृपा से मैं बचा इस उपकार को याद करते उसने परिवार सहित प्रभु के आगे नृत्यादि किया और फिर अपने स्वस्थान पर लौट गया। (यह चमरेन्द्र का जो सौधर्मेन्द्र के पास गमन हुआ, वह अनंत काल में बनने वाली एक विरल घटना होती है जिसे जैनशास्त्रों में ''आश्चर्य'' कहा जाता है।[१])

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१३, श्लोक-६७ से १००

"Lord Mahavira delivered the message of Ahimsa after undergoing a Sadhna of full 12 years. At that time violence was stalking the land, there was sacrifice performed in every house. Ahimsa would not have been even talked of today, had he not then raised his voice in it favour."

- Shri Dharma Anand Kansambhi

"Lord Mahavira led an ideal life of penance and renunciation and commended the same to the humanity at large."

- Shrimati Lilavati Munshi

क्षेत्रवेदना को पाते हुए नारकी जीव...

बन्धनादि १० प्रकार की क्षेत्रवेदना.....

नरक के क्षेत्रों में बन्धनादि १० प्रकार के पुद्गल परिणाम होते हैं, जो वहाँ पर उत्पन्न हुए नारकी जीव को बहुत ही दुःख देते हैं, यह उस क्षेत्र का ही प्रभाव-स्वभाव होता है। इनका स्वरूप कुछ इस तरह हैं....

(१) बंधन - अर्थात् नारक जीव को प्रत्येक समय में होनेवाले आहार पुद्गल के साथ का सम्बन्ध यह मानों जाज्वल्यमान अग्नि न हो इस तरह भयंकर है।

(२) गति - इन नारक जीवों की गति गधे और ऊँट आदि की समान अत्यंत दुःखमय है, तपे हुए लोहखंड पर पैर रखने से जो दुःख होता हैं उससे भी अधिक दुःखदायक होती है।

(३) संस्थान - इनका संस्थान अत्यंत कनिष्ठ समान हूंडक (कुब्ज) होता है। तथा पंख काट दिए गए हो ऐसे पक्षी के समान अत्यंत विरूप होता है।

(४) भेद - शस्त्र की धार के द्वारा यदि कोई काटे या फाड देवें तो उसमें जो दुःख की अनुभूति होती है उससे कई गुणा अधिक कुड्यादि से जब इनके शरीर के पुद्गल अलग हो जाते हैं तब वह भी उनको शस्त्र के प्रहार के समान अत्यन्त दुःखदायक हो जाता है।

(५) वर्ण - इन नारकों का वर्ण अत्यन्त निकृष्ट, अति भीषण एवं मलिन होता है और वहाँ द्वार अथवा खिड़की, जाली आदि कुछ भी नहीं होने से गाढ अंधकारमय स्थान में रहते हैं।

(६) भूमि - यह नरक की भूमि श्लेष्म, विष्टा, मूत्र, कफ आदि से हंमेशा गंदी बनी रहती है तथा वहाँ श्मशान की तरह मांस, केश, नाखुन, दांत और चमडे आदि के समुह के खड़े हुए ढेर पड़े हुए होते हैं।

(७) गन्ध - इस नरकों में जो गंध आती है वह सड़े हुए श्वान, सर्प तथा बिल्ली-कुत्ते आदि के कलेवरों की गंध से भी उत्कट होती है।[१]

(८) रस - इन नरक की भूमि का रस नीम-गलो आदि से भी अतीव कड़वा होता है।

(९) स्पर्श - इन नरकों की भूमि का स्पर्श नारकों को अग्नि का स्पर्श अथवा बिच्छु का स्पर्शादि के स्पर्श से भी अत्यन्त दारुण (भयंकर) कष्टहोता है और इनके परिणाम अगुरुलघु होने पर भी अतीव पीड़ाकारक हैं।

(१०) शब्द - लगातार पीडित होते नरक के शब्द भी मानों विलाप करते हों, इस तरह दारुण (भयंकर) होता है, यह शब्द ऐसे होते है जो सुननेवाले को भी दुःख उत्पन्न करता हैं।[२]

★ *साथ ही उन्हीं (मिथ्यादृष्टिवाले) नारकों को भवस्वभावगत प्राप्त होनेवाला विभंगज्ञान भी बड़ा दुःखदायक होता हैं। क्योंकि वहाँ अशुभ जाति-स्थान का होने से उसी ज्ञान द्वारा चारों ओर से वे आनेवाले निरंतर दुःख के वैरी-शस्त्रादिक कारणरूप साधन देखते हैं। तब वे "अभी आयेंगे ! ऐसा करेंगे ! वैसा करेंगे ! मुझे मार देंगे !" इत्यादिक भय रूप से वे हमेशा डरते-कांपते ही रहते हैं।*

(१) (A) तिलोयपण्णत्ति-२/३४, २/३०८ (B) त्रिलोकसार-१७८ (C) महापुराण-१०/१०० (D) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-४१ से ४९ (२) बृहत्संग्रहणी, गाथा-२०७/प्रक्षेपगाथा-४५

पृथ्वी, सूर्य व चन्द्र के बारे में गैलीलियो द्वारा जो बातें प्रचारित की गई थी, वे सब ईसाई धर्म के मूलभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध थी, इसलिए सन् १६१५ में वेटिकन के पोप ने उन्हें रोम बुलाया और आदेश दिया कि - "सूर्य सृष्टि का केन्द्र है और पृथ्वी घूमती है, इस प्रकार की बातों का प्रचार वे न तो शब्दों के द्वारा और न ही लिखकर करें।" पोप पॉल पंचम ने यह फरमान भी निकाला कि जो भी इनका प्रचार करेगा या उन्हें पढ़ेगा, उन्हें दण्डित किया जायगा। गैलीलियो जब पिज्जा लौटा तब उसे मालूम हुआ कि यूनिवर्सिटी में उसका वेतन भुगतान बंद कर दिया गया है। समस्त यूरोप में धर्मगुरु गैलीलियो के विरोध में हो गए। इससे गैलीलियो लाभान्वित ही हुआ। जो लोग अब तक उसे नहीं जानते थे, वे सब भी अब उसे जानने लग गए। इस प्रकार परोक्ष रूप से उसके सिद्धान्तों का प्रचार बढ़ने लगा। इस प्रकार ईसाई पादरियों ने ही अनजाने में गैलीलियो को महान बना दिया।

नरक में १० प्रकार की क्षेत्रवेदना

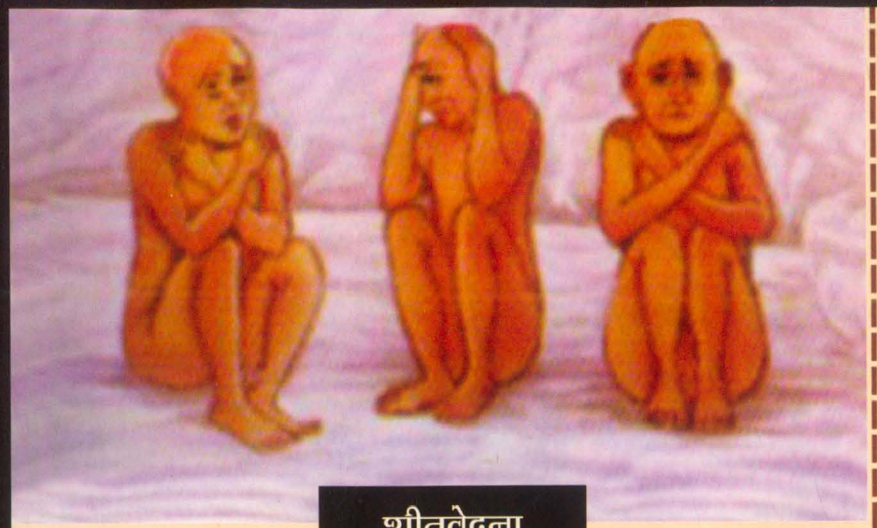

शीतवेदना

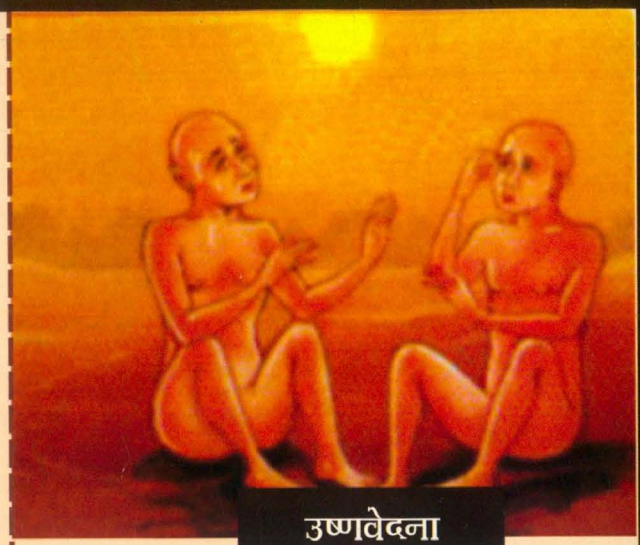

उष्णवेदना

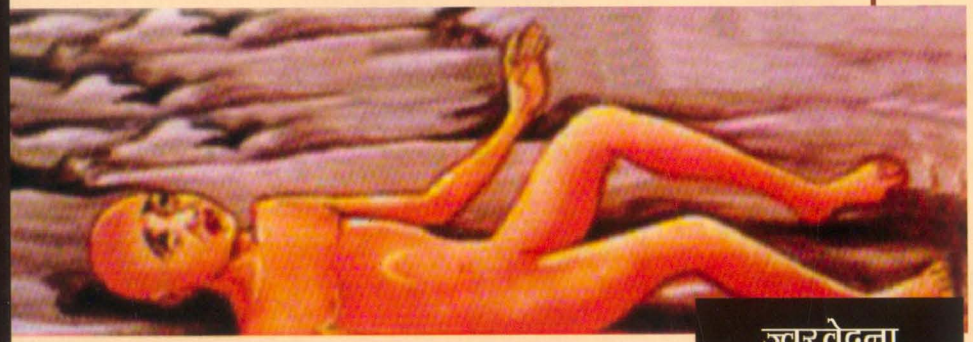

ज्वरवेदना

भयवेदना

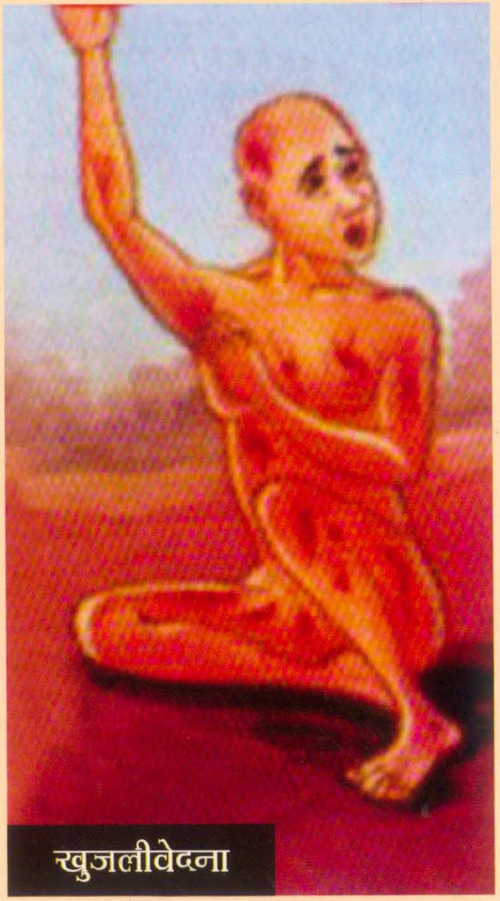

खुजलीवेदना

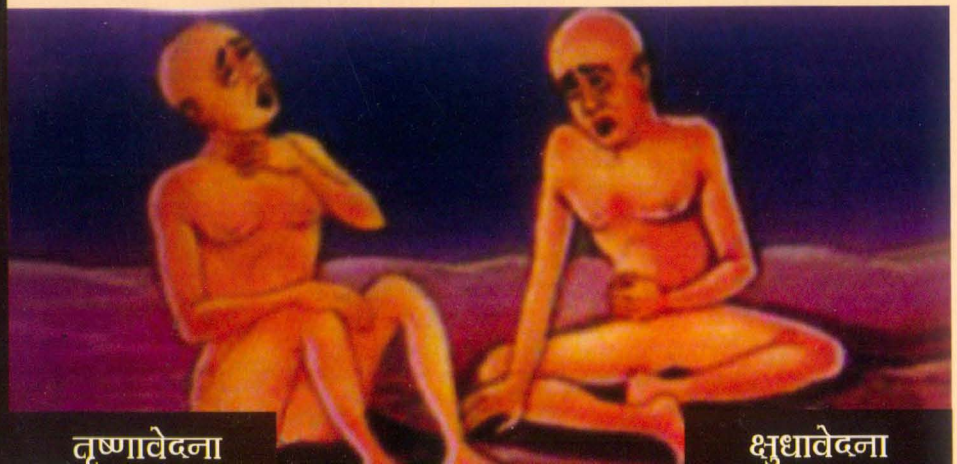

तृष्णावेदना

क्षुधावेदना

नरक में १० प्रकार की क्षेत्रवेदना.....

तत्त्वार्थ सूत्र की वृत्ति में नरक की १० प्रकार की वेदना गिनायी है वह इस प्रकार से ठंडी, धूप, भूख, प्यास, खुजली, परतंत्रता, ज्वर, दाह, भय और शोक रूप हैं।

(१) शीतवेदना - माघ महिने की रात्रि में शीत वायु चलती हो, उस समय हिमालय पर्वत पर बादल रहित आकाश में अग्नि बिना और वायु के व्याधि वाले निःवस्त्र दरिद्री मनुष्य को जल के छिडकाव की ठंडी से जितनी वेदना हो उससे भी अनन्त गुण शीतवेदना इन नरक के जीवों को होती हैं। और यदि इन नारक जीवों को शीतवेदनावालें नरक में से उठाकर किसी हिमालय जैसे खुले बरफ के पर्वतों के स्थान पर रखा जाएँ तो वह मानो किसी ठंड रहित स्थान पर रहा हो इस तरह सुखपूर्वक निद्रावश हो जाता है।

(२) उष्णवेदना - गरमी के दिन हो और मध्याह्न का समय तप रहा हो, आकाश में कहीं भी बादल दिखाई न देता हो उस समय पित्त की व्याधिवाले मनुष्य के चारों तरफ प्रज्वल रही अग्नि के ताप की जो पीड़ा होती हैं उससे भी अनन्त गुण उष्ण वेदना इन नरकों में होती है। यदि इन नारकों को इस तरह उष्णवेदनावाली नरक भूमि में से उठाकर यदि किंशुभ समान लाल खदिरादि के अंगार में रखा जाय और उस अंगारे को गरम किया जाय फिर भी यह मानों की चन्दन रस के विलेपन से विलिप्त हो इस तरह क्षणभर में वहां अत्यन्त सुखपूर्वक सो जाता हैं।

(३) क्षुधावेदना - इन नारकों की जठराग्नि इतनी प्रदीप्त रहती है कि जगत में रहे समस्त अन्नघृतादि खा लेने से भी उनको तृप्ति नहीं होती है।

(४) तृष्णावेदना - सारे समुद्र के जल का पान करने पर भी शान्त न हो इस तरह इनकी (नारकी के जीवों की) तालु, कंठ तथा जीभ आदि की प्यास शोषवाली-तृषावाली होती है।[१]

(५) खुजलीवेदना - चाकू आदि से खुजलाने पर भी शान्त न हो सके इस तरह इन नारकी जीवों के शरीर पर अत्यंत दुःखदायी खुजली होती है।

(६) ज्वरवेदना - इन नारक के जीवों को अपने से अनंतगुणा और जीवन पर्यंत ज्वर (बुखार) होता ही है।

(७-१०) पराधीनता-, दाह-जलन, शोक तथा भयवेदना - इन नारक के जीवों को पराधीनता, दाह-जलन, शोक तथा भय भी अनन्त गुणाधिक होता है। इस प्रकार इनको उपरोक्त १० प्रकार की वेदना जाननी।[२]

इस नरकों की भूमि में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति का स्पर्श भी अति दुःखदायक होता है, यहां (इन नरक भूमि में) अग्नि उपचरित है तथा पृथ्व्यादि वास्तविक रूप से जानना। इस तरह नरक के नारकी जीवों का नाना प्रकार की क्षेत्र वेदना का वर्णन किया।

---

* *वर्तमान वैज्ञानिक दुनियां में देखे या सुने जाने वाले इन चित्रविचित्र नये नये रोगों के आगे यह बात जरा भी आश्चर्यजनक नही लगती हैं। "शरीरं रोग मंदिरम्" ऐसा जो सूत्र कहा गया है, यह सार्थक ही है। बहुत से रोग पहले से ही विद्यमान है, लेकिन निमित्त (कारण) मिलते ही उसका प्रादुर्भाव होने लगता है। नरक में तो बहुत से अशुभ निमित्त उपस्थित (हाजिर) होते ही है अतः वहाँ दुःखों का अंतिम साम्राज्य प्रवर्तमान होने के कारण यह सब संभवित है।*

(१) ज्ञानार्णव-३६, ७७/७८ (२) (A) बृहत्संग्रहणी, गाथा-२०८/प्रक्षेप गाथा-४६, (B) ठाणांगसूत्र-१०/७५३ (C) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-५० से ६३

यदि आपके पास ज्ञान की गहराई नहीं है, भले ही क्रियाओं का विस्तार हो, तो संभावना है कि आप क्रियामार्ग से कभी भी फिसल जाओगे ! तालाब जल्दी सूख जाता है..., धूप गिरी नहीं और तालाब सूखा नहीं ! बस इसी तरह विषय - कषायों की धूप में कई क्रियावान् सूख गये... ज्ञान का गहरा कुआ सूखता नहीं, भयंकर गर्मी में भी वह शीतल पानी देता रहता है।

नरक में परस्पर कृत वेदना.....

- नरक में तीन प्रकार की वेदना बताई गई है (१) क्षेत्रकृतवेदना (जो आपको पीछे ही दो प्रकरणों में बताई गई है ।) (२) परस्परकृत वेदना (जो अभी बताई जाएगी ।) (३) परमाधामी कृत वेदना (जो आगे बताई जाएगी ।)
- परस्पर कृत वेदना - वह इस प्रकार है..... जैसे कुत्ते दूर से ही एक दूसरे को देखकर लड़ने लगते हैं, वैसे ही नरक के जीव क्रोधाग्नि से जलते परस्पर लड़ाई करते है । वे वैक्रिय रूप धारण करके क्षेत्रप्रभावोत्पन्न पृथ्वी रूप अथवा वैक्रिय के तलवार, भालादि के द्वारा तथा हाथ, पैर या दांतादि से परस्पर प्रहार करते हैं और इसमें उनका शरीर छेदन-भेदन हो जाता है । जिस तरह कतलखाने में भैंसादि जैसे लोटता-आलोटता है वैसे नारक जीव भी लोटने लगता है ।
- परन्तु इसमें जो सम्यग्दृष्टिवाले जीव होते हैं वे तो तत्त्व के चिन्तनवालें होते हैं इसलिए अन्यकृत दुःख भी सहन कर लेते हैं, परन्तु सामना करके स्वयं दुःख नहीं देते । इस कारण से ही ये मिथ्यादृष्टि नारक से कम दुःखी होते हैं और कर्मबन्धन भी कम करते हैं । इसके सामने मिथ्यादृष्टि नारक जीव तो क्रोध करके अन्य को दुःख देते है और स्वयं भी दुःखी होते है और बहुत कर्मों को भी उपार्जन करते हैं ।
- इस सम्बन्ध में श्री भगवती सूत्र के १८-शतक, ५-उद्देश में कहा गया है कि नारक जीव दो प्रकार के होते हैं - (१) माया युक्त मिथ्यादृष्टिवाला और (२) माया रहित सम्यग्दृष्टिवाला । इसमें प्रथम प्रकार का जो माया मिथ्यादृष्टिवाला जीव होता है वह भारी कर्मो वाला होता है तथा अत्यन्त वेदना भोगने वाला होता है तथा जो दूसरे प्रकार का सम्यग्दृष्टिवाला जीव होता है उनके कर्म अल्प होते हैं तथा वेदना भी अल्प होती हैं ।
- मनो दुःख की अपेक्षा तो सम्यग्दृष्टि नारकी जीव बहुत दुःखी है क्योंकि पूर्व कर्मो का वह जितना सोच विचार करता है, वैसा सोच विचार अन्य को नहीं होता । इस संबंध में "श्री भगवती सूत्र" में उल्लेख मिलता है कि वह इस प्रकार जो संज्ञी है, इनको अत्यन्त दुःख होता है, परंतु जो असंज्ञी है उनको स्वल्प दुःख होता है । यहां संज्ञी अर्थात्- (१) संज्ञावाला-सम्यग् दर्शनवाला इस तरह अर्थ लेना अथवा (२) पूर्व जन्म में जो संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव है वो आरंभ-समारंभ करके फिर नरक में उत्पन्न हुए है वैसा अर्थ करना अथवा (३) संज्ञी अर्थात् पर्याप्ता इस प्रकार का अर्थ लिया जाता है । इससे विपरीत सर्वत्र असंज्ञी समझना । (भगवती सूत्र-शतक-१/उद्देश-२) इस प्रकार से परस्परकृत वेदना का वर्णन समाप्त हुआ ।[१]

---

* *ये सभी सातों नरकावास अशुभ, अति दुर्गंधयुक्त स्पर्श करने के साथ ही महाहानि पहुँचानेवाले, अरुचि उपजानेवाले, अनेक मुर्दे इत्यादि की अति निन्द्य तथा दुर्गंध से भरे हुए, प्रकाशादि कुछ भी न होने के कारण और स्वयं अप्रकाशित होने से महा घनघोर अंधकारवाले होते हैं ।*

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-६४ से ७१

"It is not correct to believe that Buddhism left some Hindu caste like Brahmins, Vyshyas, etc. veg etarian. It was actually Jainism which achi-eved this in Andhra Pradesh. "Buddhists eat even to oblige a devotee; Jains do not"

-S.Gopal Krishna Murthy

"Jainism is entirely independent of Buddhism. The difference between the two philosophies seems so great that it excludes any idea of common origin."

- E.W.Hopkins

नरक में परमाधामी कृत वेदना.....

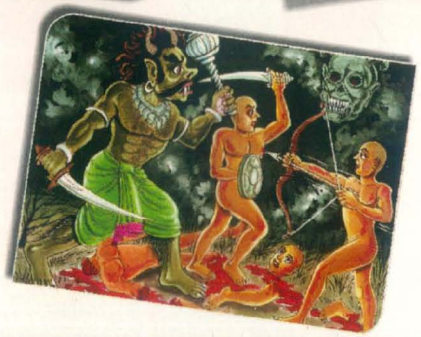
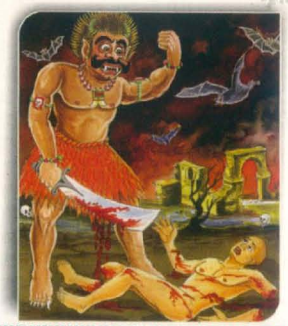

नरक में परमाधामी कृत वेदना.....

दुष्कर्मों के वश होकर नारकी जीवों को जो नाना प्रकार की परमाधामी कृत वेदना सहन करनी पड़ती है वो कैसी होती है ? तो चलो मित्रो ! इस प्रकरण से देखते है परमाधामी कृत वेदना..... जिसमें तपी हुइ लोहे की पुतली का आलिंगन करना पड़ता हैं, गरम किए शीशे को पीना, लोहे के घनादि की मार खाना, कांटेमय शाल्मली वृक्ष पर बैठना, चोट खाना, उस पर क्षार अथवा गरमागरम तेलादि डाले उसे सहन करना, वैतरणी नदी में डूब जाना, मूर्गा आदि के समान युद्ध करना, तलवार की घाटवाले वृक्षों में प्रवेश करना, कुंभी में पकना इत्यादि वेदनाओं को परमाधामी देवों के द्वारा सहन करते हैं...। कहा भी जाता है के... परमाधामी देव नारकी जीवों के कान काट देते हैं, आंखे उखाड़ देते हैं, हाथ-पैर फाड़ देते है, छाती जला देते है, नाक काट देते हैं, कढाई के तेल में तलते हैं, तीक्ष्ण त्रिशुल से छेदन-भेदन करते है और अग्निमुखा भयंकर जानवरों को भक्ष्य रूप में दे देते है।

परमाधामी देवों नारकी के जीवों को यम की कुल्हाड़ी से भी अधिक तीक्ष्ण धारवाली तलवार से छेदन करते हैं वे रुदन करते रहे और भक्षण में तत्पर विषधर बिच्छुओं से घेर लेते हैं, उनके दोनों हाथ तलवार से छेदन कर फिर उनको करवत से काटते हैं। उनको शीशा पीलाकर शरीर जला देते हैं, तथा कुंभी के भूसों में पकाते हैं। ये नरक के जीव चिल्लाते रहते हैं फिर भी उनको जाज्वल्यमान खदिर की अग्नि ज्वालाओं से सेकते है और जलते आग के समान वज्र के भवन में उत्पन्न होते हैं, वहीं विकृत हाथ मुँहवाले वे दीन स्वर से रुदन करते रहते है, फिर भी उनको जलाया जाता है, ये दीन-हीन जीव चारों तरफ देखा करते हैं, परंतु इनको कोई सहायता या रक्षण नहीं मिलता हैं।

तीक्ष्ण तलवार के द्वारा, तेजस्वी भालाओं से, विषम कुल्हाड़ी से तथा चक्र, परशु-त्रिशुल, मुद्गर, बाण, बास और हथोड़े से इनके तालु तथा मस्तक को चूर्ण बना देते है, इनके हाथ, कान, नाक, और होठ को छेदन करते हैं, तथा हृदय, पेट व आंखे तथा आंतों का भेदन कर देते हैं, इस तरह के दुःख को भोगते हुए कर्म से पतित बने दीन नारक जीव पृथ्वी पर लोटते रहते हैं। इन नारकी जीवों को जब परमाधामी देव कुम्भी में पकाते हैं तब वे पांचसौ-पांचसौ योजन ऊँचे उछलते हैं, वहाँ से वापिस पृथ्वी पर गिरते ही उनका (नारकी जीवों का) वज्र तुल्य चौंचवाले वैक्रिय पक्षी छेदन भेदन करते हैं, और वैक्रिय व्याघ्रादि हिंसक जीव इनका विनाश करते हैं - इत्यादि।[१] इस तरह सामान्य से परमाधामी कृत वेदना बताई। (अब हम आपको बताएगें १५ प्रकार के परमाधामीयों का स्वतंत्र स्वभाव कैसा होता है ? और वे कैसी कैसी वेदनाएं देते हैं ? देखते हैं आगे के प्रकरण में...)

(१) (A) महापुराण-१०/६४ (B) सर्वार्थसिद्धि-३/५/२०९/७ (C) भगवती आराधना, मूल-१५६८-१५७० (D) राजवार्तिक-३/५/८/३६१/३१, (E) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-७२ से ८४

विश्व में शांति स्थापना के लिए अपने प्रयत्नों के परिणाम स्वरूप भारत की इस समय जो स्थिति है, वह अद्वितीय है। भारत के नेताओंने स्वतंत्रता की लड़ाई में और स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भगवान महावीर के सत्य और अहिंसा प्रेम के संदेश का अनुसरण किया जो किसी जाति एवं समुदाय विशेष के लिए नहीं बल्कि समस्त विश्व के लिए था। महावीरने सदियों पहले अहिंसा का पाठ पढ़ाया और महात्मा गांधी ने ऐसे ही संदेश दिए। अब आवश्यकता उन सिद्धांतों पर अमल करने की हैं।

बक्शी गुलाम मुहम्मद प्रधानमंत्री
कश्मीर

भारतवर्ष के प्राचिन इतिहास में जैनधर्मने अपना खुद का अस्तित्व अनेक परिस्थितियों के बीच भी टीका रखा है।

प्रसिद्ध इतिहासकार
कर्नल जेम्स टोड

१५ परमाधामी देव ...

(१) अम्ब परमाधामी

(२) अम्बरीष परमाधामी

(३) श्याम परमाधामी

(४) शबल परमाधामी

(५) रुद्र(रौद्र) परमाधामी

(६) उपरुद्र(उपरौद्र) परमाधामी

(७) काल परमाधामी

(८) महाकाल परमाधामी

१५ प्रकार के परमाधामी देव.....

भवनपति देवों के १० प्रकार के भेद में से प्रथम क्रमांक में रहे हुए असुरकुमार के देवों की ही दूसरी जाती का नाम है... परमाधामी देव। यह देव १५ प्रकार के होते है तथा स्वभाव से बड़े ही क्रूर, कठोर व निर्दय स्वभाव के होते हैं। दूसरों को पीड़ा देने में ही इन्हें आनंद आता है, ये देव तीसरी नरक तक के नारकी जीवों को तरह तरह की यातनाएं देते रहते है... जो कि उनका नाम और काम..... अभी हम आपको बतलाने जा रहे हैं.....

(१) अम्ब - नाम का परमाधामी देव नारकी जीवों को उपर आकाश में ले जाकर एकदम छोड़ देते हैं। (२) अम्बरीष - छुरी आदि के द्वारा नारकी जीवों के छोटे छोटे टुकड़े करके भांड में पकाने योग्य बनाते हैं। (३) श्याम - ये रस्सी या लात-घूंसे आदि से नारकी जीवों को बरोबर पीटते है, और भयंकर स्थानों में पटक भी देते हैं, ये देव काले वर्ण के होने से इन्हे "श्याम" कहते हैं। (४) शबल -जो नारकी जीवों के शरीर की आंतें, नसें और कलेजे आदि को बाहर खींच लाते हैं, ये शबल अर्थात् चितकबरे रस वाले होते है, इसलिए इन्हें "शबल" कहते हैं। (५) रुद्र (रोद्र) - जो नारकी जीवों को भाला-बर्छी आदि शस्त्रों में पिरो देते हैं, और जो स्वरूप से अत्यंत रोद्र (भयंकर) होते हैं। इसलिए इन्हें "रुद्र (रोद्र)" कहा जाता हैं। (६) उपरुद्र (उपरोद्र) - जो नारकी जीवों के अंगोपांग को फाड़ डालते हैं तथा उपरोद्र (अत्यंत भयंकर) होते हैं। इसलिए इनका नाम "उपरुद्र" (उपरोद्र) हैं। (७) काल - जो नारकियों को कहाड़ी में पकाते है और काले रंग के होते हैं, इसलिए उन्हें "काल" कहते हैं। (८) महाकाल - जो नारकी जीवों के चिकने मांस के टुकड़े-टुकड़े करते हैं एवं वापस उन्हीं को खिलाते हैं, तथा वे बहुत ही काले रंग के होने से उन्हें "महाकाल" कहते हैं। (९) असिपत्र - जो वैक्रिय शक्ति द्वारा असि अर्थात् तलवार के आकारवाले पत्तों से युक्त वन की विक्रिया करके उसमें बेठे हुए नारकी जीवों के ऊपर तलवार सरीखे पत्ते गिराकर तिल सरखे छोटे-छोटे टुकड़े कर डालते हैं, उन्हें "असिपत्र" नामक परमाधामी कहते हैं। (१०) धनुष - जो धनुष्य के द्वारा अर्ध-चन्द्रादि बाणों को फेंककर नारकी जीवों के कानादि छेद देते हैं, भेद देते है और दूसरी भी प्रकार की पीड़ा पहुँचाते हैं, उन्हें "धनुष" कहते हैं। (११) कुम्भ - जो नारकी जीवों को कुम्भीयों में पकाते हैं इसलिए उन्हें "कुम्भ" कहते हैं। (१२) बालुका - जो वैक्रिय द्वारा बनाई गई कदम्ब पुष्प के आकारवाली अथवा वज्र के आकारवाली बालु-रेत में नारकी जीवों को चने की तरह भूनते हैं, इसलिए उन्हें "बालुका" कहते हैं। (१३) वैतरणी - नाम का परमाधामी मांस, चरबी, रुधिर, तांबा, सीसादि गरम पदार्थों से उबलती हुई वैतरणी नदी में नारकी जीवों को फेंककर उन्हे तैरने के लिए बाध्य करते हैं, उन्हें "वैतरणी" कहते हैं। (१४) खरस्वर - जो वज्र कण्टकों से व्याप्त शाल्मली वृक्ष पर नारकी जीवों को चढ़ाकर, कठोर स्वर करते हुए अथवा करुण रुदन करते हुए नारकी जीवो को खींचते हैं, उन्हें "खरस्वर" कहते हैं। (१५) महाघोष - जो डर से भागते हुए नारकी जीवों को पशु की तरह बाड़े में बंध कर देते हैं तथा जोर से चिल्ला के उन्हें वहीं रोक देते हैं, उन्हें "महाघोष" परमाधामी कहते हैं।[१]

. (१) (A) सूयगडांग सूत्र / अध्ययन-५ / उद्देशो-१, (B) प्रवचनसारोद्धार, गाथा-१०८५-१०८६ (C) भवभावना ग्रंथ, गाथा-१०३ से.....

अगर तुम किसी का कुछ भला न कर सको तो कोई बात नहीं, मगर किसी का बुरा तो मत करना और जो भले काम कर रहा हो, उसे प्रोत्साहन देकर उसकी सत्प्रवृत्तियों का अनुमोदन करना। यह भी तुम्हारी भलाई का एक छोटा सा रूप हो सकता है।

जैसे ऋतुओं के अनुसार प्रकृति में स्वतः बदलाव आ जाता है, वैसे ही भवितव्यता के अनुसार ऐसे तत्त्वज्ञान के ग्रंथों को पाकर मन और बुद्धि में स्वतः बदलाव आ जाता है।

(९) असिपत्र परमाधामी

(१०) धनुष परमाधामी

(११) कुम्भ परमाधामी

(१५) महाघोष परमाधामी

(१२) बालुका परमाधामी

(१३) वैतरणी परमाधामी

(१४) खरस्वर परमाधामी

परमाधामी देवों की गति ?.....

१५ प्रकार के परमाधामी देवगण एक से तीन नरक तक नारकों को सिर्फ अपनी मौज के खातिर दुःख देकर[१] स्वयं अनंता पाप कर्मों को संचित करके, अत्यंत दुःख में मृत्यु पाकर अंडगोलिक के रूप में उत्पन्न होते हैं। यह परमाधामी देव मरकर अंडगोलिक रूप में उत्पन्न होकर किस तरह पकड़े जाते हैं, उस संबंधी वर्णन "श्री महानिशिथ ग्रंथ" में इस प्रकार बताया गया हैं।

जहाँ सिन्धु नदी लवणसमुद्र से मिलती है, उसी स्थान से दक्षिण की ओर पचपन योजन दूर जंबूवेदिका से १२ १/२ योजन दूर एक भयानक संतापदायक स्थल है, वहाँ ३ १/२ योजन समुद्र की गहराई है और साथ ही ४७ अंधकारमय गुफाएं भी आई हुई है जिनके भीतर वज्रऋषभनाराच संघयणवाले, महापराक्रमी, मांस-मदिरा और स्त्रियों में महालोलुपी (आसक्त) ऐसे जलचर मनुष्य रहते है जो अंडगोलिक के नाम से जाने जाते हैं। वे अत्यंत ही कुरूप, अप्रिय, स्पर्श से कठोर, तथा देखने में अति भयंकर लगते हैं। वे १२ १/२ हाथ ऊंची कायावाले तथा संख्याता वर्ष के आयु वाले होते हैं।

इस सन्तापदायक स्थान से ३१ योजन दूर समुद्र के मध्य में अनेक मनुष्यों की आबादीवाला रत्नद्वीप नाम का एक द्वीप है। (जहाँ वर्तमान काल में हम जा नहीं सकते हैं।) वहाँ के लोगों के पास वज्र (कठिन पत्थरों) से बनी हुई बड़ी बड़ी चक्कियाँ (घंटिया) होती हैं। वे लोग उन चक्कियों को मांस-मदिरा से पोतते हैं और उसके मध्य में बहुत मद्य-मांस भरते हैं। इसके बाद वे सभी मद्य-मांस से भरे हुए तुंबड़ों से जहाज भरकर समुद्र में जाते हैं और उन्हीं तुंबड़ों को समुद्र में डालकर जलचर मनुष्यों को बहुत लुभाते हैं। लुब्ध ऐसे जलमनुष्य उन्ही तुंबों को खाते खाते क्रमशः चक्की के पास आकर लुब्ध होकर उसमें गिरते हैं और अग्नि द्वारा पकाए गए मांस और मदिरा को दो-तीन दिन तक बड़े सुख चैन से खाते-पीते रहते हैं, इतने में मौका-देखकर रत्नद्वीपवासी शस्त्रसज्ज सुभट यंत्र से चक्की के ऊपरी पड (चक्कर) को संपूट करके उसी चक्की को युक्ति से चलाना शरु करके उन्हें चारों और से घेर लेते हैं, (क्योंकि जलमनुष्य बहुत ही शक्तिशाली होने से बहुत सावधानी रखनी पड़ती है) ये बड़ी बड़ी चक्कियों को बड़ी कठिनाई से एक साल तक चलाते रहते है फिर भी उन जलचरों की हड्डियाँ थोडी भी टुटती नहीं हैं, ऐसे दुःख को भयंकर रीति से बर्दास्त करते करते एक वर्ष के बाद वे अवसान पाते हैं और मरकर नरक में उत्पन्न होते हैं।

इसके बाद उसके (अंडगोलिक मनुष्यों के) गुप्त भागों में आई हुई अंडगोलियों को लेकर रत्न पाने के इच्छुक ये पुरुष चमरी गाय के पृच्छ के बाल से उन अंडगोलियों को गुंथकर अपने दोनों कानों पर लटकाकर समुद्र में प्रवेश करते है। इन गोलियों के प्रभाव से उनको कुलीर-मत्स्यादि अथवा महामत्स्यादि जंतु हानि करते नहीं है तथा वे समुद्र में डूबते भी नहीं है। इतना ही नहीं, परंतु वे गोलियाँ जल में भी उद्योत मार्गदर्शक बन सकती है।

इस प्रकार परमाधामी घोर कर्म बांधकर अंडगोलिक रूप में उत्पन्न होकर, ऐसी भयंकर चक्कियों में पीसाकर कठिन दुःखों को भुगतता है, इस तरह महान् कर्म को बांधकर वे संसार में भटकते हैं।[२]

(१) वसुनन्दि श्रावकाचास-१७० (२) महानिशिथ ग्रंथ...

"I would request all of you to study, understand and follow Mahavira,s teachings, If we do that we would be celebrating his birth-day anniversary in a true and befitting manner."

- Mr. Mahatma Gandhi

"The message of Lord Mahavira is not for any particular country or class of people but for the whole world. People can make their lives sublime and ideal if they follow his teachings. real happiness and true peace can be attained only by treading the path shown by Lord Mahavir."

- C. Rajgopalacharya

परमाधामी संबंधी कुछ और जानने जैसा.....

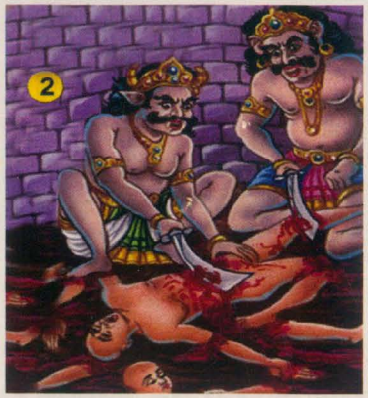

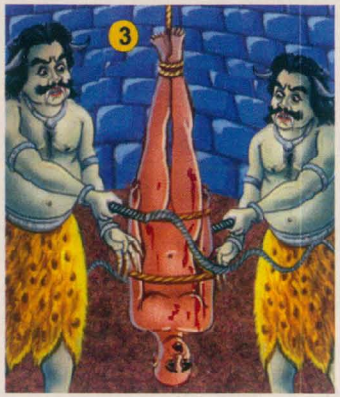

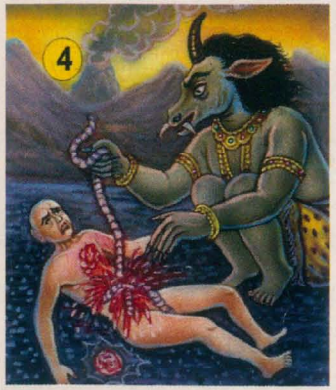

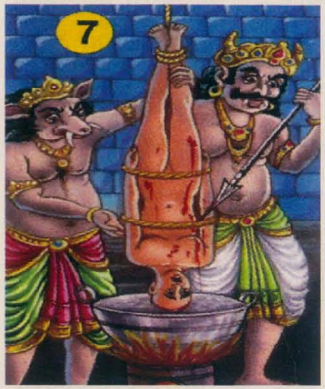

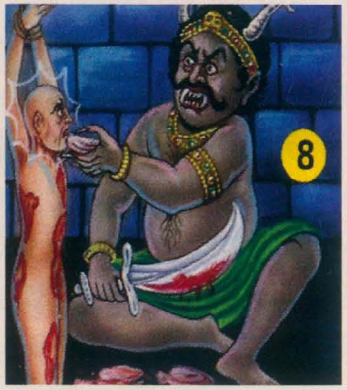

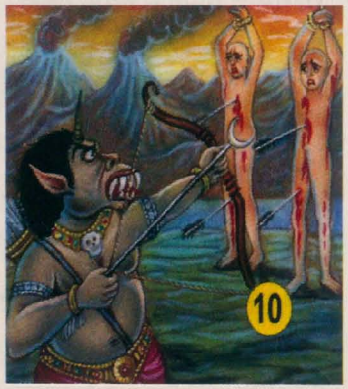

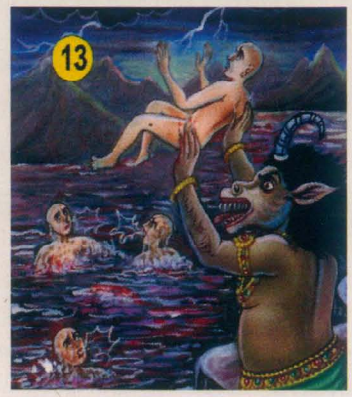

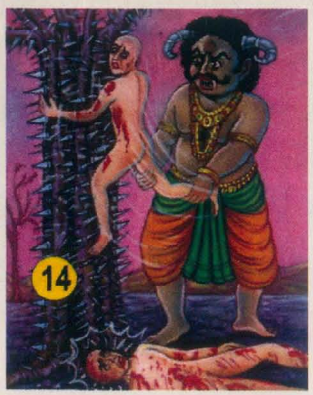

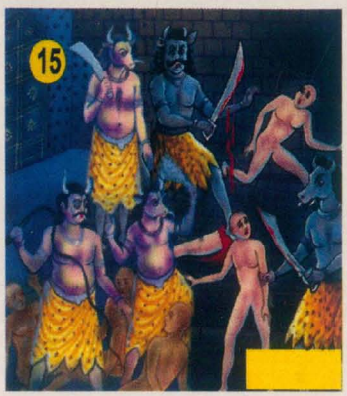

परमाधामी संबंधी कुछ और जानने जैसा.....

प्रश्न - (१) पूर्वोक्त १५ प्रकार के परमाधामी नारक के जीवों को परस्पर लड़ाने का और उनके दुःख की उदीरणा कराने का यह काम क्यों करते हैं ?

उत्तर - इन देवों की रुचि पापकर्म में ही हुआ करती है। यद्यपि ये असुरकुमार गति की अपेक्षा से देव हैं और इनके अन्य देवों की भांति मनोज्ञ विषयादि विद्यमान हैं, फिर भी इनकों उन विषयों में इतनी रुचि नहीं होती, जितनी कि पूर्वोक्त अशुभकार्यों को करने में होती हैं। इसके अनेक कारण है, जैसे कि इनमें मायादि तीनों ही शल्य पाये जाते हैं, इतना ही नहीं किन्तु शल्यों के साथ-साथ तीव्र कषाय का भी उदय रहता है, फिर इनके भावों में जो दोष लगते हैं, उनकी आलोचना भी नहीं करते, तथा इन्होंने पूर्व जन्म में वैसा करने का यत्न भी नहीं किया हैं। पूर्व भव में जो आसुरी गति का बन्ध किया है, वह आलोचना रहित भावदोषों के कारण ही किया हैं। ये विचारशील नहीं होते, इनको इतना भी विवेक नहीं होता कि यह अशुभकार्य है और करने लायक नहीं हैं... । जिस पुण्यकर्म का इन्होंने पूर्वजन्म में बन्ध किया है, वह अकुशलानुबन्धी है। उनका पूर्वबद्ध कर्म और तदनुसार उनका स्वभाव ही ऐसा होता हैं कि जिससे दूसरों को लड़ता हुआ या मरता-पिटता-दुःखी होता हुआ देखकर उन्हें अति आनंद आता हैं। इसलिए वे नरक के नारकी जीवों को असह्य-अत्यंत ही दुःख (पीड़ा) देते हैं।

ता.क. = ये परमाधामी जीवगण भव्य ही होते है एवं मिथ्यात्वावस्था के धारक होते है, तथा अपने क्रूर परिणामों के कारण श्री तीर्थंकर परमात्मा के जन्मकल्याणकादि रूप जन्माभिषेकादि कार्यक्रमों में भी कभी नहीं आते हैं।

प्रश्न - (२) नरक के नारकी जीव इतने अधिकतर असह्य दुःखों को कैसे सहन कर लेते हैं ? और यन्त्रपीडनादि समान दुःखों से उनका शरीर विशीर्ण क्यों नहीं होता ? और यदि हो जाता है, तो शरीर के विशीर्ण होने पर उनकी मृत्यु क्यों नहीं होती ?

उत्तर - अनेक प्रकार के तीव्र और अमनोज्ञ दुःखों को निरंतर भोगते हुए भी उन नरक के जीवों का असमय में मरण नहीं होता। वे इन दुःखों से अति घबरा कर मरना ही चाहते हैं। फिर भी निकाचित कर्म होने के कारण निजायुष्य कर्म की स्थिति जब तक पूर्ण नहीं होती तब तक उनका मरण नहीं हो सकता। अतः एव आयुष्य पर्यन्त उनको उक्त दुःखों को निरन्तर भोगना ही पड़ता है। अवश्य भोग्य कर्म के वश में पड़कर वे उक्त दुःखों को भोगते ही है तथा उस कर्म के निमित्त से ही उनका शरीर पारे के जैसे यन्त्र-पीडनादिक दुःखों या उपघातों से विशीर्ण होकर भी तत्काल ज्यों का त्यों मिल जाता है, अर्थात् अपने आप जुड जाता है।

इन नरकों में उपर्युक्त परस्परोदीरित, क्षेत्रस्वभावोत्पन्न तथा परमाधामी-असुरोदीरित इन तीन प्रकार के दुःखों में से दो प्रकार के दुःख तो सभी सातों नरकों के जीवों को हुआ करते हैं, किन्तु परमाधामी-असुरोदीरित दुःख-पीड़ा पहली रत्नप्रभा, दूसरी शर्कराप्रभा, और तीसरी वालुकाप्रभा इन तीन नरकभूमियों के नारकी जीवों को ही होती हैं।

Speaking in the 9th Anniversary celebration of Syadvada Mahavidyalaya during the visit of Dr. Jacobi "Lord Mahaveer was the last & not the first of the great 24 teachers and that Europe has denied the historicity of the other 23 Tee-rthankaras who preceded him, because, being it self young, it could not travel backward far enough, and liked to make Indian thoughts, less ancient than it is, that both Jainism & Hinduism went back further than either histrory or legend counted them."

- Mrs. Annie Besant

द्वितीय शर्कराप्रभा नरक का प्रवेशद्वार....

द्वितीय शर्कराप्रभा नामक पृथ्वी.....

अब दूसरी शर्कराप्रभा (वंशा) नामक नरक पृथ्वी का वर्णन करता हुँ, वहाँ शर्करा (पत्थर) बहुत होने से इसका गौत्र नाम ''शर्कराप्रभा'' कहलाता है। विशिष्ट ज्ञानी पुरुषोंने इस नरक की मोटाई १,३२,००० (एक लाख बत्तीस हजार) योजन की कही हैं।

यहाँ पर भी ऊपर नीचे १,०००-१,००० योजन छोड़कर शेष १,३०,००० (एक लाख तीस हजार) योजन में ११ प्रतर आये हैं और इसमें २-२ प्रतर के बीच का जो अन्तर होता हैं वह ९,७०० (नौ हजार सातसौ) योजन का बताया है।

प्रत्येक प्रतर के मध्य में एक नरकेन्द्र होता है जिसके नामादि नीचे के अनुसार क्रमशः जानना... वह इस प्रकार है... (१) स्तनिध (२) स्तनक (३) मनक, (४) वनक (५) घट्ट (६) संघट्ट (७) जिह्व (८) अपजिह्व (९) लोल (१०) लोलावर्त (११) स्तनलोलुप...। इन नरकेन्द्रों से प्रत्येक प्रतर में ८-८ नरकावास की श्रेणियां निकलती हैं।

इस नरक की भूमि में सब मिलाकर पंक्तिगत नरकावास २,६८५ (दो हजार छह सौ पिचयासी) होते हैं तथा वहाँ पुष्पावकीर्ण नरकावास कुल मिलाकर २४,८७,३०५ (चोबीस लाख, सत्यासी हजार, तीन सौ पांच) होते हैं, इस तरह सब मिलाकर द्वितीय नरक पृथ्वी में २५,००,००० (पच्चीस लाख) नरकावास होते हैं।

इस नरक की पृथ्वी में उत्पन्न हुए जीवों के शरीर का माप जघन्य से ३१ हाथ-६ अंगुल और उत्कृष्ट से ६२ हाथ और १२ अंगुल का होता है।

इस शर्कराप्रभा के नारकी जीवों का आयुष्य जघन्य से १ सागरोपम तथा उत्कृष्ट से ३ सागरोपम का होता हैं।

इस नरक की पृथ्वी में भी प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी के जैसी ही कापोत लेश्या होती हैं तथा अवधिज्ञान या विभंगज्ञान का विषय उत्कर्ष से ३ $^{१}/_{२}$ कोस व जघन्य से ३ कोस का होता है।

यहाँ घनोदधि आदि सब बातें पूर्व के जैसे (अर्थात् रत्नप्रभा नरक के जैसे) समान समझना, केवल घनोदधि आदि के वलयों के विष्कंभ में अन्तर है। जो कि इस प्रकार है - वंशा के पहले वलय का विष्कंभ छः पूर्णांक एक तृतीयांश योजन है, दूसरे वलय का पौने पांच योजन है जबकी अन्तिम तीसरे वलय का एकपूर्णांक सातवा अंश योजन है। इस तरह गणित करने पर यह शर्कराप्रभा (वंशा) के अंतिम से बारहवें पूर्णांक दो तृतीयांश बाद अलोक है।

इस तरह ''शर्कराप्रभा'' नाम की नरक पृथ्वी का स्वरूप कहा अब तीसरी नरक के तरफ चलते हैं.....

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४ श्लोक-१२२ से १६२

अमेरिका में एक विशाल वर्ग है जो आज भी मानता है कि पृथ्वी थाली जैसी गोल है व स्थिर है तथा सूर्य-चंद्रादि उसके चारों और घूमते है । एसी समान मान्यता रखनेवाले लोगों ने मिलकर "फ्लेट अर्थ सोसायटी" नामक एक संस्था की स्थापना की है और वे अपनी स्वयं की एक पत्रिका "फ्लेट अर्थ न्युझ" भी प्रकाशित करते है ।

तृतीय वालुकाप्रभा नामक नरक का प्रवेशद्वार....

तृतीय वालुकाप्रभा नामक पृथ्वी.....

अब तीसरी "शैला" नामक नरक पृथ्वी का वर्णन करते हैं, इस शैला में वालुका अर्थात्, रेती की बहुलता होने से यह "वालुकाप्रभा" नाम से जानी जाती है। इस शैला की मोटाई १,२८,००० (एक लाख, अट्ठाईस हजार) योजन है। इसमें भी उपर-नीचे के १,०००-१,००० योजन छोड़कर शेष के १,२६,००० (एक लाख, छब्बीस हजार) योजन प्रमाण मध्यभाग में नौ प्रतर हैं और वे एक दूसरे से १२,३७५ (बार हजार, तीन सौ पचहत्तर) योजन के अन्तर से होते हैं।

प्रत्येक प्रतर में १-१ नरकेन्द्र है और उनके नाम - (१) तप्त (२) तपित (३) तपन (४) तापन (५) निदाघ (६) प्रज्वलित (७) उज्वलित (८) संज्वलित और (९) संप्रज्वलित हैं।

इस वालुकाप्रभा नरक में ९ प्रतरों में कुल मिलाकर १,४५० (चौदह सौ पचास) पंक्तिगत नरकावास होते है तथा पुष्पावकीर्ण नरकावासों की संख्या १४,९८,५१५ (चौदह लाख, अट्ठानवे हजार, पांच सौ पंद्रह) कही है, इस तरह सर्व मिलाकर कुल १५,००,००० (पंद्रह लाख) नरकावास कहे हैं ।

इस नरक के नारकियों के शरीर का प्रमाण जघन्य से ६२ १/२ (साढे बासठ) हाथ और उत्कृष्ट से १२५ (एकसौ पच्चीस) हाथ है।

इस वालुकाप्रभा में उत्पन्न होनेवाले जीव का आयुष्य जघन्य से ३ (तीन) सागरोपम और उत्कर्ष से संपूर्ण ७ (सात) सागरोपम है।

अब इस नरक के जीवों की लेश्या का स्वरूप बताते हैं - प्रथम प्रतर में नारकी जीवों की कापोत लेश्या होती है, और अन्य सब प्रतरों में नील लेश्या होती है। कारण कि- कापोत लेश्या की भी उत्कर्षतः स्थिति ३ (तीन) सागरोपम और पल्योपम का असंख्यातवां भाग हैं और दूसरे तथा उसके बाद के प्रतरों में तो जघन्य से भी उतनी स्थिति नहीं है, इसलिए इस नरक में प्रथम प्रतर में ही कापोत लेश्या है। यह सजातीय लेश्या भी नीचे से नीचे सर्व पृथ्वी में अनुक्रम से क्लिष्ट, क्लिष्टतर और क्लिष्टतम होती है।

इस वालुका पृथ्वी में अवधिज्ञान व विभंगज्ञान का क्षेत्र उत्कृष्ट रूप से ३ कोस का है, व जघन्य रूप में २ १/२ (ढाई) कोस है।

उत्पत्ति और च्यवन के बीच में अन्तर उत्कर्षतः १५ दिन का है और जघन्य से १ समय मात्र हैं।

अभी घनोदधि आदि में जो अंतर इस वालुकाप्रभा पृथ्वी में हैं वह बताया जा रहा हैं... इसमें प्रथम वलय का विष्कंभ छः योजन है, दूसरे वलय का पांच पूर्णांक दो तृतीयांश योजन है, तथा तीसरे वलय का एक पूर्णांक दो तृतीयांश योजन है, इसके साथ कुल मिलाकर तेरह पूर्णांक एक तृतीयांश योजन में वालुकाप्रभा नरक की सीमा पूर्ण होती है, और उसके आगे चारों तरफ अलोक आता है।

इस तरह से "वालुकाप्रभा" नाम की नरक पृथ्वी का स्वरूप कहा[१] अब चलते हैं चौथी नरक की तरफ.....

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-१६२ से २०१

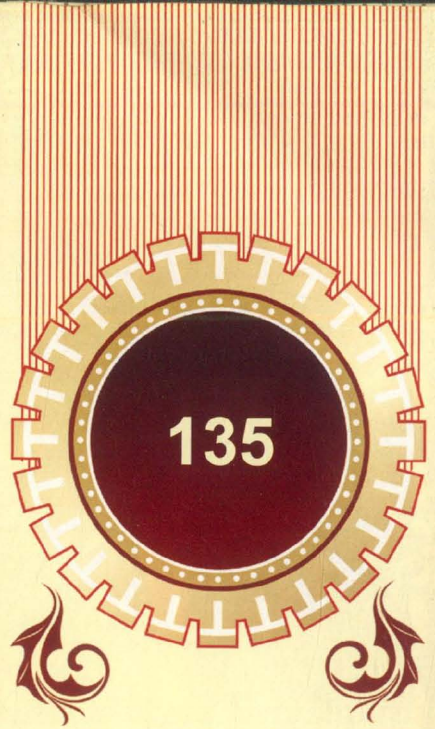

मायावी पुरुषों के उपकार में भी अपकार की संभावनाएं ज्यादा है, अतः उनके उपकारों की पहले अच्छी तरह से जाँच - परख करो, फिर ही उन्हें स्वीकारो । क्या देखते नहीं हो, मच्छीमार जो नदी या तालाब में आटे की गोलियाँ फेंकता है, वह उस आटे में काँटे को उलझा कर फेंकता है क्योंकि वह जानता है कि कोरे काँटे को फेंकने से तो कोई भी मछली पकड़ी नहीं जा सकती।

चतुर्थ पंकप्रभा नामक नरक का प्रवेशद्वार...

अब चौथी "अंजना" नाम की नरक पृथ्वी है, वहाँ पंक (कीचड़) की अधिकता होने से "पंकप्रभा" के नाम से जानी जाती है। उसका अब हम कथन कर रहे हैं... इस अंजना की १,२०,००० (एक लाख, बीस हजार) योजन प्रमाण मोटाई है। यहाँ भी पूर्व के समान नीचे तथा ऊपर १,०००-१,००० योजन छोड़कर शेष १,१८,००० (एक लाख, अठारह हजार) योजन के मध्य में ७ (सात) प्रतर है, उसका परस्पर अन्तर १६,१६६ $^{२}/_{३}$ (सोलह हजार, एक सौ छियासठ पूर्णांक दो तृतीयांश) योजन होता है।

यहा भी प्रत्येक प्रतर में एक-एक नरकेन्द्र है अर्थात् ७ प्रतर के ७ नरकेन्द्र होते हैं। उनके (१) आर (२) तार (३) मार (४) वर्चस् (५) तमस् (६) खाडखड और (७) खडखड इस तरह नाम हैं।

इस नरक में ७ प्रतरों में कुल मिलाकर ७०७ पंक्तिगत नरकावास होते हैं, और वहाँ अन्य जो पुष्पावकीर्ण नरकावास हैं उनकी कुल संख्या ९,९९,२९३ (नौ लाख, निन्यानवें हजार, दो सौ तिरानवे) हैं अतः सब मिलाकर पंकप्रभा पृथ्वी में १०,००,००० (दस लाख) नरकावास श्री जिनेश्वर भगवान के वचनानुसार है।

यह और इसके बाद की सर्व नरक पृथ्वी में परमाधामी कृत वेदना नहीं हैं केवल क्षेत्र वेदना और परस्पर कृत वेदना, इस तरह दो ही प्रकार की वेदना होती हैं। परन्तु यह वेदना पूर्व की वेदना से अनंतगुण होती है, और वह भी नीचे से नीचे जाय तो वैसे-वैसे अनुक्रम से तीव्र अधिक तीव्र और अत्यंत तीव्र होती जाती है।

इस नरक में ऊपर के बहुत से प्रतरों में उष्ण वेदना होती है जबकी नीचे की थोड़ी प्रतरों में शीत वेदना होती है। क्योंकि इस नरक में और आगे की नरकों में भी.. जो शीत योनि वाले आवास है वो उष्ण है और उष्ण योनि वाले जो आवास है वे शीत हैं (अर्थात् सभी नरकों में जीवों का उत्पत्तिस्थान और आवास व्यवस्था के क्षेत्र में विपरीतता है और वह अत्यंत मुश्किल से सहन करने योग्य होती है।)

इस नरक के नारकी का देह जघन्य से १२५ हाथ और उत्कृष्ट से २५० हाथ प्रमाण होता है।

इनका आयुष्य जघन्य से ७ सागरोपम और उत्कृष्ट से १० सागरोपम प्रमाण होता है।

इस नरक की पृथ्वी के नारकी को नीललेश्या होती है और इनका अवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान का क्षेत्र उत्कृष्ट से २ $^{१}/_{२}$ कोस और जघन्य से २ कोस का होता है।

इस नरक में नारक के उत्पत्ति का समय और च्यवन काल के बीच का अन्तर उत्कर्षता से १ महिना और जघन्यता से १ समय होता हैं।

पूर्वोक्त नरकों की जैसे ही घनोदधि आदि में प्रथम वलय का विष्कंभ सात योजन का है, दूसरा वलय सवा पांच योजन है तथा तीसरे वलय का विष्कंभ पोने दो योजन का है, इस प्रकार १४ योजन में अंजना (पंकप्रभा) की अंतिम सीमा आती है, और उसके बाद अलोक आता है।

इस तरह "पंकप्रभा" नाम की चौथी नरक पृथ्वी का स्वरूप कहा गया....[१] अब चलते हैं पांचवी नरक की और.....

---

* *श्रीमद् भागवत में नरकों की संख्या २८ हैं। उनमें २१ नरकों के नाम इस प्रकार हैं (१) तामिस्र (२) अन्धतामिस्र (३) शैशव (४) महारौरव (५) कुम्भीपाक (६) कालसूत्र (७) असिपत्रवन (८) सुकरमुख (९) अन्धकुप (१०) कृमिभोजन (११) संदेश (१२) तप्तसूर्मि (१९) वज्रकण्टशाल्मली (१४) वैतरणी (१५) पूयोद (१६) प्राणरोध (१७) विशसन (१८) लालाभक्ष (१९) सारमेयादन (२०) अवीचि (२१) अयःपान। इन २१ नरकों के अतिरिक्त भी ७ नरक और है, ऐसी मान्यता भी प्रचलित हैं... जो इस प्रकार हैं (१) क्षार-कर्दम (२) रक्षोगण-भोजन (३) शूलप्रोत (४) दन्दशुक (५) अवटनिरोधन (६) पर्योवर्तन (७) सूचीमुख:....।*

(श्रीमद् भागवत पुराण (छायानुवाद) पृ. १६४, पंचम स्कन्ध-२६, ५-३६)

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-२०२ से २३३.

मृत्यु के बाद इस संसार की कोई भी वस्तु आत्मा के साथ नहीं जाती, किन्तु सुसंस्कार और कुसंस्कार तो साथ जाते है। इसलिए स्वयं के साथ तुम जो ले जाना चाहों उन्हे इकट्ठे करते रहो। ध्यान रखना - सुसंस्कार हीरे है और कुसंस्कार कोयले।

पांचवी धूमप्रभा नामक नरक का प्रवेशद्वार.....

पांचवीं धूमप्रभा नामक पृथ्वी.....

अब "रिष्टा" नाम की पांचवीं नरक है उसमें वहां धुएँ की बहुलता होने से उसे "धूमप्रभा" के नाम से जाना जाता हैं[१] अभी हम उसका निरूपण करेंगे... इस नरक पृथ्वी की मोटाई १,१८,००० (एक लाख, अठारह हजार) योजन है। उसमें पूर्व के समान ही ऊपर-नीचे के १,०००-१,००० योजन छोड़कर मध्य के १,१६,००० (एक लाख, सोलह हजार) योजन प्रदेश में पांच प्रतर हैं और ये प्रत्येक २५,२५० (पच्चीस हजार दौ सौं पचास) योजन के अन्तर में आते हैं।

प्रत्येक प्रतर में १-१ नरकेन्द्र है अर्थात् पांच प्रतर के नाम (१) खात (२) तमस् (३) भ्रम (४) अन्ध और (५) अन्धतमस् है। इन पांच प्रतरों में कुल मिलाकर २६५ (दो सौ पैंसठ) पंक्तिगत नरकावास है और पुष्पावकीर्ण जो नरकावास है उनकी संख्या २,९९,७३५ (दो लाख, निन्नानवें हजार, सात सौं पैंतीस) होती है, अत: इस धूमप्रभा पृथ्वी में सर्व मिलाकर कुल ३,००,००० (तीन लाख) नरकावास होते हैं।

यहाँ वेदना तो पंकप्रभा के समान ही दो प्रकार की है परंतु यह वेदना थोड़े नरकावास में उष्ण होती है और अधिक में शीत होती हैं।

इस नरक में रहे हुए नारकी जीवों का शरीर जघन्य से २५० हाथ व उत्कृष्ट से ५०० हाथ का होता है।

इनकी आयु जघन्य से १० सागरोपम और उत्कृष्ट से १७ सागरोपम की होती है।

इनकी लेश्या प्रथम में कईयों की नील लेश्या होती है, क्योंकि नीललेश्या की उत्कृष्ट स्थिति भी १० सागरोपम और एक पल्योपम के असंख्यातवे भाग रूप कही गई है, अत: इससे अधिक जिसकी भी स्थिति इस नारकी में हो तो उन्हें केवल कृष्णलेश्या ही होती है।

इस नरक में अवधिज्ञान व विभंगज्ञान का क्षेत्र उत्कृष्ट से २ (दो) कोस का होता है और जघन्य से १$^{१}/_{२}$ (डेढ) कोस का होता है।

इन नरक के जीवों का च्यवन और उत्पत्ति के बीच का अंतर अधिक से अधिक २ महिने तथा कम से कम एक समय का होता है।

पूर्व के नरकों की तरह इस रिष्ट नामक नरक के भी घनोदधि आदि तीन वलय हैं, उसमें प्रथम वलय का विष्कंभ सातपूर्णांक एक तृतीयांश योजन का है, दूसरे वलय का साढे पांच योजन हैं और तीसरे वलय का एक पूर्णांक पांच षष्ठांश योजन प्रमाण का है। इस प्रकार चौदह पूर्णांक दो तृतीयांश योजन से इस धूमप्रभा की सीमा पूर्ण होती है, और उसके बाद अलोक शरु होता है।

इस तरह "धूमप्रभा" का स्वरूप कहा....[२] अब आगे छठवीं नरक का स्वरूप देखेंगे .....।

बौद्ध परम्परा के जातकअट्ठकथा नामक ग्रंथानुसार नरक आठ हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं... (१) संजीव (२) कालसुत्त (३) संघात (४) जालरौरव (५) धूमरौरव (६) महाअवीचि (७) तपन (८) पतापन।

(जातकअट्ठकथा, खण्ड-५, पृष्ट २६६-२७१)

दिव्यावदान ग्रंथानुसार नरक के यही उपरोक्त ८ नाम मिलते हैं पर जालरौरव के स्थान पर रौरव और धूमरौरव के स्थान पर महारौरव ये नाम प्राप्त होते हैं।

(दिव्यावदान-६७)

संयुक्तनिकाय-६/१/१०, अंगुत्तरनिकाय- खण्ड-५, पृष्ठ-१७३ और सुत्तनिपात, महावग्ग, कोकालियसुत्त-३/३६ में नरकों के १० नाम मिलते हैं - (१) अव्वुद (२) निरव्वुद (३) अवब (४) अटट (५) अहह (६) कुमुद (७) सौगन्धिक (८) उप्पल (९) पुण्डरीक (१०) पदुम।

(१) (A) सर्वार्थसिद्धि-३/१/२०३/८ (B) तिलोयपण्णत्ति-२/२१ (C) राजवार्तिक-३/१/३/१५९/१९ (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-२३४ से २६१

गैलीलियो का जो विरोध ईसाई पादरियों द्वारा किया गया था, वह मुख्य रूप से धार्मिक बिन्दुओं पर ही था। उसमें वैज्ञानिक दलीलों व तर्क का उपयोग मुश्किल से ही किया जाता था। इस वजह से यूरोप में विज्ञान के विरुद्ध धर्म का माहौल निर्मित हो गया। वैसे वास्तविकता तो यह भी थी कि गैलीलियो जिस प्रकार की बातों का जिक्र कर रहा था, उन्हें वैज्ञानिक रूप से सिद्ध भी नहीं किया जा सकता था। ये बातें केवल अटकलें मात्र थीं और उनके कोई स्वतंत्र प्रमाण मौजूद नहीं थे। इस प्रकार के वैज्ञानिक भी उस समय यूरोप में नहीं थे, जो गैलीलियो के सिद्धान्तों को गलत सिद्ध कर सकें। इस वजह से कई व्यक्ति ऐसा मानने लगे कि वैज्ञानिक दृष्टि से गैलीलियो सही है और मात्र धार्मिक कारणों से ही ईसाई पादरी उसका विरोध कर रहे हैं।

छठी तमःप्रभा नामक नरक का प्रवेशद्वार.....

छठवीं तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....

अब छठवीं नरक का नाम "मघा" है वहाँ तमस् अर्थात् अन्धकार अधिकतर होने के कारण "तमःप्रभा" के नाम से पहचानी जाती हैं।[१] अभी हम इसका निरूपण करेंगे... चलो मित्रो ! अब जरा ध्यान से सुनों...

इस नरक की मोटाई १,१६,००० (एक लाख, सोलह हजार) योजन प्रमाण की हैं, इसमें भी पूर्व के समान ऊपर-नीचे १,०००-१,००० योजन छोड़कर मध्य में १,१४,००० (एक लाख, चौदह हजार) योजन प्रमाण भाग में तीन प्रतर हैं। उनका अन्तर एक-दूसरे के बीच में ५२,५०० (साढ़े बावन हजार) योजन का है। इन तीन प्रतर में (१) हिम (२) वार्दल और (३) लल्लक नाम के तीन नरकेन्द्र हैं। इस तरह तीनों प्रतरवाली इस नरक में कुल ६३ (तिरसठ) पंक्तिगत नरकावास होते हैं, और ९९,१३२ (निन्नाववें हजार, नौ सौ बत्तीस) पुष्पावकीर्ण नरकावास है, अतः कुल मिलाकर ९९,९९५ (निन्नानवें हजार, नौं सो पंचानवें) अर्थात् एक लाख में ५ (पांच) कम होते हैं।

यहाँ दो प्रकार की वेदना होती है (१) क्षेत्रकृत वेदना (२) परस्परकृत वेदना। इसमें क्षेत्र वेदना यहाँ शीलत ही है और दूसरी परस्पर कृत जो वेदना है वो प्रहरण अर्थात् शस्त्र बिना भी है क्योंकि मघा और माघवती नारक जीव में शस्त्र बनाने की शक्ति नहीं है क्योंकि इनका यह भवस्वभाव है इसलिए उनके पास शस्त्र नहीं है। ये वज्र के मुखवाले कुंथु का रूप करके एक दूसरे के शरीर में प्रवेश करके पीड़ा करते हैं। इस संबंध में जीवाजीवाभिगम सूत्र में भी इस तरह उल्लेख मिलता है... "छठवीं और सातवीं नरक पृथ्वी में नारक बड़े रक्तवर्णवाले और वज्रसमान मुखवाले, गोबर के कीड़े के समान कुंथु जैसा रूप लेकर एक दूसरे के ऊपर घोडे के समान चढ़-चढ़ कर खाते हैं तथा गन्ने के कीड़े के समान खाते खाते अन्दर गहरा प्रवेश करके वेदना उत्पन्न करते हैं।

इस नारकी के जीवों का शरीर जघन्य से ५०० हाथ का तथा उत्कृष्ट से १,००० हाथ प्रमाण होता है।

इनकी आयु जघन्य से १७ सागरोपम और उत्कृष्ट से २२ सागरोपम की होती है।

इनकी लेश्या कृष्ण लेश्या होती है पूर्व की लेश्या से तीव्रतर कक्षा में रही होती है।

इन नारकी के जीवों का अवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान का विषय जघन्य से १ कोस और उत्कृष्ट से १ १/२ कोस होता है।

इन नारकी के जीवों के च्यवन और उत्पत्ति के बीच का अन्तर कम से कम एक समय और उत्कृष्ट से चार महिने का होता है।

इस तमःप्रभा नरक के भी घनोदधि आदि ३ वलय हैं, उसमें प्रथम वलय का विष्कंभ सातपूर्णांक दो तृतीयांश योजन है, दूसरे वलय का विष्कंभ पौने छः योजन तथा तीसरे वलय का एक पूर्णांक दश-अग्यारह अंश योजन का हैं। इस हिसाब से पंद्रह पूर्णांक एक तृतीयांश योजन से मघा नरक की सीमा पूर्ण होती है। और वहाँ से आगे चारों तरफ से अलोक शरु होता हैं।

इस तरह तमःप्रभा नरक का संपूर्ण वर्णन कहा...[२] अब देखते हैं अंतिम सातवीं नरक.....

★ *वैदिक परम्परा के योगदर्शन व्यासभाष्यानुसार नरकों के ७ नाम निर्दिष्ट है (१) महाकाल (२) अम्बरीष (३) रौरव (४) महारौरव (५) कालसूत्र (६) अन्धतामिस्र एवं (७) अवीचि। योगदर्शन व्यासभाष्य की टीका में इन नरकों के अतिरिक्त कुम्भीपाकादि उपनरकों का भी वर्णन है। वाचस्पतिने उनकी संख्या अनेक लिखी हैं पर भाष्य वार्तिककारने उनकी संख्या अनन्त लिखी हैं।* *(योगदर्शन-व्यासभाष्य, विभूतिपाद-२६)*

(१) (A) सर्वार्थसिद्धि-३/१/२०१/९ (B) तिलोय पण्णत्ति-२/२१ (C) राजवार्तिक-३/१/३/१५९/१९. (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-२६२ से २८२

सच्चा सुख कहाँ ?

जब तक कस्तूरिया मृग कस्तूरी की खोज बाहर ही बाहर करता रहेगा, तब तक उसे कस्तूरी नहीं मिलेगी। परंतु जब वह बाहर से हटकर स्वयं की नाभि में खोज करेगा तो उसे कस्तूरी सहजता से मिल पाएगी, क्योंकि वह वही पर होती है। ऐसे ही व्यक्ति जब तक सच्चे सुख की खोज बाहर ही बाहर करता रहेगा, तब तक उसे सुख नहीं मिलेगा और जब वह बाहर से हटकर स्वयं की आत्मा में उसकी खोज करेगा तो उसे सुख सरलता से मिल जाएगा, क्योंकि वह सुख तो वही आत्मा में है।

रुको...और जरा देखो... कि तुम्हारे कदम किस ओर बढ़ रहे है। याद रखो... इस दुनिया में जितने अच्छे कार्य है वे स्वर्ग की ओर तुम्हारे कदम है, तथा जितने बुरे कार्य है वे नरक की ओर तुम्हारे कदम है।

सातवीं नरक...
उ.
लंबाई-चौडाई १ राज प्रमाण
महारौरव
महाकाल
अप्रतिष्ठान
१ लाख योजन
काल
प.
पू.
९०००यो.
९०००यो.
९०००यो.
असंख्य योजन
३०००
योजन
९०००यो.
९०००यो.
असंख्य योजन
रौरव
यह भाग में...
नरक की उत्पत्ती
१०००
योजन

सातवीं तमस्तमःप्रभा नामक पृथ्वी.....

अब "माघवती" नामक सातवीं नरक पृथ्वी का वर्णन करते हैं। वहां पर बहुत ही अतिशय अंधकार होने से उसका नाम "तमस्तमः प्रभा" (कहलाता) है। इस नरक की मोटाई १,०८,००० (एक लाख, आठ हजार) योजन की है। उसमें नीचे और ऊपर समान रूप से ५२,५०० (साढ़े बावन हजार) योजन दोनों तरफ छोड़कर, मध्य में एक ही ३,००० (तीन हजार) योजन ऊँचा प्रतर हैं।

इस ७वी नरक में १,००,००० (लाख) योजन विस्तृत "अप्रतिष्ठान" नामक एक नरकेन्द्र है, इस नरक में भी पूर्व के समान चारों दिशाओं में एक एक नरकावास कहा है वह बहुत ही भयंकर है तथा इन चारों दिशा में रहे हुए नरकावासों की लंबाई, चौड़ाई और घिरावा (परिधि) असंख्य योजन का है। चारों दिशाओं में जो ४ नरकावास है उसके नाम कुछ इस तरह है - (१) पूर्व दिशा में - "काल" (२) पश्चिम दिशा में "महाकाल" (३) उत्तर दिशा में - "महारौरव" तथा (४) दक्षिण दिशा में "रौरव"[१]। इस नरक में विदिशागत तो एक भी नरकावास नहीं है, यह अन्तिमवां ४९ वां प्रतर होता है।

यहाँ भी तमःप्रभा नरक के समान दो प्रकार की वेदना होती है, और यह वेदना सबसे उत्कृष्ट, अत्यन्त तीव्र तथा अनंतगुणी होती है।

सातवी नारकों के शरीर का देहमान-जघन्य से १,००० हाथ और उत्कृष्ट से २,००० हाथ प्रमाण होता है।

सभी १ से ७ नरकों में बताए गए स्वाभाविक देह से कृत्रिम (उत्तर वैक्रिय शरीर) द्विगुण (दोगुणा) होता है।

यहाँ आयुष्य स्थिति जघन्य से २२ सागरोपम और उत्कृष्ट से ३३ सागरोपम की होती है।

इस सातवीं नारक के जीवों का अवधिज्ञान अथवा विभंगज्ञान क्षेत्र जघन्य से ½ कोस और उत्कृष्ट से १ कोस है।

इन नारकों के च्यवन व उत्पत्ति के बीच का अन्तर जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से ६ महिने का होता है।[२]

एसा कहा जाता है कि इस सातवी नारक के जीवों को ५,६८,९९,५८४ प्रकार के रोग होते हैं।[३]

जानने जैसा है १ से ७ नरकावासों का विस्तार....

क्रम	नरक पृथ्वी	संख्यात योजनवाले नरकावास	असंख्यात योजनवाले नरकावास	कुल
१	पहेली नरक	६ लाख	२४ लाख	३० लाख
२	दूसरी नरक	५ लाख	२० लाख	२५ लाख
३	तीसरी नरक	३ लाख	१२ लाख	१५ लाख
४	चौथी नरक	२ लाख	८ लाख	१० लाख
५	पांचवीं नरक	६०,०००	२,४०,०००	३ लाख
६	छट्ठी नरक	९९,९९९	७९,९९६	९९,९९५
७	सातवीं नरक	१	४	५
	कुल	१६,८०,०००	६७,२०,०००	८४,००,०००

(१) (A) पण्णवणा सूत्र, पद-२, सूत्र-१७४ (B) समवायांग सूत्र-१४९ (C) ठाणांग सूत्र, अध्य.-५, उद्देशा-३ सूत्र-४५१ (D) भगवती सूत्र, शतक-१३, उद्देशा-१, सूत्र-१३ (E) जीवाजीवाभिगम सूत्र, पडि.-३, उद्देशा-१, सूत्र-८१. (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-२८२ से २९६ (३) रिष्ट समुच्चय ग्रंथ

मन को स्वस्थ बनाना आवश्यक हैं । इसके लिए धर्मध्यान होना चाहिए । धर्मध्यान से मन का स्वास्थय प्राप्त होता है । धर्मध्यान से ही कषायों में मन्दता आती हैं और परमात्म पद की ओर गति होती हैं । रुको मत ! धर्मध्यान के लिए तत्पर बनो । सब प्रश्नों का हल धर्मध्यान में मिल जाएगा । सभी प्रकार की अशान्ति धर्मध्यान से मिट जाएगी । प्रतिक्षण धर्मध्यान हो सकता हैं... यदि हम करना चाहे तो !

पापीयों की सजा भुगतने का स्थान अर्थात् ७ नरक...

पापीयों को सजा भुगतने का स्थान अर्थात् ७ नरक.....

जीव के द्वारा किये गए अतिशय भयानक पाप कर्मो की सजा भुगतने के लिए ईश्वरने (कर्म सत्ताने) जो स्थान नक्की किया है उसी का नाम है ''नरक'' । यहाँ अधोलोक में क्रमशः विस्तृत होती हुई ७ नरक आई हुई है । जिसमें पापी जीव अपने किये हुए पापों की सजा रूप दुःखों का अनुभव करते हैं । तथा यह नरक जाने उल्टे किये हुए एक छोटे छत्र के समान हैं, उसके नीचे उल्टे किये हुए बड़े छत्र के समान इस तरह सर्व नरको (अर्थात्, सातो सात) छत्रातिछत्राकार में व्यवस्थित हैं । तो चलिए मेरे प्यारे वाचकवर्ग ! अब हम आपको इस सातों नरक के नाम, पृथ्वीमान, नरकावास, प्रतर संख्या... वगेरे बहुत कुछ इस नरक संबंधी नीचे के कोष्टक द्वारा बताने जा रहे हैं...।

क्रम	नरक के गौत्र नाम[1]	पृथ्वी के नाम[2]	पृथ्वी पिंड[3]	नरकावासों के पृथ्वी पिंड	१३ प्रतरों का कुल माप	प्रतर के सिवाय के बाकी का भाग	१ न्यून प्रतरे..	आगे की संख्या द्वारा भागने से २ प्रतर के बीच आता हुआ अंतर	प्रतर संख्या	ऊपर चारों बाजु घनोदधि वलय	ऊपर चारों बाजु घनवात वलय	ऊपर चारों बाजु तनवात वलय	कुल[4]	पृथ्वी नीचे घनोदधि (योजन में)	घनवात तनवात आकाश (योजन में)	पुष्पावकीर्ण नरकावास	पंक्ति बद्ध नरका वास	सर्व नरकावास[5]
१	रत्नप्रभा	घम्मा	१,८०,०००	१,७८,०००	३९,०००	१,३९,०००	१२ से भाग देना	११,५८३ $\frac{१}{३}$ योजन	१३	६ यो.	४ $\frac{१}{२}$ योजन	१ $\frac{१}{२}$ योजन	१२ योजन	२०,०००	असंख्य	२९,९५,५६७	४,४३३	३० लाख
२	शर्कराप्रभा	वंशा	१,३२,०००	१,३०,०००	३३,०००	९७,०००	१० से भाग देना	९७,००० योजन	११	६ $\frac{१}{३}$ यो.	४ $\frac{१}{३}$ यो.	१ $\frac{७}{१२}$ यो.	१२ $\frac{१}{२}$ यो. $\frac{१}{३}$ भाग	२०,०००	असंख्य	२४,९७,३०५	२,६९५	२५ लाख
३	वालुकाप्रभा	शैला	१,२८,०००	१,२६,०००	२७,०००	९९,०००	८ से भाग देना	१२,३७५ योजन	९	६ यो.	५ $\frac{२}{३}$ यो.	१ $\frac{२}{३}$ यो.	१३ यो. $\frac{१}{३}$ भा.	२०,०००	असंख्य	१४,९८,५१५	१,४८५	१५ लाख
४	पंकप्रभा	अंजना	१,२०,०००	१,१८,०००	२१,०००	९७,०००	६ से भाग देना	१६,१६६ $\frac{२}{३}$ योजन	७	७ यो.	५ $\frac{१}{४}$ यो.	१ $\frac{१}{३}$ यो.	१४ यो.	२०,०००	असंख्य	९,९९,२९३	७०७	१० लाख
५	धुमप्रभा	रिष्टा	१,१८,०००	१,१६,०००	१५,०००	१,०१,०००	४ से भाग देना	२५,२५० योजन	५	७ $\frac{१}{३}$ यो.	५ $\frac{१}{२}$ यो.	१ $\frac{५}{६}$ यो.	१४ $\frac{२}{३}$ यो.	२०,०००	असंख्य	२,९९,७३५	२६५	३ लाख
६	तमःप्रभा	मघा	१,१६,०००	१,१४,०००	९,०००	१,०५,०००	२ से भाग देना	५२,५०० योजन	३	७ $\frac{२}{३}$ यो.	५ $\frac{३}{४}$ यो.	१ $\frac{१०}{११}$ यो.	१५ $\frac{१}{३}$ यो.	२०,०००	असंख्य	९९,९३२	६३	९९,९९५
७	तमस्तमःप्रभा	माघवती	१,०८,०००	१,०६,०००	३,०००	१,०३,०००	१ प्रतर ऊपर नीचे	५१,५०० योजन	१	८ यो.	६ यो.	२ यो.	१६ योजन	२०,०००	असंख्य	०	५	५

(१) बृहत्संग्रहणी, गाथा-२१०, (२) बृहत्संग्रहणी गाथा-२११, (३) (A) बृहत्संग्रहणी, गाथा-२१२/२१३. (B) प्रज्ञापना सूत्र, पद-२ सूत्र-१३४ (४) बृहत्संग्रहणी, गाथा-२१४/२१५/२१६ (५) बृहत्संग्रहणी, गाथा-२१८

हिंसा

परिग्रह

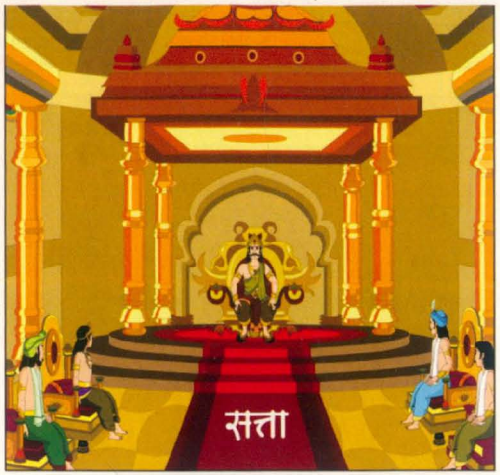
सत्ता

क्रोध

अब्रह्मचर्य

जीवहींसा

जुआ

रात्रि भोजन

मांस भक्षण

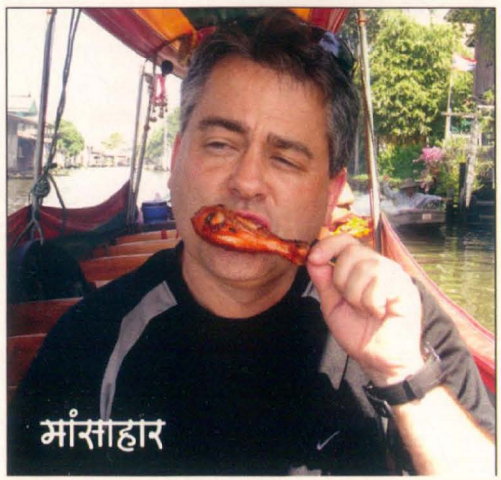
मांसाहार

चोरी

भोग

कौन-से जीव नरकायुष्य को बाँधते हैं ?.....

- **मिथ्यात्वी :** मिथ्यादृष्टि अर्थात् जिनेश्वर कथित तत्त्वों की विपरीत श्रद्धा करनेवाला, शुद्धमार्ग की अरुची रखनेवाला और उसी कारण महापाप की प्रवृत्ति में आसक्त रहनेवाला और अनेक अधर्म-बहुल प्रवृत्तिओं का जो उपासक होता है, जैसे गौशालक[१]....।
- **महारंभी :** आरंभ-समारंभ का करनेवाला, अनेक जीवों की हानि जिसमें रही हो ऐसे दृष्ट-भयंकर धंधे-रोजगारादि कार्यों का आरंभ करनेवाला जैसे कालसौकरिक चंडाल[२].....।
- **महापरिग्रही :** विपुल धन-कंचन-स्त्रियाँ आदि महान परिग्रह के रखनेवाले...। इन में मम्मणशेठ, वासुदेव, वसुदेवादि मंडलिक राजा, सुभुम[३]-ब्रह्मदत्त-चक्रवर्त्यादिक समझ लेना चाहिए...।
- **तीव्रक्रोधी :** तीव्र-महान क्रोध को करनेवाले, बात बात में लड़नेवाले, दुर्वासा जैसे अत्यंत क्रोधी पुरुष तथा सिंह-व्याघ्र-सर्पादिक पशु...आदि समझना...।
- **निःशील :** किसी भी प्रकार के व्रत-नियम रहित, चारित्रहीन तथा शील चारित्र-ब्रह्मचर्यादिक से रहित अर्थात् परस्त्री लंपटादि हो, अनेक परनारियों के पवित्रशील को लूंटनेवाले हों, वेश्या जैसी स्त्रियों का तथा उनके यहाँ गमन करनेवाले पुरुषादि प्रमुखों का इसमें समावेश हो जाता है।
- **पापरुची :** पाप में रुचीवाला हो, पुण्य के कार्यों में जिसे प्रेम ही न होता हो, पुण्यकार्य को देखकर जो जलता हो, जिसे धर्म के कार्य ही देखने या सुनने भी पसंद न हो, जहाँ तहाँ पाप के कार्यों के ही करने में मशगुल हो ऐसे निठल्ले बहुत से लोग होते हैं, इस में कोई उदाहरण देने की जरूरत नहीं है, क्योंकि ऐसे असंख्य लोग देखने को मिलते ही हैं।
- **रौद्र परिणामी :** रौद्र अर्थात् महा भयंकर परिणामी। अंतर में हिंसानुबंधी आदि रौद्रध्यान चलता ही हो, इन में छिपकली - बिल्ली-तंदुलीयामत्स्यादिक प्राणी तथा मनुष्य जिन के सारे दिन अशुभ विचारधाराएँ ही चलती हो, अनेकों का अहित ही करते हों, घोर प्राणिवध तथा मांसाहारादिक करनेवाले हो ऐसे को रौद्र परिणामी गिने जा सकते हैं।
- ऐसे जीव अशुभ परिणति के योग से अतिक्रूर-दुर्ध्यान में प्रविष्ट होकर, नरकायुष्य को बांधते हैं और नरक में उत्पन्न होते है। दुःखी दुःखी होकर कष्ट में मरते हैं, अहोनिश दुःख में डूबे नारकों को (अमुक काल छोड़कर) नरक में निमिष मात्र भी सुख का समय नहीं है। दुःख के परंपरा की श्रेणी सतत चालू ही होती है। तो फिर सुख कब होता है ? तो चलिए जानते हैं... अगले प्रकरण से...

---

१. गौशालक-प्रभु महावीर को बड़ी पीडा करनेवाला, स्वमत स्थापित करके स्वयं झुठा बनकर भगवान वीर को असर्वज्ञ कहनेवाला... जिसकी कथा अति प्रसिद्ध है।

२. यह महाचंडाल भी भगवान वीर के समय में ही हुआ है। जो हंमेशा ५०० भैसों को नित्य मारता था। उसी तरह बड़ी बड़ी मिले, कारखाने, जंगल के व्यापारी, मांस-मटन के व्यापारी ये सब महारंभ की कोटि में गिने जाते हैं।

३. सुभूम चक्रवर्ती परिग्रह की प्रमाणातीत आसक्ति से छः खंड के उपरांत सातवाँ खंड साधने का प्रयत्न करने पर मरकर सातवीं नरक में उत्पन्न हुआ है, इसकी कथा भी अति प्रसिद्ध हैं।

मैं शाकाहारी हुं, धुम्रपान भी नहीं करता और शराब भी नहीं लेता। मुझे जैनधर्म की अहिंसा और शाकाहार के सिद्धांत बहुत ही प्रिय है।

बोलीवुड अभिनेता
अमिताभ बच्चन

ईर्ष्या-द्वेष के कारण धर्म प्रचार को रोकनेवाली विपत्ति के रहते हुए जैनधर्म कभी पराजित न होते हुए सर्वत्र विजयी ही होता रहा है। इस प्रकार जिसका वर्णन है वह 'अर्हन देव' साक्षात् परमेश्वर (विष्णु स्वरूप) है, इसके प्रमाण भी अन्य आर्य ग्रंथों में पाये जाते है।

स्वामी विरूपाक्ष वडियर - धर्मभूषण, वेदतीर्थ, वेदनिधि (एम.ए.) प्रोफेसर - संस्कृत कोलेज, इन्दौर स्टेट

क्या नारकी जीव कभी सुखी हो सकते है ?.....

हा, मित्रो ! नारकी जीव भी नीचे बताए गए जन्मकालादि प्रसंग में सुखी हो सकते हैं, लेकिन वह सुख स्वरूप मात्र और स्वल्पकाल मात्र ही टिकनेवाला होता है। कहा गया है कि....

अववाएण वि सायं, नेरइयो देवकम्मुणा वावि। अज्झवसाण निमित्तं अहवा कम्माणुभावेणं ॥ १॥

जीवने पूर्व भव में अग्निस्नान (जलकर मरना) किया हो अथवा उसका किसी ने खून किया हो, छेद किया हो ऐसे जीव नरकायुष्य पाकर कुछ कम संक्लिष्ट परिणाम पाकर उत्पन्न होते है। ऐसे जीवों को उपपात समय पर जन्मान्तर से प्राप्त अशाताकर्म उदय प्राप्त नहीं होता, साथ ही उस समय क्षेत्रकृत, परमाधामीकृत या परस्परकृत (अन्योन्यकृत) अशाता भी विद्यमान नहीं होती, अतः उस समय नारकी जीव शाता का अनुभव करता हैं।

दूसरा, किसी मित्र देव की सहाय से..., जैसे नरक में दुःखी होते नवमें वासुदेव को देवलोक में गए हुए बलदेवने देखकर पूर्व के प्रेमवश उनकी पीड़ा का शमन करने के लिए आये थे एवं उसी तरह कोई मित्रदेव पीड़ा का शमन करके शाता को समर्पित करता है। किन्तु पीड़ा में मिली यह शान्ति बहुत ही अल्पकालीन होती है, अधिक समय नहीं टिकती, क्योंकि ये देवलोक के देव अति बिभत्स तथा अशुभ स्थान में अधिक समय नहीं टिकते। शाता पूर्ण होने पर तत्रवर्ती पीड़ाओं का पुनः प्रादुर्भाव हो जाता है।

तीसरा, कुछ हलुकर्मी नारकी जीव तथाविध शुभ निमित्त को प्राप्त करके जब सम्यक्त्व को प्राप्त करते हैं तब उन्हें, पूर्वभव में क्षायिक सम्यक्त्वादि विशिष्ट गुणों को साथ में लेकर आए हों, इनको जिनेश्वर देवादि विशिष्ट महापुरुषों के गुणों की अनुमोदना से शुभ-अध्यवसाय होने से, महानुभाव जिनेश्वर देव के जन्म, दीक्षा, केवलज्ञानादिक पांचों कल्याणकों के प्रसंग में, और शाताकर्म उदय से भी ये नारकी जात्यंध को चक्षु मिलने से जैसा सुख प्राप्त होता हैं, वैसा सुख स्वल्पकाल पाते हैं। तब ऐसा कहा जाता हैं कि... नारकी जीव सुख को प्राप्त करते हैं।[१]

प्रश्न - कौन सी नरकभूमि में से आए हुए जीव-आत्मा कौन-सी लब्धि प्राप्त कर सकते हैं ?

उत्तर - कहा जाता है(१) पहली नरकभूमि में से आये हुए जीव-आत्मा ''चक्रवर्ती'' हो सकते हैं।

(२) पहली और दूसरी नरकभूमि में से आये हुए जीव-आत्मा ''वासुदेव'' या ''बलदेव'' हो सकते हैं।

(३) पहली-दूसरी और तीसरी नरकभूमि में से आये हुए जीव-आत्मा ''अरिहंत-तीर्थंकर'' हो सकते हैं।

(४) पहली चार नरकभूमियों में से आये हुए जीव-आत्मा ''केवली-केवलज्ञानी'' हो सकते हैं।

(५) पहली पांच नरकभूमियों में से आये हुए जीव-आत्मा ''सर्वविरति-संयमधर'' (संयमी) हो सकते हैं।

(६) पहली छः नरकभूमियों में से आये हुए जीव-आत्मा ''देशविरति-श्रावक'' हो सकते हैं..... और

(७) सातों नरकभूमियों में से आये हुए जीव-आत्मा ''सम्यक्त्व'' प्राप्त कर सकता हैं।[२]

(१) (२) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-३०८ से ३११

सूर्य की किरणों में आग है, मगर जब तक किरणे बिखरी - बिखरी रहेगी, तब तक आग प्रगट न हो सकेगी। जब किसी विशिष्ट कांच या यंत्र से उन्हें इकट्ठी करके नियत रूई आदि पर प्रक्षिप्त करोगे तो किरणों की आग का परिणाम दिखाई देगा। वैसे ही तुम्हारे विचारों में शक्ति है, मगर जब तक वे विचार बिखरे-बिखरे रहेंगे तब तक शक्ति प्रगट नहीं हो सकेगी। जब तुम दृढ संकल्प रूप यंत्र से उन्हें केन्द्रित करोगे और नियत काम करते रहोगे तो विचारों की आग का परिणाम दिखेगा ही।

असंज्ञी समुर्च्छिम	भुजपरिसर्प	पक्षी	चतुष्पद	उरपरिसर्प	स्त्रीयां	पुरुष-मत्स्य
			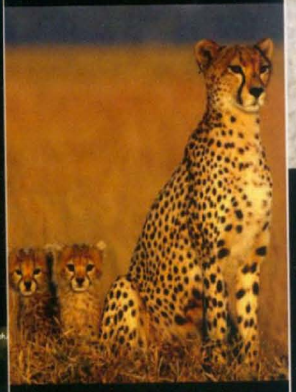			

कौन से जीव कौन-सी नरक तक जा सकते है !.....

- तो चलो मित्रो ! अब हम मुलाकात लेते हैं उन जीवों की..... जो उत्कृष्ट से कौन-सी नरक तक जा सकते है...।
- असंज्ञी (मन रहित) संमुर्च्छिम (गर्भ धारण किए बिना उत्पन्न होते हुए) पंचेन्द्रिय* तिर्यंच नरक के योग्य अध्यवसाय को प्राप्त करके नरक में जाएँ तो अवश्य प्रथम नरक में ही जा सकते हैं, उससे आगे आनेवाले नरक में जाते ही नहीं हैं। उसमें भी वहाँ वे उत्कृष्ट से पल्योपम के असंख्यातवें भाग के आयुष्य को लेकर अथवा जघन्य से १०,००० वर्ष के आयुष्य को लेकर उत्पन्न होते है। प्रथम नरक में और साथ ही न्यून आयुष्य लेकर उत्पन्न होते, होने से उन्हें पूर्व भव में नरकायुष्य के बन्ध के समय अधिक क्रूर अध्यवसाय होते नहीं है अतः वे अल्प दुःख के स्थानक में उत्पन्न होते हैं, इतनी विशेषता हैं।
- दुसरे गर्भज भुजपरिसर्प जो चंदनगोह, पाटलागोह, नेवला (नोलीया) आदि प्रमुख जीव, गर्भावास में मृत्यु हो जाए तो और शायद नरक में अगर आ जाए तो यावत् दूसरे नरक तक अर्थात् कोई प्रथम में, तो कोई संक्लिष्ट अध्यवसायी दूसरे नरक में इस तरह दोनों में जा सकता हैं।
- गिद्ध, बाजादि मांसाहारी गर्भज पक्षी पहले से लेकर यावत् तीन नरक तक जा सकते हैं।
- सिंह, चिता, व्याध्रादि हिंसक गर्भज चतुष्पद प्राणी पहले से लेकर यावत् चार नरक तक जा सकते हैं।
- उरपरिसर्प अर्थात् पेट से चलनेवाले आशीविष-दृष्टिविषादि सर्प की गर्भज जातियाँ... ये एक से लेकर यावत् पांचवें नरक तक जा सकते हैं।
- महा-आरंभी और अत्यंत कामातुर (Sexy) ऐसी चक्रवर्ती की स्त्रीरत्नादि स्त्रियाँ पहले से यावत्[x] छट्ठें नरक तक ही जा सकती हैं।
- महापाप का आचरण करनेवाले, महारंभ, महापरिग्रह युक्त गर्भज मनुष्य और गर्भज ऐसे तंदुलमत्स्यादिक जलचर जीव अति क्रूर-रौद्र अध्यवसाय करने से एक से यावत् अंतिम सातवीं नरक तक भी जाते हैं। इस तरह जीवों की नरक गति में गमन का वर्णन कहा।
- जघन्य से ये रत्नप्रभा के प्रथम प्रतर में उत्पन्न होते हैं, और मध्यम गति सोचे तो जिनके लिए जिस जिस गति का नियमन बताया उससे पूर्व और रत्नप्रभा के प्रथम प्रतर से आगे किसी भी प्रतर में उत्पन्न हो सकते हैं...।

★ संमुर्च्छिम मनुष्य तो अपर्याप्त अवस्था में ही मृत्यु पाते होने से उन्हें नरक गति का अभाव होने से "असंज्ञि" पद से मात्र तिर्यंच ही अपेक्षित हैं।

x पापिनी स्त्री चाहे जितने कुकर्म करे परंतु जातिस्वभाव से पुरुष को जो सातवें नारकी प्रायोग्य क्रूर अध्यवसाय होते है, वैसे तो उसे होते ही नहीं है जिससे "स्त्री की अपेक्षा पुरुष का मन अधिक संक्लिष्ट हो सकता है" यह सिद्ध होता है।

(१) क्षेत्रलोकप्रकाश, सर्ग-१४, श्लोक-२९७ से ३०३.

श्मशान भूमि में जलती चिता को देखते हुए और दुःखी अवस्था में परेशानियों को झेलते हुए मन में जैसा वैराग्य भाव उत्पन्न होता है, वैसा ही वैराग्य यदि रास-रंगभरी संसारभूमि और सुखी अवस्था में स्थिर रहे तो शायद आत्मा कभी अनित्य पदार्थों के प्रति इतना आसक्त न बने, अशरण और अत्राण स्वरूप इस संसार में इतना लिपटा न रहे।

WHAT
IS
HELL
????
WHAT
IS
HELL
????

नरक संबंधी कुछ जानने जैसा.....

प्रश्न – विश्व के कौन-कौन से पदार्थ इस नरकभूमियों में नहीं हो सकते हैं ?

उत्तर – द्वीप, समुद्र, कुण्ड, पर्वत, नगर, शहर, गाँव, वृक्ष, घास इत्यादिक छोड़ बादर वनस्पति, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय, पंचेन्द्रिय, तिर्यंच तथा मनुष्य एवं देव इत्यादिक नरकों में नहीं होते हैं। किन्तु मित्रता, वैक्रियलब्धि एवं समुद्घात के विषय में अपवाद भी हैं। केवलीसमुद्घात के विषय में कहा हैं कि - केवलीसमुद्घात में केवली जीवात्मा के आत्मप्रदेश संपूर्ण लोकव्यापी हो जाने से सातों नरक में भी होते है। वैक्रियलब्धि द्वारा मनुष्य तथा तिर्यंच भी नरक में जा सकते हैं। अपने पूर्वभव के मित्र को सांत्वना देने के लिए देव भी नरक में जाते हैं।

प्रश्न – कौन से देव कौन सी नरकभूमि तक जा सकते हैं ?

उत्तर – (१) भवनपति के देव और व्यंतरजाति के देव प्रथम (पहली) रत्नप्रभा नरकभूमि तक जा सकते हैं। (२) वैमानिक देव तीसरी वालुकाप्रभा नरकभूमि तक जा सकते हैं। तथा कदाचित् चौथी पंकप्रभा नरकभूमि में भी वैमानिक देव जा सकते हैं। (३) पन्द्रह प्रकार के नामवाले परमाधामी देव तीसरी वालुकाप्रभा नरक तक ही जा सकते हैं। ये परमाधामी देव प्रारंभ की तीन नरकभूमियों के जीवों को केवल असह्य दुःख देने के लिए ही जाते हैं।

द्वीप-समुद्रादि की अवस्थिति : पहली रत्नप्रभा नरकभूमि को छोड़कर शेष ६ नरकभूमियों में न तो द्वीप, समुद्र, पर्वत और सरोवर हैं, न गाँव, नगर-शहरादि हैं, न वृक्ष, लता इत्यादि बादर वनस्पतिकाय है, न बेइन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक तिर्यंच है, तथा न मनुष्य है और न किसी प्रकार के देव भी है। किन्तु पहली रत्नप्रभा नरकभूमि का कुछ भाग मध्यलोक में सम्मिलित हैं। इस हेतु से मेरुपर्वत की समतल भूमि से १,००० योजन ऊंड़ी-गहरी ''सलीलावती'' नामक विजय है, जिसे ''कुबडी'' विजय भी कहते हैं, जिसमें उपर्युक्त द्वीप-समुद्र तथा देवतादिक पाये जाते हैं। शेष नरकों में इनका अभाव है। इसलिए वहाँ केवल नारकी और एकेन्द्रिय जीव ही पाये जाते हैं। द्वीप-समुद्रादि का जो निषेध हैं, वह भी दूसरी आदि भूमियों के विषय में ही जानना, न कि पहली रत्नप्रभा पृथ्वी के विषय में। क्योंकि पहली नरकभूमि के विषय में इन सब का समावेश पाया जाता हैं।

सामान्य नियम के अनुसार कोई भी मनुष्य नरकभूमियों में नहीं जा सकता हैं। किन्तु समुद्घात की अवस्था में मनुष्य का अस्तित्व वहाँ पर कहा जा सकता है। इसी तरह नारकी और वैक्रियलब्धि से सहित जीव तथा पूर्वजन्म के स्नेही मित्रादि एवं परमाधामी असुरकुमार इतने जीव क्वचित् कदाचित् नरक की भूमियों में सम्भव है। परमाधामी देवों को नरकपाल भी कहते हैं। उनका तीसरी नरक पर्यन्त आना-जाना होता है, तथा व्यंतर और वाणव्यंतर देव पहली नरकभूमि में ही होते हैं।

स्वयं के पक्ष में बहुमत है या नहीं ? तुम यह चिन्ता मत करो, बल्कि सत्य है या नहीं उसकी चिन्ता करो। बहुत होने पर भी बहुमत का इतना प्रकाश नहीं होता जितना कि अकेले सत्य का होता है। देखो ! रात्रि के समय में आकाश में सितारों का बहुमत तुम्हें दिखेगा और चन्द्रमा अकेला ही दिखेगा, मगर अकेले चन्द्रमा का धरती और आकाश में जितना प्रकाश होता है उतना बहुत होने पर भी सितारों का तो नहीं ही होता...!

जिनशासन के साहित्यावकाश में सर्वप्रथम बार

श्री जिनगुण आराधक ट्रस्ट की और से...

जैन विज्ञान से संदर्भित पठनीय-मननीय-संग्रहणीय...

एक विराट ग्रंथ

सचित्र विज्ञान का नया नजराना

ILLUSTRATED

THE JAIN SCIENCE

सर्वज्ञ कथित विज्ञान

COMING SOON

COMING SOON

COMING SOON

પ.પૂ. મુનિરાજ શ્રી ચારિત્રરત્નવિજયજી મ.સા. દ્વારા સંપાદિત - સંયોજિત - સંકલિત ગ્રંથાવલિ.....

વંચશો તો નાચશો...

જૈનશાસનના આંગણે...

ચુકશો તો પસ્તાશો..

એક અણમોલ ગ્રંથનું ભવ્ય આગમન

સચિત્ર તત્ત્વજ્ઞાનનું નવલું નજરાણું

ILLUSTRATED

JAIN COSMOLOGY

સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વ વ્યવસ્થા

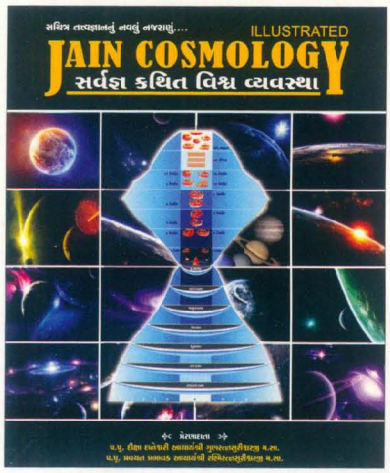

- શું તમે જાણો છો... પૃથ્વી દડા જેવી ગોળ છે કે થાળી જેવી ગોળ છે ?
- શું તમે જાણો છો... પૃથ્વી સ્થિર છે કે ફરે છે ?
- શું તમે જાણો છો... કે બ્રહ્માંડની ઉત્પત્તિ Big Bang માંથી થઈ છે? કે કોઈ અન્ય કારણોથી?
- શું તમે જાણો છો... સમુદ્રોમાં ભરતી-ઓટ શા કારણે આવે છે ?
- શું તમે જાણો છો... કે પૃથ્વી પર ભૂકંપો શા માટે સર્જાય છે ?
- શું તમે જાણો છો... કે આ વિશ્વ ૭ દ્વીપ સમુદ્રવાળો છે કે અસંખ્ય દ્વીપ સમુદ્રવાળો ?
- શું તમે જાણો છો... કે આ વિશ્વમાં ઉર્ધ્વલોક-અધોલોક વગેરે ક્યાં આવેલા છે?

આવા સેંકડો સવાલોનો જવાબ આપતો જૈનશાસનનો એક અણમોલ ગ્રંથ એટલે જ...

સચિત્ર તત્ત્વજ્ઞાનનું નવલું નજરાણું

ILLUSTRATED

JAIN COSMOLOGY

સર્વજ્ઞ કથિત વિશ્વ વ્યવસ્થા

:: ગ્રંથની વિશેષતા ::

- ગુજરાતી ભાષામાં અને ૫૨૦ પાનાઓમાં તૈયાર થયેલ
- જૈન ધર્મ સંબંધી ભૂગોળ-ખગોળાદિની સચિત્ર માહિતી...
- જૈન ધર્મ સંબંધી ૧૦૮ વિષયોના વિશિષ્ટ લેખો...
- દરેક લેખોને સમજાવવા માટે પાને પાને ૨૦૦ જેટલા ચિત્ર (Picture) નો વિશાલ સંગ્રહ...
- ૧૫૦ થી વધારે આગમ-પ્રકરણાદિ ગ્રંથોનો આધાર
- ૧૦૦ પાનાઓમાં તૈયાર થયેલ દળદાર "જાણવા જેવી ભૂમિકા"
- ૬૮ જેટલા પ્રાચીન ચિત્રોની પ્રતિકૃતિઓનો વિશિષ્ટ સંકલન
- તારાતંબોલ જેવી અપ્રાપ્ય નગરીનો ઉલ્લેખ...
- પૃથ્વી દડા જેવી ગોળ નથી અને ફરતી નથી... તેના ૧૦૧ પુરાવાઓથી સભર... ઈત્યાદી ઘણુ બધુ...

આ તો માત્ર ઝાંખી છે...
ગ્રંથ વાચવાનો બાકી છે...

: શુભાજ્ઞા આશીર્વાદ :

પ.પૂ.ગચ્છાધિપતિ આ.શ્રી જયઘોષસૂરીશ્વરજી મ.સા.

: પાવન પ્રેરણા :

પ.પૂ.દીક્ષા દાનેશ્વરી આ.શ્રી ગુણરત્નસૂરીશ્વરજી મ.સા.
પ.પૂ.પ્રવચન પ્રભાવક આ. શ્રી રશ્મિરત્નસૂરીશ્વરજી મ.સા.

: સંશોધક :

પ.પૂ.પંન્યાસ શ્રી મેઘદર્શનવિજયજી મ.સા.

: સંપાદક :

પ.પૂ.મુનિરાજ શ્રી હીરરત્નવિજયજી મ.સા.ના શિષ્યરત્ન
પ.પૂ.મુનિરાજ શ્રી ચારિત્રરત્નવિજયજી મ.સા.

:: કાયમી પ્રાપ્તિ સ્થાન ::
સંપર્ક સૂત્ર
અરૂણભાઈ (સાબરમતી)
૯૪૨૭૫ ૨૨૧૦૧, ૯૪૦૮૨ ૫૨૨૦૧

: પ્રાપ્તિસ્થાન :

મૂલ્ય : ૩૫૦/-

અમદાવાદ
શાહ બાબુલાલ સરેમલ
'સિધ્ધાચલ'
સેન્ટ એસ સ્કુલની સામે
હીરા જૈન સોસાયટી, સાબરમતી
અમદાવાદ - ૩૮૦૦૦૫.
૯૪૨૬૫ ૮૫૯૦૪
૦૭૯ - ૨૨૧૩૨૫૪૩
૦૭૯ - ૨૭૫૦૫૭૨૦

પાલીતાણા
સુઘોષા કાર્યાલય
સોમચંદ ડી. શાહ
તળેટી રોડ, પાલીતાણા
મો. ૦૯૮૯૮૩૩૨૨૪૫
(મુકેશભાઈ)

શંખેશ્વર
વંદના બુક સ્ટોર્સ
યાત્રિકભવન પાસે,
શંખેશ્વર (ગુજ.)
મો. ૦૯૩૬૪૧૬૯૬૧૮
૦૯૪૨૯૨૯૭૭૪૦
૦૯૯૦૪૬૮૬૯૬૨

ભાયંદર
ચેતનભાઈ એચ. મહેતા
A/303, પવનકુંજ,
નાકોડા હોસ્પીટલની બાજુમાં,
૬૦ ફીટ રોડ, ભાયંદર (વેસ્ટ)
૯૮૬૭૦ ૫૮૯૪૦
૦૨૨-૨૮૧૪૦૭૦૬

થાને
માંગીલાલજી પારેખ
નાકોડા કિયેશન
દુકાન નં-૧, ક્ષીરસાગર એપાર્ટ.,
માલતીબાઈ હોસ્પીટલની સામે,
સેન્ટ જહોન સ્કુલ રોડ, થાને, (વેસ્ટ)
(M)૦૯૩૩૩૨૯૫૦૩,(M)૦૯૩૨૪૨૮૬૪૮૧
(O)૦૨૨-૨૫૩૦૯૬૫૫

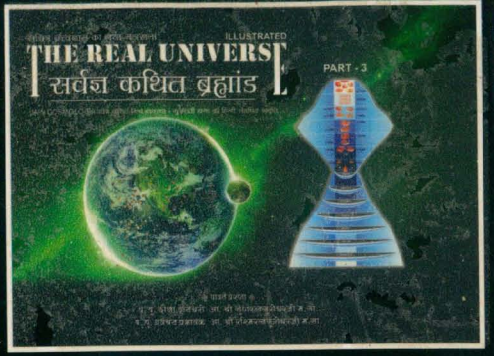

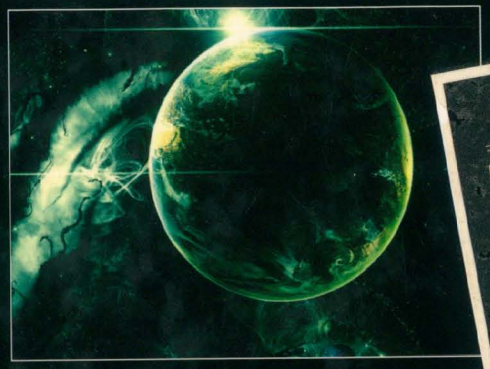

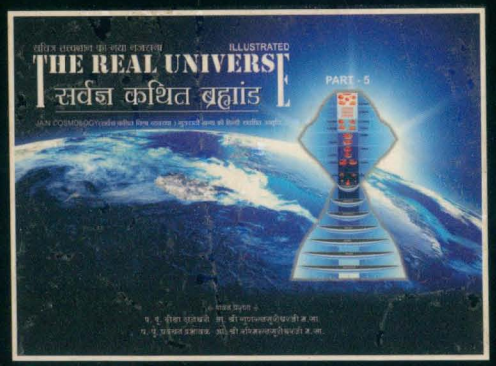

Printed By
NAVRANG
9428 500 401

Design By
Omkargraphics
9408031622